स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CWED-02
भारतीय समाज में महिलाएं : सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ

प्रथम खण्ड : भारतीय समाज में महिलाएं

द्वितीय खण्ड : महिलाओं की स्थिति : कुछ प्रस्थिति

तृतीय खण्ड : सामाजिक संस्थाएं, प्रक्रियाएं और महिलाएं

चतुर्थ खण्ड : धर्म, व्यक्तिगत कानून और महिलाओं के अधिकार

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CWED-02

भारतीय समाज में महिलाएं : सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ

खंड

1

भारतीय समाज में महिलाएं

आइए हम शुरू करें 3

पाठ्यक्रम परिचय: भारतीय समाज में महिलाएँ : सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ 7

खंड परिचय : भारतीय समाज में महिलाएँ 9

इकाई 1
सामाजिक विविधताएं और समानताएं 11

इकाई 2
कल्पना और यथार्थ 22

इकाई 3
निरंतरता, परिवर्तन और प्रतिरोध 32

र्भ 43

आइए हम शुरू करें

महिला सक्तिकरण और विकास कार्यक्रम में यह ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। इसमें चार खंड हैं। प्रत्येक खंड में अलग-अलग विषयों पर विचार किया गया है जिनमें 3 से लेकर 5 इकाइयां हैं। हर इकाई में प्रमुख विषय पर तार्किक ढंग से विचार किया गया है। प्रत्येक खंड की शुरुआत खंड प्रस्तावना के साथ की गई है और अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है।

खंड़ 1 में कार्यक्रम का परिचय भी दिया गया है। इस कार्यक्रम के उद्देश्य और विषय को जानने के लिए कार्यक्रम परिचय को ध्यान से पढ़िए। साथ ही साथ खंड के विषय और उद्देश्य को समझने के लिए खंड प्रस्तावना अवश्य पढ़िए।

आपके सामने इस पाठ्यक्रम का पहला खंड है जिसमें चार इकाइयां हैं। इन इकाइयों को पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना लाभदायक होगा कि इस पाठ्य सामग्री को किस प्रकार पढ़ना चाहिए। यहां हम एक इकाई की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं और इकाई को विभिन्न भागों और उपभागों में बांटने की व्यवस्था से आपको परिचित करा रहे हैं। इसके बाद हम आपको बताएंगे कि इकाई को आप कैसे पढ़ें और इस पाठ्य सामग्री में दिए हुए कार्यों को किस प्रकार करें।

इकाई की रूपरेखा

इकाइयों की रूपरेखा का व्यवस्थित रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :

ग.0 उद्देश्य

ग.1 प्रस्तावना

ग.2 भाग (भाग की विषय-वस्तु)

ग.2.1 उपभाग ग.2 का 1

ग.2.1 उपभाग ग.2 का 1

.....

.....

.....

क्या आप जानते हैं

ज़रा सोचिए

ग.3 भाग (भाग की विषय-वस्तु)

ग.3.1 उपभाग ग.3 का 1

ग.3.2 उपभाग ग.3 का 2

.....

.....

.....

यहां ग चिन्ह इकाई की संख्या का द्योतक है।

प्रत्येक इकाई के अंतिम चार भागों के शीर्षक इस प्रकार दिए गए हैं :

सारांश

शब्दावली

कुछ उपयोगी पुस्तकें

इकाई के भागों का क्रमांकन

इकाई के भागों की संख्या अलग-अलग हो सकती है और भागों का क्रमांकन इकाई के भागों की संख्या के अनुरूप किया गया है। अंतिम चार भागों का क्रमांकन पहले आए भागों के क्रम के अनुसार किया गया है। जैसा कि इस योजना में पहले ही सुझाया गया है, हमने इकाइयों को भागों में विभाजित किया है। इससे पढ़ने में आसानी होती है और विषय जल्दी समझ में आ जाता है। प्रत्येक भाग का शीर्षक मोटी छपाई में है ताकि स्पष्ट रूप से दिखाई दे और उपभाग अपेक्षाकृत कम मोटी छपाई में है। उपभागों में महत्वपूर्ण स्थल भी मोटी छपाई में है ताकि उन उपभागों को आप आसानी से देख सकें, जिन पर हमने आपका ध्यान आकर्षित किया है।

इनका क्रमांकन (i), (ii), (iii) आदि किया गया है। एकरूपता के लिए हमने सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की प्रत्येक इकाई में एक समान योजना अपनाई है। आइए, अब हम इकाई के प्रत्येक भाग की चर्चा करें।

उद्देश्य

हमने प्रत्येक की शुरुआत 'उद्देश्य' भाग से की है। इसमें संक्षेप में, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस इकाई का अध्ययन करने के बाद हमारी आपसे क्या अपेक्षा है।

प्रस्तावना

'प्रस्तावना' भाग में हमने निम्नलिखित बातों को विशेष रूप से स्पष्ट किया है: क) खंड की पिछली इकाइयों से इकाई का संबंध, ख) इकाई की विषय-वस्तु, और ग) प्रस्तावना और सारांश के बीच सभी भागों में विषय-वस्तु को किस क्रम में प्रस्तुत किया गया है।

सारांश

सारांश शीर्षक के अंतर्गत प्रत्येक इकाई को संक्षेप में दोहराया जाता है। यह पूरी इकाई का सारांश होता है।

क्या आप जानते हैं ?

चूंकि यह पाठ्यक्रम मुख्यत: सैद्धांतिक विचारों और अन्य संबंधित अवधारणाओं से सम्बद्ध है अत: कभी-कभी कुछ विचारों की एक अलग खाने (box) में व्याख्या करनी पड़ती है। यह प्रासंगिक जानकारी आपको पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु को पूरी तरह समझने के लिए जरूरी है। इन खानों में (i) अवधारणाओं संबंधी व्याख्यात्मक टिप्पणी, (ii) विशेष विचारकों के जीवन परिचय संबंधी विवरण, (iiii) विचारकों के प्रमुख कार्यों के बारे में जानकारी, तथा (iv) सामाजिक-राजनैतिक घटनाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदि समाविष्ट हैं।

चित्र

प्रत्येक खंड के ग्राफ़, तालिका, चित्र, आरेख, चार्ट आदि के रूप में कुछ चित्र दिए जाते हैं। इन चित्रों का मुख्य प्रयोजन अध्ययन सामग्री को अधिक बोधगम्य और रोचक बनाना है।

ज़रा सोचिए

इकाई के मुख्य भाग या लम्बे उपभाग के अंत में 'ज़रा सोचिए' शीर्षक के अधीन प्रश्न दिए गए हैं, जिनके उत्तरों की जांच आपको स्वयं करनी है।

ज़रा सोचिए के उत्तर लिखने में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :

क) प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अलग कागज पर लिखें।

ख) संबंधित इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कर लें।

आपको प्रत्येक इकाई सावधानी से पढ़नी चाहिए और हाशिए में महत्वपूर्ण मुद्दे नोट कर लेने चाहिए। इससे आपको अध्ययन में सहायता तो मिलेगी ही साथ ही इससे सत्रीय कार्य के प्रश्नों के उत्तर देने में आपको सरलता होगी।

अपने अनुभव से सीखिए

जरा सोचिए के अलावा आपके लिए अपने अनुभव से सीखिए के रूप में कुछ अभ्यास करने के लिए काम दिए गए हैं।

आप पाठ्य सामग्री ध्यानपूर्वक पढ़ें और इन प्रश्नों का उत्तर देते समय पाठ्य सामग्री में दी गई जानकारी का उपयोग करें। ये अभ्यास इस उद्देश्य से दिए गए हैं ताकि आप में एकसी योग्यता पैदा हो सके जिससे आप जीवन के रोजमर्रा के अनुभवों से अपनी पढ़ाई को जोड़ सकें। अलग कागज पर इस अभ्यास को पूरा कीजिए और फिर बाद में अध्ययन केंद्र के अन्य विद्यार्थियों के साथ अपने उत्तरों से संबंधित चर्चा कीजिए। सत्रांत परीक्षा में आपको 'अपने अनुभव से सीखिए' भाग से संबंधित प्रश्न भी दिए जा सकते हैं। इसलिए प्रत्येक इकाई के अपने अनुभव से सीखिए अभ्यासों को जरूर पूरा कीजिए।

शब्दावली

प्रत्येक इकाई के अन्त में शब्दावली दी गई है, इसमें विशेष शब्दों के सामान्य अर्थ तथा तकनीकी-अर्थ दिए गए हैं और कठिन शब्दों की परिभाषा दी गई है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

कुछ उपयोगी पुस्तकें शीर्षक के अधीन हमने कुछ पुस्तकों का उल्लेख किया है। यदि ये पुस्तकें आपके अध्ययन केंद्र में या अपने निवास स्थान के नजदीक किसी पुस्तकालय में उपलब्ध हों तो आप उन्हें पढ़ लें। इन पुस्तकों को पढ़ना अनिवार्य नहीं है। इनसे निस्संदेह आपको प्रत्येक इकाई में दी गई विषय-वस्तु को समझने में और अपने ज्ञान का स्तर बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

संदर्भ

कुछ उपयोगी पुस्तकों के अलावा हमने प्रत्येक खंड के अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी है। यह सूची उन पुस्तकों, लेखों, रिपोर्टों की है जिनकी मदद से पाठ्य सामग्री तैयार की गई है। इस सूची को देने का मुख्य उद्देश्य है कि आपको मालूम हो कि हर विषय में उपलब्ध सामग्री कितने तरह की है। साथ में यदि आपको पाठ्य सामग्री में किसी बिंदु पर विस्तृत जानकारी की इच्छा हो तो आप इन स्रोतों के माध्यम से ऐसा कर सकते हैं। इनका पता लगाने में आपकी मदद करने के लिए हमने प्रत्येक पुस्तक/लेख के लेखकों का नाम, प्रकाशन का वर्ष, पुस्तक/लेख का शीर्षक, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन के स्थान का पूरा विवरण दिया गया है। इन संदर्भ सूची के अलावा हिंदी माध्यम की पाठ्य सामग्री के साथ हमने हिंदी में मिलने वाली पुस्तकों की सूची भी हर खंड के अन्त में दी है। प्रयास रहेगा कि आपके अध्ययन केंद्र में ये पुस्तकें आपको उपलब्ध हों।

दृश्य-श्रव्य सामग्री

मुद्रित सामग्री के अनुपूरक के रूप में कुछ इकाइयों को दृश्य-श्रव्य सामग्री के लिए चुना गया है। इनसे आपको इकाई और अच्छी तरह से समझने में सहायता मिलेगी। आपको सलाह दी जाती है कि आप अपने अध्ययन केंद्र के समन्वयकर्ता से सम्पर्क बनाए रखें ताकि आप दृश्य-श्रव्य साधनों का लाभ उठा सकें।

सत्रीय कार्य

आपको पूरे पाठ्यक्रम के लिए दो सत्रीय कार्य मिलेंगे। ये सत्रीय कार्य शिक्षक द्वारा जांचे जाएंगे। इन्हें पूरा करके मूल्यांकन के लिए आप अपने अध्ययन केंद्र को भेजें। यह बात अच्छी तरह देख लें कि

सभी सत्रीय कार्य पूरे किए गए हों क्योंकि इन सत्रीय कार्यों में प्राप्त अंक आपकी डिग्री के लिए अंतिम मूल्यांकन में जोड़े जाते हैं। सत्रीय कार्य करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में अवश्य रखें :

- अपना क्रमांक साफ-साफ लिखें, और
- उत्तर अपने हाथ से लिखें और
- साफ-साफ और सुन्दर लिखें ताकि आपके उत्तर आसानी से पढ़े जा सकें।
- अपना उत्तर लिखते समय कागज के दोनों ओर हाशिए छोड़िए ताकि परीक्षक आपके उत्तर पर टिप्पणी कर सके।

सत्रीय कार्य का उत्तर लिखने से पहले:

- खंड की सभी इकाइयां और (यदि उपलब्ध हो तो) अतिरिक्त पाठ्य सामग्री पढ़ें।
- सत्रीय कार्य के उत्तर निर्धारित अंतिम तारीख तक अध्ययन केंद्र में पहुंच जाना चाहिए।

सत्रांत परीक्षा एफ.ई.डब्ल्यू. 01-4 खंड में दी गई मुद्रित सामग्री का अध्ययन और इस पाठ्यक्रम में इकाइयों तथा खंडों से संबंधित दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम सत्रांत परीक्षा देने में आपके लिए सहायक होंगे। इस परीक्षा में प्रश्न पत्र के तीन भाग होंगे।

अंतिम भाग, भाग 'ग' में ऐसे प्रश्न हैं जिनका केवल एक ही उत्तर संभव है तथा जिसका चुनाव आपको दी गई संभावनाओं में से करना है। सत्रांत परीक्षा के लिए आपको इन तीन मुख्य श्रेणियों के प्रश्नों को विशेष रूप से तैयार करना चाहिए।

पाठ्य सामग्री की तैयारी

इस पाठ्यक्रम का पाठ्य विवरण एक विशेषज्ञ समिति (इस खंड के पृष्ठ 2 पर देखिए) द्वारा तैयार किया गया है। इसके अलावा इस पाठ्य की तैयारी में पाठ लेखक, संपादक, पाठ्यक्रम/पाठ संयोजकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विशेषज्ञ समिति ने खंडों और इकाइयों के विषयों और उप विषयों का निर्धारण किया है। पाठ लेखकों ने इन पाठों को लिखा है। पाठ्यक्रम के संपादक और खंड संपादकों ने सावधानीपूर्वक इन पाठों की जांच की है और उसे विद्यार्थी के अनुकूल बनाने की कोशिश की है। खंड संयोजकों ने इस पाठ्य सामग्री को स्वध्याय पूर्ण और मुक्त विश्वविद्यालय के अनुरूप बनाने में सार्थक योगदान दिया है। आपको मालूम होना चाहिए कि खंड संयोजक इग्नू में कार्यरत स्थाई शिक्षक/शिक्षिका हैं। खंड संयोजकों ने ही मुद्रण के लिए अन्तिम प्रतिलिपि तैयार की है और चित्र आदि की व्यवस्था की है। खंड संयोजक ने ही हिन्दी में भी अनुवाद कार्य कराया है। इसके अलावा हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में दृश्य और श्रव्य पाठ सामग्री खंड संयोजकों ने ही तैयार की है।

कार्यक्रम संयोजक सारे पाठ्यक्रमों के बीच समन्वय स्थापित करता है। वह इसका ध्यान रखता है कि किसी प्रकार के दुहराव या परस्पर विरोधी बातें पाठ्यक्रम में न आएं । इस प्रकार गहन जांच पड़ताल के बाद इग्नू के शिक्षक/शिक्षिका स्वाध्याय पाठ तैयार करते हैं। इग्नू के शिक्षक/शिक्षिका को खुशी होगी यदि आप अपने सुझाव और टिप्पणी हमें भेजें ताकि आगे हम इस पाठ्यक्रम में अपेक्षित सुधार ला सकें।

हिन्दी भाषा में तैयार की गई पाठ्यक्रम सामग्री अंग्रेजी माध्यम की सामग्री का शब्दशः अनुवाद न होकर हिन्दी में रूपांतर है।

यही बात 'सत्रीय कार्य' के लिए भी लागू होती है।

पाठ्यक्रम परिचय : भारतीय समाज म माहलाए : सामाजिक-ऐतिहासिक संदर्भ

महिला सशक्तिकरण और विकास के प्रमाणपत्र कार्यक्रम का यह पहला ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। इस प्रोग्राम का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के मुद्दों के विषय में समालोचनात्मक बहस को बढ़ावा देना है जिसके फलस्वरूप आप इससे जुड़े मुद्दे पर न केवल सवाल उठा सकें बल्कि उत्तर भी खोज सकें।

प्रथम पाठ्यक्रम प्राथमिक हैं लेकिन समाज के वृहत् परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। कहने की जरूरत नहीं कि महिलाओं की स्थिति और सामाजिक-लिंग जेंडर भूमिकाएं मुख्यत: समाज की विभिन्न संस्थाओं और प्रक्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है। इस हिसाब से हम कह सकते हैं कि जेंडर भूमिकाएं निर्मित और प्रगम हैं न कि स्थिर और अपरिवर्तनशील।

आपने पहले खंड भारतीय समाज में महिलाएं में हम भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर एक सरसरी नजर डालेंगे। भारतीय समाज की विविधता के फलस्वरूप महिलाओं में भी भिन्नताएं पाई जाती हैं। परन्तु इन भिन्नताओं के बावजूद सभी महिलाओं को नियति कुछ हद तक समान है – वह सब शोषण की शिकार है और समाज हाशिए पर खड़ी हैं। महिला स्थिति के यार्थिक मूल्यांकन के लिए इन भिन्नताओं के संदर्भ में उसे समझना अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही महत्वपूर्ण है महिला छवि की आदर्श प्रस्तुति को यथार्थ से अलग करना। महिला की प्रस्थिति को आज के युग में समझने के लिए यह जांचना जरूरी है कि पहले उनकी स्थिति क्या थी, वह किन-किन परिवर्तनों से गुजरी है, निरंतरताएं क्या रही हैं और संघर्ष के पहलू कौन-कौन से रहे हैं।

अपने अगले खंड में हमने विभिन्न सूचकों के इस्तेमाल के जरिए महिलाओं की स्थिति और समाज में उनकी हैसियत की पड़चोलना जारी रखी है। अपने दूसरे खंड, महिला स्थिति: कुछ मूल सूचकांक को हमने विभिन्न जनसांख्यिकी, आंकड़ों सूचकांकों, स्त्री-पुजाति दर, मृत्यु दर, विवाह के समय आयु, वगैरा पर नजर डालने से प्रारंभ किया है। सिर्फ सांख्यिकी ही संपूर्ण रूप से हमें आलोचनात्मक समझ नहीं दे सकती परन्तु यकीनन ये हमें स्थिति को समझने में मदद करती है। इन जनसांख्यिकी आंकड़ों के और सूचकांको के अलावा, हम महिला स्थिति की जांच विभिन्न चरणों से करने की कोशिश करेंगे जैसे - कार्य तक पहुंच, उनकी राजनीतिक भागीदारी, और शिक्षा तक पहुंच। यह सब अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचक हैं जो हमें समाज में महिलाओं की प्रगति के बारे में बतलाते हैं।

महिलाओं की स्थिति की पड़चोलना के पश्चात हम अपने आप से यह सवाल पूछना चाहेंगे कि क्यों भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति इतनी धूमिल है जो एक चिंता का विषय है। अगर बच्चे स्कूल जाना बंद कर देते हैं या औरतों को पुरुषों से कम आय मिलती है या उनकी संख्या पुरुषों से कम है तो इनके क्या कारण हैं ? कारण कई हैं - संरचनात्मक और अभिवृत्तिकरण। अपने तीसरे खंड : सामाजिक संस्थाएं, प्रक्रियाएं और महिलाएं में हमने उन सभी संस्थाओं पर नजर डाली है। जो सामाजिक लिंग भूमिकाओं को आकार देती है। अपने जन्म लेने के क्षण से ही सामाजिक अपेक्षाओं के जाल में एक लड़की जकड़ ली जाती है। हम जांच करेंगे कि किस प्रकार परिवार वृहत समाज और वर्ग पृष्ठ भूमि में लड़की का समाजीकरण रूप लेता है। यह पाठ्यक्रम आपको प्रोत्साहित करेगा कि आप पितृसत्तात्मक विचारधाराओं जो विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे परिवार, विवाह या जाति जैसी संस्था या जाति और वर्ग पृष्ठभूमि के अंतर्गत कार्य करती हैं उन की आलोचनात्मक जांच कर सकें। ज़ेंडर भूमिकाओं को इसके अलावा हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में भी बल मिलता है जैसे

फिल्मों में, किताबों में, कहानियों में और विज्ञापन पट्टों में और विभिन्न वस्तुओं में जो हम खरीदते हैं। इस प्रकार की जेंडर रुढ़िबद्ध धारणाएं इतने गहरे रूप से समाई हुई है कि अचेतन रूप से यह हमारे मस्तिष्क पर घर कर लेती है। इसलिए हम यह चाहेंगे कि इस पाठ्यक्रम से हमारे छात्रों को रोजमर्रा की सामान्य लगने वाली घटनाओं और बातों पर प्रश्न उठाने में बढ़ावा मिले और इन सब के धरातल में कार्य करने वाली विचारधाराओं को उजागर करने में मदद मिले।

धर्म एक ऐसी सामाजिक संस्था है जिसका सिर्फ धार्मिक पहलू ही नहीं है बल्कि समाज में महिलाओं की स्थिति को भी निर्धारित करता है। अपने आखिरी खंड, धर्म व्यक्तिगत कानून और महिला अधिकार, में धार्मिक विचारधाराओं, मतों और सिद्धांतों का हमेशा से मानवता पर गहरे प्रभाव के बारे में पता चलता है। धर्म के नाम पर कई लड़ाइयां लड़ी गई, लोग मारे गए और महिलाओं पर बंदिशें थोपी गई। इस खंड की इकाईयों में हम विभिन्न धर्मों, उनमें महिलाओं की स्थिति, उनके व्यक्तिगत कानूनों जो धार्मिक रूपरेखा, परंपरा और ज्ञान बोध पर आधारित है। उस पर एक आलोचनात्मक और बिना पक्षपात नजर डाली है। धर्म हमेशा से ही लोगों को प्रबल पहचान देने वाला एक समुदाय से जुड़े होने की भावना देने वाला कारक रहा है। यह देखने में आया है कि समुदायों के धर्म निरपेक्ष ढांचे में जहां लोग परंपरा-आधार पर जिंदगी ढूंढते है, वहां उन्हें धर्म निरपेक्ष राज्य में अपने को जोड़ पाना कठिन सा लगने लगता है। सती या विधवा दाह एक ऐसा ही उदाहरण हैं जहां धार्मिक या सामुदायिक परंपराएं धर्मनिरपेक्ष कानूनों से टकराने लगती हैं। इन सबमें महिला सबसे ज्यादा शोषित होती है और उसीको बर्दाश करना पड़ता है। परंपरा के धारक के रूप में अपने समुदाय के प्रति निष्ठा धर्म और परंपरा को बचाए रखने के लिए प्रेरित करती है जो कि स्वयं में ही शोषित है। यह धार्मिक और सामुदायिक विचारधाराएं जेंडर न्याय की लड़ाई में बहुत ही बड़ी बाधा है। धर्म और समुदाय के तहत महिलाओं की स्थिति में समानता के बावजूद, धर्म, प्रजाति, भाषा के आधार पर यह आपस में बंटी हुई है।

हम उम्मीद करते हैं कि इस पाठ्यक्रम के द्वारा आपको समाज में महिलाओं की स्थिति और सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ में उनकी स्थिति के ऊपर आलोचनात्मक रूख अपनाने, बेहतर नजरिए का विकास करने में मदद मिलेगी और संपूर्ण रूप से परिवर्तन लाने में आप मदद कर पाएंगे।

खंड परिचय : खंड –1 भारतीय समाज में महिलाएं

भारतीय समाज में महिलाएं : सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ, हमारे कार्यक्रम का परिचायक खंड है। इस कार्यक्रम के तहत हम भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति के प्राथमिक तथा सामान्य लेकिन आलोचनात्मक समझ को सामने रखेंगे। पहले खंड, भारतीय समाज में महिलाएं, के अंतर्गत तीन इकाइयां है जो भारतीय समाज में महिलाओं की सामान्य स्थिति की पड़लोचना करती है।

इकाई 1 में भारतीय संस्कृति की अभिन्न विभिन्नताओं व विविधताओं की चर्चा की गई हैं जो हमें लिंग पहचान (जेंडर आइडेंडिटी) के बारे में बताती है। विभिन्न समान्नताओं पर भी हमने एक नजर डाली है। महिलाएं धर्म, प्रजाति और वर्ग के आधार पर हो सकता हो कि विभाज़ित हों लेकिन भिन्न परिप्रेक्ष्यों के अंतर्गत भी उन्हें हमेशा पुरुषों के नीचे ही रखा जाता है चाहे वह आर्थिक संसाधनों की पहुंच का मामला हो, शिक्षा का मामला हो, संपति उत्तराधिकार या कोई भी क्षेत्र हो। यह समानताएं और विभिन्न परिप्रेक्ष्य हैं जो हमारे सामने शोषण के समान सिद्धांत का रूप प्रस्तुत करते हैं और यह महिलाओं को एकताबद्ध करता है।

इस खंड की इकाई 2 में महिलाओं की विभिन्न संस्कृतियों में आदर्श और मिथिक छवि की प्रस्तुति और यथार्थ के बीच खाई की चर्चा की गई है। मिथक और यथार्थ के बीच की दूरी हमें मदद करती है भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को यथार्थिक तौर पर मूल्यांकन करने की। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन करने की चेष्टा को जारी रखते हुए हमें जरूरत है यह देखने की कि हमने कहां से शुरू किया महिलाओं की प्रस्थिति और स्थिति क्या रही है और अब वह कहां पहुंची हैं ? हमने महिलाओं की स्थिति में परिवर्तनों तथा उससे जुड़े हुए निरंतर संघर्षों को बदलते स्वरूपों पर भी नजर डाली है।

इकाई 1 सामाजिक विविधताएं और समानताएं

रूपरेखा

1.1 लक्ष्य और उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 बहुसांस्कृतिक भारत
1.3 महिलाओं की स्थिति: भिन्नता के आधार
  1.3.1 महिला साक्षरता
  1.3.2 महिलाएं और असंगठित क्षेत्र में रोजगार
  1.3.3 महिलाएं और संगठित क्षेत्र में रोजगार
1.4 चिरस्थायी पितृसत्तात्मक प्रणाली : एक समानता
  1.4.1 महिलाएं और घरेलू काम-काज
  1.4.2 धार्मिक विविधता : महिलाएं और धार्मिक अनुष्ठान
  1.4.3 दाम्पत्य संबंध
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में भारतीय समाज में नारी की स्थिति सामाजिक-विविधताओं और समानताओं का विवेचन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातें जान सकेंगे :

- भारत में विद्यमान सामाजिक विविधता की पहचान और उसका विवेचन करना;
- महिलाओं पर प्रभाव डालने वाले बहुविधकारी कारकों का विश्लेषण करना;
- भारतीय महिलाओं में विद्यमान समानताओं का विवेचन करना; और
- इन कारकों के मद्देनजर महिलाओं की स्थिति का वर्णन करना।

1.1 प्रस्तावना

भारत एक ऐसा देश है जिसमें भाषा, धर्म, जातीयता, नस्ल, संस्कृति इत्यादि कई किस्म की विविधताएं देखने को मिलती हैं। सदियों से दुनिया के विभिन्न भागों से अनेक जन समुदायों के कारवां यहां आए हैं। इनमें से कुछ समुदाय यहीं बस गए और यहां के वासी बन गए। इनमें से हर समुदाय ने एक दूसरे को किसी न किसी तरह से प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए केरल के ईसाइयों को ही लीजिए, जिन्होंने ईसाई धर्म को सबसे पहले अपनाया था। ये निस्संदेह धर्म और आस्था से ईसाई हैं, मगर उनमें अमेरिका या यूरोप के सह-मतावलंबी ईसाईयों से कोई समानता नहीं पाई जाती है, जो स्वयं भी एक समरूप जनसमुदाय नहीं कहे जा सकते हैं। बल्कि इन ईसाइयों में अपने हिंदू पड़ोसियों के साथ कई सांस्कृतिक समानताएं पाई जाती हैं।

यह अक्सर कहा जाता है कि भारत की विविधता में एकता है। *भारतीय समाज में नारी: सामाजिक विविधताएं और समानताएं* शीर्षक की इस इकाई में हम यही जानेंगे कि इन तमाम भिन्नताओं, भेदों और विशिष्टताओं के बावजूद भी महिलाओं को किस प्रकार उपेक्षा

के समान अनुभव से गुजरना पड़ता है।

आप जब किसी उच्च शिक्षित शहरी स्त्री को सज-संवर कर कार चलाते हुए काम पर जाते हुए देखते होंगे तो वह निश्चय ही आपको खेतों, खलिहानों में कमरतोड़ मेहनत करती अनपढ़ और गरीब औरत से बिल्कुल अलग नजर आती होगी। तब क्या आप कभी सोचते हैं कि इन दोनों महिलाओं में भी कोई समानता हो सकती है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस सतही भेद के पीछे इनके बीच समानता का एक सूत्र विद्यमान है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक महिला खेतों में काम कर रही है तो दूसरी शहर के किसी शानदार दफ्तर में। लेकिन दोनों को घर संभालना होता है, घर के सारे काम-काज करने होते हैं, बच्चों की देखभाल करनी होती है और इस तरह के तमाम काम करने पड़ते हैं। हो सकता है कि उन्हें अपनी कमाई को अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करने का अधिकार भी न हो। ऐसी तमाम बातों की सूची अंतहीन है। चाहे वह शहर में हो या देहात में, महिलाओं की इस दशा में यही समानता निहित है कि यह पितृसत्ता और दमनात्मक स्थितियों को दर्शाती हैं जिनमें उन्हें रहना है। आपको पता चलेगा कि अपने-अपने परिप्रेक्ष्य में दोनों को अपने पुरुषों जैसी स्वतंत्रता नहीं मिलती। वे दोनों एक वृहत्तर पुरुषोन्मुखी प्रणाली में बसी हैं जिसे हम अक्सर पितृसत्तात्मक प्रणाली कहते हैं।

इन आधारभूत समानताओं को समझने के लिए महिलाओं के भिन्न सामाजिक प्रसंग को जानना बेहद जरूरी है, जिसमें वे हैं। इसलिए जब हम किसी मुस्लिम या हिंदू महिला की बात करते हैं तो हमें उनके लिए एक वर्णनात्मक श्रेणी ढूंढने के बजाए अच्छी तरह से विश्लेषण कर उनमें भेद जान लेना चाहिए क्योंकि वर्णनात्मक श्रेणी की परिणति रूढ़िरूप (स्टीरियोटाइप) में हो जाती है। इस छोटे से नुस्खे को ध्यान में रखते हुए हम इस इकाई में अपनी चर्चा आगे बढ़ाएंगे।

आइए पहले हम संक्षेप में भारतीय समाज की विविधता के बुनियादी स्वरूप को जान लें। इसके बाद हम समाज में महिलाओं की स्थिति के सूचकों जैसे साक्षरता, कार्य सहभागिता, स्वास्थ्य इत्यादि के रूप में प्रतिबिंबित होने वाली विविधताओं पर चर्चा करेंगे। तत्पश्चात हम मूल सामाजिक ढांचों और परिवार, विवाह, धर्म इत्यादि में इनकी भूमिका के मद्देनजर विविधता पर चर्चा करेंगे। तो आइए हम इस भाग की शुरुआत भारतीय समाज की विविध प्रकृति की चर्चा से करें।

1.2 बहु-सांस्कृतिक भारत

भौगोलिक दृष्टि से भारत की सीमाएं उत्तर में जम्मू-कश्मीर से लेकर दक्षिण में केरल और तमिलनाडु, पूर्व में नागालैंड और अरुणाचल प्रदेश से लेकर पश्चिम में गुजरात और महाराष्ट्र तक फैली हुई हैं। भारत के राज्यों और संघीय क्षेत्रों में संस्कृतियां भी भिन्न हैं। भाषा, नस्ल, जाति, धर्म संबंधी विविधताएं विद्यमान हैं। देश में हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, सिख तमाम तरह के मतावलंबी हैं। सो इसके अलावा हमें प्रत्येक सांस्कृतिक अंचल में असंख्य स्थानीय देवी-देवता मिलते हैं। फिर जातियों और जनजातियों में भी महत्वपूर्ण भिन्नताएं विद्यमान हैं।

हिंदुओं की संख्या 82.6 प्रतिशत, मुसलमानों की संख्या 11.4 प्रतिशत, ईसाई 2.4 प्रतिशत, सिख 2.0 प्रतिशत और बौद्ध व जैन 1.2 प्रतिशत और अन्य धर्मों के लोगों की संख्या 0.4 प्रतिशत है। हिंदू से अलग धर्मों के लोगों को धार्मिक अल्पसंख्यक कहा जाता है। इन श्रेणियों

के अतिरिक्त, हमारे देश में जनजातियां भी बड़ी तादाद में रहती हैं जिनकी अपनी विशेष संस्कृति तथा सामाजिक आर्थिक प्रणाली हैं। इनकी जनसंख्या लगभग 8 प्रतिशत है।

देश के कई भागों में जनजातियां बहुसंख्यक हैं। नागालैंड (89 प्रतिशत), मेघालय (80 प्रतिशत) और अरुणाचल प्रदेश (79 प्रतिशत) में ये जनजातियां बहुसंख्यक हैं, तो मणिपुर (31 प्रतिशत), त्रिपुरा (29 प्रतिशत) और मध्य प्रदेश (20 प्रतिशत) की जनसंख्या का पांचवा भाग या उससे अधिक इन्हीं का है। इनके अलावा उड़ीसा, बिहार, गुजरात, आसाम, राजस्थान और आंध्र प्रदेश में भी ये अच्छी खासी संख्या में मौजूद हैं।

इसी तरह एक अन्य श्रेणी भाषायी अल्पसंख्यकों की है। भारत के संघीय क्षेत्रों और 23 राज्यों में 18 राज्यों की 18 प्रतिशत जनसंख्या की मातृभाषा क्षेत्रीय बोली नहीं है। लगभग 48 प्रतिशत लोग अपने राज्य की राजभाषा के अलावा क्षेत्रीय भाषा बोलते हैं। भाषायी अल्पसंख्यकों की संख्या आसाम में 50 प्रतिशत, जम्मू और कश्मीर में 48 प्रतिशत, कर्नाटक में 35 प्रतिशत, दिल्ली में 34 प्रतिशत, त्रिपुरा में 31 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 24 प्रतिशत, पंजाब और बिहार में 21 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 17 प्रतिशत और उड़ीसा तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में लगभग 15 प्रतिशत है। केरल को भाषायी दृष्टि से सबसे अधिक समरूप राज्य कहा जा सकता है, जहां गैर-मलयालम भाषियों की संख्या 4 प्रतिशत है।

क्या आप जानते हैं?-1

- आम तौर पर यह माना जाता है कि सभी हिंदू अपने मृतकों का दाह-संस्कार करते हैं। मगर क्या आप जानते है कि सभी हिंदू अपने मृतकों का दाह-संस्कार नहीं करते। बल्कि देश में, विशेषकर दक्षिण भारत में कई समुदाय और जाति समूह ऐसे हैं जो अपने मृतकों को दफ़न करते हैं। तिस पर वे स्वयं को हिंदू कहते हैं और अन्य लोग उन्हें हिंदू ही मानते हैं।
- क्या आप जानते हैं कि कुछ समुदायों में भ्राता-भगिनी जैसे सगेरे भाई-बहनों (बुआ की बेटी/बेटा या मामा की बेटी/बेटे) या मामा-भांजी के बीच विवाह को तरदीह दी जाती है। जबकि अन्य समुदायों में इसे कौटुंबिक व्यभिचार की सज्ञा दी जाती है।
- अमूमन यह समझा जाता है कि संपत्ति वंश परंपरा इत्यादि का प्राकृतिक वारिस बेटा ही होता है। मगर ऐसे समुदाय भी मौजूद हैं जिनमें बेटी ही प्राकृतिक उत्तराधिकारी होती है और संपति उसे ही मिलती है।

1.3 महिलाओं की स्थिति: भिन्नता के आधार

भारत में महिलाओं की स्थिति के कई पहलू हैं सो उसका सामान्यीकरण करना कठिन कार्य है। इसका कारण मुख्यत: अंचलों, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों, वर्गों और अंतत: विभिन्न धार्मिक, भाषायी, जनजातीय और जाति समूहों के बीच विद्यमान भारी भिन्नता है। कुछ खास प्रसंगों में भारतीय उपमहाद्वीप एकल सांस्कृतिक भूभाग हैं मगर कई अन्य मामलों में यह भिन्नताओं का संगम है। फिर अंचलों के बीच में भी भारी भिन्नताएं है। सो अगर हम महिला साक्षरता और शिक्षा, स्त्री-पुंजाति (महिला-पुरुष) अनुपात, लड़कियों की विवाह के समय आयु, आर्थिक क्रिया-कलापों में महिला सहभागिता इत्यादि को लेकर चलते हैं तो कुछ अंचल अन्य अंचलों से पिछड़े हैं।

1.3.1 महिला साक्षरता

हम जब भी साक्षरता के आंकड़ों की बात करते हैं, तो हम महिलाओं की समाज में स्थिति को देख रहे होते हैं। एक शिक्षित महिला को निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने का अपेक्षाकृत अधिक अवसर मिलता है। कम से कम उसके पास जीविका अपनाने, अपने क्षितिज को विस्तृत बनाने के साथ-साथ नया ज्ञान हासिल करने के विकल्प तो रहते ही हैं, जबकि अशिक्षित महिला इनसे वंचित रहती है।

आम तौर पर यह देखा गया है कि जो महिलाएं शिक्षित हैं, उनकी कार्यसहभागित और स्वास्थ्य में सुधार आ जाता है।

साक्षरता के आंकड़ों से हमें महिलाओं की सामान्य सामाजिक स्थिति का संकेत मिल जाता है। हो सकता है कि आप स्वयं से यह प्रश्न करें कि आखिर बिहार और राजस्थान में लड़कियां स्कूल क्यों नहीं जातीं? इसके क्या कारण हो सकते हैं? इसका कारण क्या यह हो सकता है कि बिहार और राजस्थान में पितृसत्तात्मक प्रणाली अन्य राज्यों से अधिक निरंकुश है,

वर्ष 1991 में देश की कुल साक्षरता 52.21 प्रतिशत थी–जिसमें पुरुष साक्षरता लगभग 64 प्रतिशत तो महिला साक्षरता लगभग 39 प्रतिशत थी। जनगणना 1991 के अनुसार भारत में निरक्षर महिलाओं की संख्या 247.6 करोड़ थी। शहरी क्षेत्रों में 66 प्रतिशत पुरुष साक्षरता की तुलना में महिला साक्षरता 48 प्रतिशत थीं, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता मात्र 18 प्रतिशत पाई गई। साक्षरता के क्षेत्र में प्रगति करने वाले प्रमुख राज्यों में केरल सबसे आगे है जहां कुल साक्षरता 90.6 प्रतिशत (87 प्रतिशत महिला साक्षरता) है। उसके बाद मिजोरम में 82.3 प्रतिशत (महिला साक्षरता 78.9 प्रतिशत), अंदमान और निकोबार में 73 प्रतिशत (महिला साक्षरता 65.5 प्रतिशत), तमिलनाडू में 62.7 प्रतिशत (महिला साक्षरता 51.4 प्रतिशत), महाराष्ट्र में 64.9 प्रतिशत (महिला साक्षरता 52.3 प्रतिशत), हिमाचल प्रदेश में 63.9 प्रतिशत (महिला साक्षरता 52.3 प्रतिशत) पाई गई। पिछड़े राज्यों में साक्षरता राजस्थान में 38.5 प्रतिशत (महिला साक्षरता 20.4 प्रतिशत), बिहार में 38.5 प्रतिशत (महिला साक्षरता 23.1 प्रतिशत) और उत्तर प्रदेश में 41.6 प्रतिशत (महिला साक्षरता 25.3 प्रतिशत) है।

1.3.2 महिलाएं और असंगठित क्षेत्र में रोजगार

भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाएं बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। शहरी और देहाती दोनों महिलाएं नाना प्रकार के व्यवसायों में लगी हुई हैं। मगर महिलाओं का रोजगार उनके वर्गीय और शहरी या ग्रामीण पृष्ठभूमि के अनुसार एक दूसरे से भिन्न है। शहरी शिक्षित महिलाएं अधिकतर संगठित क्षेत्र में रोजगाररत हैं, लेकिन गरीब शहरी व देहाती महिलाएं असंगठित क्षेत्र में रोजगार कर रही हैं जोकि कुल श्रम-शक्ति का 14 प्रतिशत है। ग्रामीण और शहरी इलाकों में 87 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं असंगठित क्षेत्र में लगी हुई हैं। इस क्षेत्र या सेक्टर में लगी महिला श्रमिकों में ज्यादातर अनपढ़ हैं जिनके पास अपने कार्य या पेशे से संबंधित न तो कोई दक्षता और न ही कोई प्रशिक्षण हासिल है। इन कारणों के चलते उन्हें कम पारिश्रमिक दिया जाता है हालांकि वे औसतन अधिक घंटे श्रम करती हैं। फिर उन्हें अस्वस्थकर कार्यगत स्थितियों में काम करना पड़ता है और नौकरी संबंधी सुरक्षा भी नहीं रहती। वर्ग और जाति पर आधारित असमान सामाजिक ढांचा तथा महिलाओं की कम शारीरिक गतिशीलता, ये सब भी महिलाओं की श्रम सहभागिता को प्रभावित करते हैं।

यह सुज्ञात है कि जाति प्रस्थिति और शारीरिक श्रम में भागीदारी परस्पर विपरीत हैं अर्थात उच्च जाति कम शारीरिक श्रम तथा निम्न जाति अधिक श्रम करती है। फिर अतिव्यापन

भी विद्यमान रहता है, जो हर जगह में भिन्न होता है। यह धारणा बड़े पैमाने पर व्याप्त है कि मजदूरी के लिए क़ाम करना निम्न सामाजिक स्थिति का पर्याय है। इसीलिए उच्च जाति के देहाती लोग मजदूरी या वेतन के लिए काम नहीं करते, शारीरिक श्रम करना तो दूर की बात रही। उनकी महिलाएं भी मजदूरी के लिए शारीरिक श्रम या कार्य नहीं करतीं। उन्हें घर के बाहर काम करना अपनी उच्च सामाजिक स्थिति के अनुरूप ठीक नहीं जंचता। अत: समाज में अपनी ऊर्ध्वगामी गतिशीलता के चलते वे खेती-बाड़ी के काम से अधिक कटी रहती हैं।

उत्तरजीविता के लिए कार्य करती हुई
सौजन्य : सी.डब्लू.डी.एस., नई दिल्ली

मजदूरी के लिए कार्य करने में आपत्ति सिर्फ उच्च जातियों में ही नहीं हैं बल्कि यह जाति-क्रम परंपरा के मध्य क्रम में भी विद्यमान है। मगर यहां श्रम के विनिमय के जरिए इसका तोड़ निकाल लिया जाता है। ग्रामीण क्रम-परंपरा के सबसे निचले स्तर पर ही पुरुष और महिला मजदूरी के लिए काम करते हैं और भूमिहीन मजदूरों के लिए तो आजीविका का एकमात्र स्रोत यही है।

अनुसूचित जातियों की महिला श्रमिकों का चालीस प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। अनुसूचित जनजातियों में यह संख्या 22 प्रतिशत है। गैर-कृषि व्यवसायों में उनका प्रतिनिधित्व नगण्य है। दूसरी तरह से कहें, तो ग्रामीण क्रम-परंपरा के सबसे निचले स्तर पर महिलाएं घर के अंदर और घर से बाहर दोनों जगह कार्य करती हैं। बाहर के कार्य का उन्हें पारिश्रमिक मिलता है, मगर घर के भीतर किए जाने वाले कार्य का नहीं। क्रम-परंपरा के उच्च स्तर पर चारदीवारी ही महिलाओं की विशेषता है, जिसके दायरे में वे आजीवन सिमटी रहती हैं। उच्च जातियों और जमींदार वर्ग की महिलाएं साधारणतया न तो घर और न ही बाहर काम करती हैं।

1.3.3 महिलाएं और संगठित क्षेत्र में रोजगार

विभिन्न व्यवसायों में महिलाओं की दृश्यमानता और सरकारी रोजगार एक नया चलन है हालांकि संगठित क्षेत्र के अधिकांश क्षेत्रों में उनकी संख्या अभी बहुत सीमित है। संगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं में 50 प्रतिशत प्राथमिक पाठशालाओं में शिक्षिकाएं हैं, 15 प्रतिशत सेकेन्ड्री स्कूलों में शिक्षिका, 15 प्रतिशत क्लर्क और 15 प्रतिशत टाइपिस्ट हैं। शेष चिकित्सक, वकील, कॉलेज प्रवक्ता, प्रशासक, कलाकार इत्यादि है। शहरी शिक्षित महिलाओं की संख्या उच्च स्थिति की ग्रामीण महिलाओं से हालांकि कम है, लेकिन वे "स्थिति के फंदे" से बाहर निकल आई हैं और वे अब ऐसी नौकरियां कर रही हैं, जिनसे उन्हें निश्चित आय ही नहीं बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिलती है। इन महिलाओं ने एक ढांचागत और संज्ञानात्मक कार्यक्षेत्र से दूसरे कार्यक्षेत्र में सफल संक्रमण किया है। इस तरह के संक्रमण के लिए पूर्व शर्तें शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन और शिक्षा तक महिलाओं की पहुंच हैं।

आज महिलाओं और पुरुषों को एक ही दफ्तर, बैंक, फर्म या स्कूल में साथ-साथ काम करते देखा जाता है। कई सरकारी दफ्तरों, बैंकों, स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की सर्वेसर्वा महिलाएं ही हैं। आज की जीविकावादी (कैरियर) नारी बहुत दृश्यमान है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि महिलाओं ने जिस तरह से नई भूमिकाएं अपनायी हैं उसे समाज ने चुपचाप स्वीकार कर लिया है। मगर यहां यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि घर चलाने और नौकरी करने का यह दोहरा दायित्व अनेक महिलाओं के लिए बड़ा ही कठोर और श्रमसाध्य होता है। इस क्षेत्र में हुए अध्ययन बताते हैं कि महिलाएं अक्सर घरेलू मांगों के आगे समझौता कर लेती हैं और नौकरी में प्रोन्नति या तरक्की न लेकर अपनी ऊर्ध्व गतिशीलता पर स्वयं रोक लगा लेती हैं।

अनुभव से सीखें

अपने पड़ोस में विभिन्न धर्मों के लोगों से परिचय बढ़ाएं। उनके घरों में धार्मिक क्रिया-कलापों में महिलाओं की भूमिका के बारे में लिखें।

1.4 चिरस्थायी पितृसत्तात्मक प्रणाली : एक समानता

इन तमाम भिन्नताओं के बावजूद सभी भारतीय महिलाओं में कुछ समानताएं विद्यमान हैं, जो हमें उनकी दशा को समझने में मदद करती हैं। सभी जगह घर के भीतर महिलाओं के श्रम का न तो उन्हें कोई पारिश्रमिक मिलता है और न ही उसका कोई मूल्य समझा जाता है। फिर परंपरागत भूमिका संबंधी अपेक्षाएं, लड़कों और लड़कियों का भेददर्शी समाजीकरण तथा सामाजिक लिंग-भूमिका रुढ़िकरण ये सभी महिलाओं की भूमिका पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

गांव के स्तर पर जटिल सांस्कृतिक एंव सामाजिक प्रक्रियाएं कार्य कर रही होती हैं। आधुनिकीकरण की शक्तियों, शहरीकरण, आर्थिक और सामाजिक गतिशीलता के प्रभाव के फलस्वरूप इन सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रियाओं के मूल ढांचों में भी बदलाव आ रहे हैं। इसके बावजूद भी कुछ संस्थाएं चिरकाल से बनी हुई हैं। ऐसा ही एक चिरस्थायी संस्था पितृसत्ता है।

भारतीय समाज की विशेषता पितृसत्ता है, जो समाज और परिवार में नारी की स्थिति को प्रभावित करती है। यही महिलाओं के दर्जे को निर्धारित करता है भले वे किसी भी जाति, वर्ग, धर्म या अंचल की हों। परिवार या कुटुंब के स्तर पर अपनी पत्नी, उसके

प्रजननात्मक श्रम, उसके श्रम के उत्पाद और बच्चों पर नियंत्रण पति का ही रहता है। मगर पितृसत्ता सिर्फ एक पारिवारिक प्रणाली नहीं, बल्कि यह एक सामाजिक प्रणाली है, जो नारी की भूमिकाओं और उनके संबंधों की रचना और उनको परिभाषित करती है। यह वह सामाजिक प्रणाली है, जिसमें हमें पितृसत्ता के सार्वजनिक पहलुओं का प्रतिबिंब मिलता है जहां हम समाज, अर्थ-व्यवस्था, राज्यव्यवस्था, धर्म इत्यादि का नियंत्रण पुरुषों को सामूहिक रूप से करता पाते हैं। यही पुरुष इस नियंत्रण का प्रयोग समूची पुरुष जाति के ही नहीं बल्कि इसके साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से पुरुष के अधिकारों और विशेषाधिकारों की रक्षा में करते हैं। पत्नी के दैनिक श्रम पर अपना नियंत्रण, अधिकार चलाने वाले पति के परिवार को सार्वजनिक अधिकारक्षेत्र में अपने सहगामी मिल जाते हैं जैसे शिक्षा में, रोज़गार के बाज़ार में, अर्थ-व्यवस्था में और राज्य-व्यवस्था में।

1.4.1 महिलाएं और घरेलू काम-काज

भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है। ग्रामीण वर्गों में महिला श्रम का घर और घर से बाहर दोनों जगह बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। हर घर में घर के सभी सदस्यों को दो वक्त खाना पकाकर खिलाने का दायित्व पत्नी का ही होता है।

उसे ही घर से संबंधित और घर के बाहर के सभी काम काज जैसे खरीददारी और खाद्य संसाधन, स्वयं करने पड़ते हैं। छोटे बच्चों का भरण पोषण करना, उन्हें अनुशासन सिखाना और उनका समाजीकरण करना ये सभी उसी के दायित्व हैं। या फिर उसकी बेटी इतनी बड़ी हो गई हो कि वह अपने छोटे भाई-बहनों के लिए अपनी मां के सारे दायित्व, सारे कार्य, कुशलता से पूरे कर सके।

फ़सल बोने, रोपाई और कटाई के मौसम में महिला खेतीहर श्रमिकों को कमरतोड़ कार्य करने पड़ते हैं। उन्हें तड़के सुबह चार बजे तक उठ जाना पड़ता और काम के लिए घर से निकलने से पहले परिवार के लिए भोजन पका कर जाना होता है। रात का भोजन दिन भर काम करके लौटने के बाद वही बनाती है। यहां जिस बात पर विशेष बल दिए जाने की जरूरत है वह यह है कि घरेलू काम काज और घर से बाहर काम, भले ही वह कृषि से जुड़ा हो या उससे अलग हो, समाज में सुस्पष्ट और सूक्ष्म भूमिकाएं तय होती हैं, जो दोनों लिंगों (यानी स्त्री और पुरुष) के बीच श्रम विभाजन को संचालित करती हैं।

रोपाई में काम के लिए जाते हुए, लौटकर घर के काम काज निबटा कर

सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

अनुभव से सीखें-2

अपने सम्प्रदाय में विभिन्न वर्गों के घरों का पता लगाइए और इन परिवारों में लड़कियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के बारे में लिखिए।

1.4.2 धार्मिक विविधता, महिलाएं और धार्मिक अनुष्ठान

जब कभी महिलाओं के सरोकार के मुद्दे पर बहस हो रही हो तो निश्चित ही आपने लोगों में यह सोचने की प्रवृत्ति देखी होगी कि जब पुरुष घर से बाहर काम पर जाते हैं तो स्वाभाविक है कि घर-परिवार की देखभाल करते हुए स्त्री परंपरा और संस्कृति का निर्वाह कर रही होती है। भारत में विशेष कर हिंदू धर्म में जहां कि धर्म और परंपरा में कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है, उसमें अनेक धार्मिक अनुष्ठान और परंपराएं हैं, जो महिलाओं के कार्यक्षेत्र में आते हैं। प्रत्येक धर्म की अपना संरचना, निषेधाज्ञाएं, रीति-रिवाज और अनुष्ठान या कर्मकांड हैं। इनमें महिलाएं विविध भूमिकाएं निभाती हैं जो उनके धर्म के अनुसार अलग-अलग हैं। फिर धार्मिक अनुष्ठानों से महिलाओं को अपने समकालीनों, अपने से श्रेष्ठ लोगों के साथ सम्पर्क बढ़ाने या समाजीकरण करने तथा अपने परिवार की समृद्धि, वस्त्रों और आभूषणों का प्रदर्शन करने का अवसर भी मिलता है। विशेषकर पिछले कुछेक दशकों से धार्मिक अनुष्ठानों के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक-स्थितिगत आयाम अधिकाधिक मुखर होकर नजर आने लगे हैं।

स्त्रियों तथा परंपरा साथ-साथ

सौजन्य : डा. देवल सिंहराय, इग्नू, नई दिल्ली

धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्रियों की तल्लीनता उन्हें पुरुषों को अपने वश में रखने यानी सत्ताधिकार की शक्ति देती है। फिर महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अधिकांश कर्मकांड अपने घर-परिवार और उसके सदस्यों के कल्याण के लिए होते हैं। अब चूंकि पति को धार्मिक कर्मकांडों को अंजाम देने का पर्याप्त समय नहीं मिलता इसलिए वह यही सोचता है कि उसकी पत्नी उनके पारिवारिक जीवन के एक महत्वपूर्ण पहलू पर समुचित ध्यान दे रही है या उस तरफ समर्पित है। आधुनिक जीवन के तनाव और दबाव, जिनमें पहले बच्चों की शिक्षा और फिर उनके कैरियर (जीविका) का प्रबंध करना, उनके लिए उपयुक्त जीवन-साथी की तलाश करना और वित्त और स्वास्थ्य से जुड़ी परेशानियां ये सभी महिला और पुरुष दोनों को परंपरा की ओर खींचते हैं। यह साधारणतया दोनों को धर्मपरायण बनाता

है। मगर जब पुरुष उदासीनता दिखाते हैं या इनमें कोई रुचि नहीं लेते हैं तो महिलाएं उन्हें परंपरा का निर्वाह करने की सीख देती हैं। किशोर बालिकाओं का समाजीकरण अक्सर इस तरह से होता है कि वे बिना कोई प्रश्न किए सिर्फ परंपरा, मान-मर्यादा के नाम पर तमाम प्रथाओं को अपना लें भले ही नारी जाति के लिए वे कितनी ही अवमाननाजनक क्यों न हों।

1.4.3 दांपत्य संबंध

भारतीय समाज के प्रभावी तबके, विशेषकर ऊंची जाति के हिंदुओं में, (हालांकि यह सामाजिक मानदण्ड के रूप में चित्रित किया जाता है, सामाजिक प्रथाओं में आंचलिक और विशेषकर जातियों के अनुसार बड़े अंतर पाए जाते हैं) वधू में कौमार्य और पवित्रता को अनिवार्य समझा जाता है। इसीलिए ऊंची जातियों में परपुरुषगमन, असंगर्गिता या बांझपन के आधार पर पति अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है। विधुर को पुनर्विवाह करने का अधिकार है। मगर विधवा स्त्रियों और विधुरों की सामाजिक स्थिति में भारी विषमता है। पति को अपनी पत्नी से हमेशा श्रेष्ठ माना जाता है। कारण कुछ भी हो उसे अपने पति को तलाक देने की अनुमति नहीं दी जाती। फिर अगर वह विधवा है तो वह पुनर्विवाह नहीं कर सकती। फिर सामाजिक निषेधों, प्रताड़नाओं या फिर पहले विवाह से उपजी संतानों की अड़चन के कारण भी उनके लिए फिर से ब्याह रचाना सरल कार्य नहीं है। अगर पति, निकृष्ट अधम किस्म का व्यक्ति है तो भी पत्नी से अपेक्षा की जाती है कि वह उसके प्रति पूरी तरह से समर्पित रहे और यदि वह ऐसा ही करती है तो वह समाज में प्रशंसा और प्रतिष्ठा का पात्र बनती है। मगर जैसे जैसे दंपती बूढ़े होते जाते हैं, जिस दौरान महिला नई-नवेली पत्नी से मां और फिर सास बनती है, तो पति और पत्नी के बीच संबंध समतावादी होने लगता है।

परंतु दूसरी जातियों में तलाक, संबंध विच्छेद और पुनर्विवाह के नियम, रीति-रिवाज एकदम भिन्न हैं। बहरहाल उच्च जातियों में सामाजिक और वैधानिक रूप से एक आदर्श मॉडल बनने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उच्च जातियों और वर्गों में जिनमें संयुक्त या विस्तारित परिवारों का चलन प्रभावी है, विशेषकर देहात में, ऐसे परिवारों की महिला मुखिया को कई कार्यों और दायित्वों का निर्वाह करना होता है। उन्हें भोजन के प्रबंध, घर के शिशुओं और बीमार व बुजुर्गों की विशेष जरूरतों का ध्यान रखना पड़ता है। उन्हें घर की बहुओं और नौकरों के बीच काम का बंटवारा करना होता है और बिन बुलाए अतिथियों का सत्कार करने के साथ-साथ परिवार के अनेक धार्मिक अनुष्ठानों तथा नातेदारी से जुड़े दायित्वों का निर्वाह भी करना पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ऊंची जातियों में साधारणतया भारतीय संस्कृति और समाज का एक धर्म ग्रंथ-केन्द्रित दृष्टिकोण देखने को मिलता है, जिसमें महिलाओं का स्थान और उनकी भूमिका शामिल हैं, जो उनकी दृष्टि में उनके उप-सांस्कृतिक समूहों जैसे वंश परंपरा के विशिष्ट आदर्शों और रीति-रिवाजों की संरक्षक हैं। ये ही सभी सदस्यों के वास्तविक आचरण को तय और नियंत्रित करते हैं। शास्त्रों की विषम या बेमेल प्रकृति, उनकी भेददर्शी प्रामाणिकता, और अंतत: खास भूमिकाओं और संबंधों से विशेषकर दांपत्य जुड़ी अवधारणा के मामले में शास्त्रों में पाई जाने वाली भारी असंगतियां आदि के कारण यह और भी जटिल रूप ले लेता है।

जरा सोचिए-1

- आपके विचार में महिलाओं को संस्कृति और परंपरा का संरक्षक क्यों माना जाता है?
- कुछ पारंपरिक प्रथाओं के बारे में बताइए जो महिलाओं के लिए दमनकारी हों।
- क्या आपको कभी हैरानी हुई है कि अधिकांश महिलाएं अभी तक पारंपरिक पोशाक क्यों पहनती हैं, जबकि कई पुरुषों ने पाश्चात्य वेशभूषा अपना ली है?

1.5 सारांश

इस इकाई में हमने सिर्फ़ महिलाओं में पाई जाने वाली व्यापक विषमताओं को ही बताने का प्रयास ही नहीं किया है बल्कि हमने उनमें पाई जाने वाली समानताओं के बारे में भी यहां बताया है। उनकी स्थिति या सामाजिक संदर्भ कुछ भी हो सभी जातियों, धर्मों, अंचलों की महिलाओं को दमनकारी पितृसत्तात्मक प्रणाली को समान रूप से सहन करना पड़ रहा है। जिन सूचकों जैसे साक्षरता, कार्य सहभागिता इत्यादि का उल्लेख हमने पीछे किया है वे कुछ हद तक महिलाओं की उत्पीड़ित दशा और महिलाओं को अपने निर्णय आप करने के योग्य बनाने की संभावनाओं को दर्शाते हैं। मगर वहीं ये आंकड़े इस बात के द्योतक कतई नहीं हैं कि जो स्त्री कामकाजी और पढ़ी-लिखी है, वह तमाम बेड़ियों से मुक्त है और संभवत: उन महिलाओं से अच्छी स्थिति में है जिनके पास लाभकारी रोजगार का विकल्प तथा आय का स्वतंत्र स्रोत नहीं है।

एक राष्ट्र के रूप में भारत कई युगों में एक साथ जी रहा है। इसके इतिहास और परंपराओं की शक्ति और चिरकालिक निरंतरता के चलते ही सामाजिक जीवन में भी निरंतरता कायम है जिससे सामाजिक ढांचों, मूल्यों और आदर्शों में एक सीमा तक विषमता की संभावना पैदा होती है। इसके साथ-साथ सामाजिक बहुविधता जिसका आधार धर्म, अंचल, भाषाएं, जाति, जनजातियां, सामाजिक-लिंग (जेंडर) और शहरीकरण हैं, सबसे प्रभावी और चिरस्थायी विशेषता है। फिर आधुनिकीकरण की शक्तियों और एक अल्प-स्तरित तथा समतावादी सामाजिक आर्थिक प्रणाली के पक्ष में अपनाई जा रही नीतियों के प्रभाव के फलस्वरूप समाज में परिवर्तन भी हो रहे हैं। किंतु अभी स्त्री और पुरुष को समान दर्जा देने वाले समाज के लिए हमें लंबी यात्रा करनी है।

1.6 शब्दावली

पितृसत्तात्मक परिवार: पारिवारिक संगठन का एक रूप जिसमें औपचारिक मुखिया और शासक सत्ता पिता होता है। पिता का अधिकार परम और अंतिम होता है। पितृसत्तात्मक परिवार प्राय: एक विस्तारित समरक्त कुटुंब होता है, यह रक्त संबंध के रूप में संगठित रहता है और इसमें पितामह उसका ज्येष्ठ पुरुष सदस्य होता है।

दर्जा: एक व्यक्ति या सामाजिक वर्ग (लोगों का वर्ग या श्रेणी जैसे व्यावसायिक व्यक्ति) की समाज में अवस्थिति या स्थान जिसकी अपनी एक सामाजिक प्रणाली या सामाजिक संबंधों की प्रणाली हो। इसे प्राय: सामाजिक स्थिति के पर्याय के रूप में भी प्रयोग किया

जाता है। अत: प्रत्येक दर्जे की अपनी अलग भूमिका अपेक्षित होती है।

धार्मिक अनुष्ठान: सांस्कृतिक रूप से मानकीकृत कर्म जिनका सांकेतिक महत्व होता है और जो परंपरा द्वारा निर्दिष्ट अवसरों पर किए जाते हैं। धार्मिक अनुष्ठान के कर्म और शब्द अच्छी तरह से परिभाषित रहते हैं और एक अवसर से दूसरे अवसर पर इनमें कोई अंतर नहीं होता। परंपरा ही यह तय करती है कि धार्मिक अनुष्ठान कौन कर सकता है। धार्मिक अनुष्ठानों या कर्मकांडों में अक्सर पवित्र वस्तुएं और सामग्रियां प्रयोग की जाती हैं और इनमें भाग लेने वाले लोगों का इनसे भावनात्मक लगाव हो जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों के पीछे यह विश्वास हो कि इनमें वांछित फल प्रदान करने की शक्ति होती है।

भूमिका: व्यवहार का एक पैटर्न जो विशेष अधिकारों और दायित्वों के इर्द-गिर्द रचा होता है। यह एक समूह या सामाजिक दशा में एक खास स्थितिगत दर्जे से जुड़ा है। किसी भी दशा में एक व्यक्ति की भूमिका उसके व्यवहार को लेकर दूसरे व्यक्ति और स्वयं उसके द्वारा की जाने वाले अपेक्षाओं से परिभाषित होती है।

प्रस्थिति: सामाजिक ढांचे या समाज के एक समूह में एक परिभाषित दर्जा जो अन्य दर्जों से भिन्न तो है मगर साथ ही अपने निर्दिष्ट अधिकारों और दायित्वों के माध्यम से उनसे जुड़ा भी है। एक सामाजिक ढांचे (उदाहरण के लिए सामूहिक नौकरशाही) में प्रत्येक स्थितिगत दर्जे का उसकी श्रेष्ठता या हीनता (लाभों, हानियों) के रूप में देखा जा सकता है, इसलिए लोग स्थिति या हैसियत को क्रम और प्रतिष्ठा या क्रम-परंपरा में स्थान के रूप में मान कर चलते हैं। मगर सामान्य समाजवैज्ञानिक अर्थ में स्थिति का मतलब अनिवार्यत: क्रम-परंपरा में व्यक्ति के स्थान से नहीं होता। इसलिए विधवा, संगीतकार, विद्यार्थी, स्काउट और पति ये सब स्थिति के उदाहरण हो सकते हैं। प्रत्येक दर्जे स्थान की अभिव्यक्ति एक निश्चित भूमिका में होती है जो स्थिति के स्वामी से अपेक्षित व्यवहार का पैर्टन है।

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- 1974 : *टुवर्डस इक्वालिटी रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन द स्टैटस ऑव वीमेन इन इंडिया,* भारत सरकार, 1974

रे भारती तथा अपर्णा बसु (संपादित) 1999, *फ्रौम इंडिपैंडेंस टुवर्डस फ्रीडम : इंडियन वीमन सिंस* 1947, नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड

इकाई 2 कल्पना और यथार्थ

रूपरेखा

2.1 लक्ष्य और उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 मिथक और यथार्थ
2.3 मिथक : नारी और हिंदू धार्मिक अनुष्ठान परम पावन व लौकिक का विलय
  2.3.1 भारतीय नारी की छवि में अंतर्विरोध और संदिग्धताएं
  2.3.2 भारतीय परिवार की बुनियादी विशेषताएं
  2.3.3 भारतीय परिवार की पितृसत्तात्मक परंपरा
2.4 यथार्थ : उत्पीड़ित और उपेक्षित
  2.4.1 महिलाओं के प्रति हिंसा
  2.4.2 भारतीय समाज में अति असुरक्षित स्थिति में नारी-एक आंकलन
  2.4.3 निर्वाचित पदों और मंत्रिमंडलों में महिलाएं
  2.4.4 महिलाएं और शिक्षा
  2.4.5 सरकारी नौकरी में महिलाएं
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम महिलाओं की आदर्श छवि की चर्चा करेंगे तथा साथ ही यह भी देखेंगे कि यह छवि वास्तविक स्थिति से किस प्रकार भिन्न है। यह आदर्श प्ररूप अपनी अभिव्यक्ति भिन्न धार्मिक ग्रन्थों व मिथक के द्वारा करता है। अपने बहुत बार महिलाओं की तुलना लक्ष्मी (धन-दौलत की देवी) से होती हुई सुनी होगी और कन्या के जन्म पर कहा जाता है कि उनके घर लक्ष्मी ने जन्म लिया है जबकि इसी कन्या रूपक लक्ष्मी से निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया जाता है।

इस इकाई की शुरुआत हम मिथक तथा यथार्थ की लघु व्याख्या से करेंगे। इसके पश्चात भारतीय समाज में महिलाओं की विरोधाभास छवियों की चर्चा की जाएगी।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम महिलाओं की आदर्श छवि की चर्चा करते हुए यह बताएंगे कि यह वास्तविक स्थिति से कितनी विपरीत है। नारी की आदर्श अवधारणाएं हमें शास्त्रों, पुराणों इत्यादि में मिलती हैं। इसलिए महिलाओं को लक्ष्मी (धन और वैभव की देवी) कहना असधारण बात नहीं है और हम अक्सर लोगों को यह कहते सुनते हैं कि बेटी लक्ष्मी का रूप या घर की लक्ष्मी है। मगर वहीं हम उन्हें अपनी बेटियों से निष्ठुर व्यवहार करते पाते हैं।

हमने यहां अपनी चर्चा का आरंभ यह समझाते हुए किया है कि मिथक और वास्तविकता के क्या अर्थ हैं। इसके बाद हम भारतीय समाज में महिलाओं की विरोधाभासी छवियों पर चर्चा करेंगे।

2.2 मिथक और यथार्थ

शास्त्रों, धार्मिक ग्रंथों में बताएं गए सामाजिक प्रणालियों, नियमों, धार्मिक अनुष्ठानों और प्रतीकों के बारे में प्रचलित विश्वासों को मिथक कहा जाता है। ऐसे औपचारिक निर्देशों से विचलित होने या उनसे हटकर चलने पर उसे विपथगमन की संज्ञा देते हुए अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है। या उसकी कालोचित व्याख्या देकर उसे सामाजिक चलन या प्रथा में शामिल कर लिया जाता है। आम चलन या व्यवहार में हम जो कुछ देखते या पाते हैं वही यथार्थ है, वास्तविकता है। इस इकाई में हमने शास्त्रों में प्रस्तुत भारतीय नारी की आदर्श स्थिति का विश्लेषण करते हुए वास्तविकता में पाए जाने वाले अंतरों का विवेचन किया है। भारतीय नारी की स्थिति को समझने के लिए सांस्कृतिक परिवेश और पारंपरिक भारतीय समाज के नियामक ढांचे का विश्लेषण अति आवश्यक है जो भूमिकाओं को तय करता है और व्यक्ति का समाजीकरण करता है। हमारा प्रयास भारत के सामाजिक विकास को वृहत्तर पैमाने पर हो रहे संपूर्ण और बहुमुखी बदलावों की रोशनी में जानना है।

2.3 मिथक : नारी और हिंदू धार्मिक अनुष्ठान-परमपावन व लौकिक विलय

हिंदू धर्म में एक प्रवृत्ति हावी दिखाई देती है कि इसमें सदैव पावन तत्व पर विशेष बल दिया है और अधिकांश अनुष्ठानों को निर्धारित किया गया है जो ब्राह्मणों पुरोहितों द्वारा किए जाने होते हैं। मगर समय में परिवर्तन आ गया है और गैर-ब्राह्मण जातियों के व्यक्तियों ने भी अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने के प्रयास में धार्मिक-अनुष्ठानों या कर्मकांडों को अपना लिया है। प्रोफेसर एम.एन. श्रीनिवास जैसे विद्वान इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण की संज्ञा देते हैं। सामाजिक बदलाव की लंबी प्रक्रिया के फलस्वरूप शास्त्रों और प्रथा में निर्दिष्ट नियमों में भी बदलाव आ गया है। इसके अलावा स्वयं शास्त्रों की व्याख्याएं अस्पष्ट तरीके से की जाती हैं, जिससे नए प्रचलनों को अपनाने, उन्हें लोकाचार का हिस्सा बनाने की काफी संभावना बन जाती है। एक तरह से ऐसी व्याख्याएं ऐसे लोकाचार के लिए भी अनुमति दे कर उन्हें युक्तिसंगत प्रथा का रूप दे देती हैं जो शास्त्रों में लिखे नियमों के विपरीत हैं। हिंदू धार्मिक-अनुष्ठानों से हमें इसके अच्छे उदाहरण मिलते हैं। यह बात याद रखना जरूरी है कि प्रचलित रीति-रिवाजों ने स्वयं हिंदू धर्म की रचना और पुनर्रचना की।

संस्कृतीकरण के फलस्वरूप अधिकांश गैर-ब्राह्मण जातियों के लोगों में भी पवित्रता और दूषण के सिद्धांतों के प्रति अति संवेदनशीलता उत्पन्न हो गई और वे बड़ी निष्ठा से, विस्तार से सारे कर्मकांडों को करने लगे और जीवन चक्र आदि पर विश्वास करने लगे। इसके अलावा उच्च जाति के हिंदुओं में पितृसत्तात्मक परंपरा की तमाम शक्तियों के मौजूद होने के बावजूद नारी ही अपने कुल और उसके सदस्यों की मान-मर्यादा, पवित्रता की संरक्षक है। धार्मिक-अनुष्ठानों या कर्मकांडों की धुरी भी नारी ही है। अपने कुल के भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण के प्रति उसका गहरा सरोकार उसे काफी सत्ताधिकार या शक्ति देती है क्योंकि यही माना जाता है कि कुल का कल्याण पवित्रता-दूषण के नियमों का निष्ठा से पालन करने और धार्मिक अनुष्ठानों को अंजाम देने से ही होता है। घर के सभी धार्मिक-अनुष्ठानों में महिलाओं का स्थान महत्वपूर्ण है और वे अपने घर के सदस्यों को अनेक जरूरी छोटे-मोटे कामों में लगाकर उनसे भी इनका पालन करा लेती हैं।

धार्मिक-अनुष्ठानों के एक महत्वपूर्ण हिस्से का लौकिक उद्देश्यों की साधना से सीधा संबंध है. और एक सीमा तक धार्मिक अनुष्ठानों का पालन व्यावहारिकता का द्योतक है। इसलिएं मृतक पुरखों के वार्षिक श्राद्ध का मंतव्य सिर्फ उनका भरण-पोषण करने के साथ-साथ उन्हें संतुष्ट रखना ही नहीं है। बल्कि यह विश्वास प्रचलित है कि इससे परिवार के जीवित सदस्यों का कल्याण सुनिश्चित होता है। इसी तरह संतानोत्पति, अच्छे स्वास्थ्य, दीर्घायु तथा कुटुंब के सदस्यों, विशेषकर पति, पिता या बीमार बच्चे के कल्याण और समृद्धि के लिए व्रत रखे जाते हैं, देवी-देवताओं को चढ़ावा देने के वचन दिए जाते हैं और बड़े तीर्थों की यात्रा की जाती है। व्रत एक ऐच्छिक संस्कार है जिसे अधिकांशत: महिलाएं विशिष्ट लौकिक और धार्मिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए लेती हैं। हिंदू कर्मकांडों की जीवंतता का एक रहस्य यह है कि यह भौतिक उद्देश्यों की साधना से सहजता से घुल-मिल जाता है और लौकिक असफलताओं या हानियों में सांत्वना देता है। हिंदू आध्यात्मिकता के ऐसे लोकप्रिय मिथक में यह सचाई छिप जाती है कि हिंदू कर्मकांड और धर्म दोनों का सांसारिक हितों से घनिष्ठ संबंध है।

2.3.1 भारतीय नारी की छवि में अंतर्विरोध और संदिग्धताएं

समकालीन भारत में महिलाओं की स्थिति नारी की विभिन्न विरोधाभासी छवियों के कारण बड़ी जटिल बन गई है। शहरी क्षेत्रों में हमें उच्च शिक्षित महिलाओं खासकर कामकाजी महिलाओं की छवियां दिखाई देती हैं। राजनीतिक संगठनों, दलों में हमें समर्थ, कुशल और शक्तिशाली की महिलाओं छवियां भी देखने को मिलती हैं। ये सभी छवियां हमारे मन-मस्तिष्क में ऐसी भारतीय नारी की छाप बनाती हैं, जिन्होंने अत्यंत प्रगति कर ली है। मगर वास्तविकता यह है कि भारत की बहुसंख्य महिलाएं देहातों में रहती हैं, जिन्हें कई अड़चनों, कष्टों का सामना करना पड़ता है।

शहरी एवं ग्रामीण अंतर्विरोध के निराकण की ओर
सौजन्य: सी० डब्लू०डी०एस, नई दिल्ली।

यह माना जाता है कि पितृसत्तात्मक मूल्य लैंगिकता, प्रजनन और सामाजिक उत्पादन को नियमित करते हैं। अपरोक्ष भूमिकाओं तथा नियमों में महिलाओं का समाजीकरण उन्हें सामाजिक जीवन के अनेक कार्यक्षेत्रों में सक्रियता से भागीदारी करने से रोकता है। यह "पवित्रता" जैसे पितृसत्तात्मक प्रतीकों की गूढ़ अभिव्यक्ति में प्रतिबिंबित होता है। पौराणिक कथाओं के जरिए नारी की हीनता को बताने वाले संदेश नारी की एक स्वामिभक्त पत्नी

और समर्पित मां की प्रभावी भूमिका का ही महिमामंडन करते हैं। नारी के आचरण के बुनियादी नियमों या आचार संहिता का उल्लेख *मनु स्मृति* में मिलता है। हिन्दू मूल्यों के ढांचे में एक और महत्वपूर्ण बिन्दु नारी के परोपकारी देवी के साथ-साथ एक अपकारी और विध्वंसकारी चंडी के द्वैत या दोहरे रूप की धारणा भी मौजूद है।

मीडिया या संचार माध्यमों और शिक्षा पद्धति के माध्यम से मातृत्व और एक स्वामिभक्त, कर्तव्य परायण, और आत्म-बलिदानी पत्नी के आदर्श को ही प्रसारित किया जाता है। नारी की गौण या अधीनस्थ स्थिति की वास्तविकता स्त्री-पुंजाति अनुपात का बालिकाओं के प्रतिकूल होना, बढ़ती घरेलू हिंसा, दहेज हत्या और बलात्कार की घटनाओं में वृद्धि इन सब तथ्यों से उजागर हो जाती है। इन मुद्दों को समझने के लिए पहले हमें भारतीय परिवार प्रणाली और फिर हिंसा तथा भेदभाव से जुड़े व्यापक मुद्दों का विश्लेषण करना होगा।

2.3.2 भारतीय परिवार की बुनियादी विशेषताएं

पारंपरिक भारतीय परिवार पितृसत्तात्मक, पिरामिडीय, क्रम परंपरावादी (खासकर लिंग और आय के मामले में) और विस्तारित हैं। मगर इन विशिष्ट लक्षणों में मुख्यत: आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण हो रहे ढांचागत परिवर्तनों के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण बदलाव हो रहे हैं।

भारत में सामाजिक-आर्थिक क्रिया-कलापों की मुख्य इकाई या धुरी अभी भी परिवार ही है। इसके सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इसके सदस्यों की आजीविका का प्रबंध करने और उनकी सामाजिक स्थिति को उन्नत बनाने में परिवार को सहयोग दें। परिवार अभी तक एक प्रभावी सामाजिक संस्था है जिससे व्यक्ति और समूह को अपनी धार्मिक, सामाजिक, वर्गीय और सांस्कृतिक पहचान मिलती है। यह निजी और सामाजिक संकटों के दौरान उन्हें सुरक्षा और सहायता भी देता है।

भारतीय परिवार में नारी के आचरण, उसके चाल-चलन का मूल्यांकन पुरुषों से भिन्न किया जाता है। उदाहरण के लिए, पुरुष के यौन कदाचार को परिवार में अनदेखा किया जाता है या उसे क्षमा कर दिया जाता है। लेकिन लड़की के यौन कदाचार का मतलब पूरे परिवार और संबंधियों के कोप को न्यौता देना है। लड़की का आचरण सिर्फ उसे ही नहीं बल्कि उसकी मां, पिता, भाइयों, समूचे कुटुंब और स्वजनसमूह (खानदान) को कलंकित कर देता है। इसीलिए तमाम पितृसत्तात्मक मूल्य स्त्रियों पर सामाजिक नियंत्रण पुरुषों से अधिक शक्तिशाली ढंग से कायम रखने के लिए परिवार पर दबाव डालते हैं।

एक ठेठ भारतीय परिवार आत्म-त्याग के कई पहलुओं को दर्शाता है। जैसे माता-पिता खासकर मां अपनी संतान के खातिर आत्म-त्याग करते हैं। फिर मां तो परम त्याग का एक प्रतीक और सार है। मां का सुख उसके बच्चों के सुख और समृद्धि में है।

संविधान हालांकि खतरनाक पेशों में बाल श्रम की अनुमति नहीं देता और अन्य पेशों में भी उन्हें काम पर रखने से मना करता है, लेकिन ग्रामीण समुदायों और शहर के गरीब परिवारों के बच्चे कच्ची उम्र से ही रोजगार करने लग जाते हैं। इनमें एक अतिरिक्त बच्चे का जन्म लेना यह नहीं समझा जाता है कि परिवार को अब एक और पेट भरना पड़ेगा या उसे लिखाना-पढ़ाना होगा। बल्कि उसे परिवार की शक्ति और प्रतिष्ठा में विस्तार तथा श्रम और आमदनी का एक और स्रोत माना जाता है। लेकिन ढांचागत बदलावों का जो सिलसिला चल रहा है, उसने भारतीय परिवार में पारंपरिक संबंधों, भूमिकाओं और मूल्यों की रूढ़ियों को तोड़ना शुरू कर दिया है। इसलिए परिवार और समाज के बीच नए तरह के संबंध विकसित हो रहे हैं।

2.3.3 भारतीय परिवार की पितृसत्तात्मक परंपरा

जैसा कि पीछे बताया गया है भारतीय परिवार लिंग और आयु के आधार पर स्तरित है। जैसे तरुण या छोटे सदस्य बुजुर्गों के अधीन तो महिलाएं पुरुषों के अधीन हैं। परिवार में पिता की सत्ता चलती है और साथ ही उसे सारी जिम्मेदारियां भी उठानी होती हैं। यह अधिकतर पतिस्थानिक और मातृवंशी होता है। पिता को अपने परिवार से आदर, अपनी आज्ञा का चुपचाप पालन करने की अपेक्षा रहती है। पिता की यह छवि भारतीय पौराणिक कथाओं के साथ-साथ समकालीन साहित्य और हिंदी, क्षेत्रीय फिल्मों में स्पष्टत: प्रतिबिंबित होती है।

अनुभव से सीखें-1

पांच भारतीय परिवारों में बालक और बालिका के पालन पोषण में शिक्षा, घरेलू काम-काज, पारस्परिक व्यवहार को लेकर उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं और गतिशीलता के संदर्भ में मौजूद भिन्नता के पैटर्न पहचानिए।

उदाहरण के लिए रामायण महाकाव्य में राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम का राजपाट और राजसी जीवन के सुखों को त्यागकर चौदह वर्ष के वनवास आज्ञा दी। राम ने अपने पिता की आज्ञा मानी और अयोध्या नगरी छोड़ दी। राम की पत्नी सीता भी सारे सुख त्याग कर अपने पति के साथ यह कहते चली गई कि नारी का स्थान उसके पति के साथ बंधा है। हालांकि सीता को वनवास की कोई आज्ञा नहीं दी गई थी।

भारतीय समाज में राम को सदा एक आदर्श पुत्र तो सीता को 'पतिव्रता' आदर्श नारी कहा जाता है। इसी महाकाव्य में इसी पुरुषोत्तम राम ने सीता को उस समय वन भिजवा दिया जब उसके गर्भ में संतान पल रही थी क्योंकि प्रजा में किसी व्यक्ति ने सीता की पवित्रता पर संदेह किया था; इसलिए राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को आज्ञा दी कि वह सीता को वन में छोड़ आए हालांकि सीता निर्दोष, निष्कलंक थी। इस महाकाव्य में ऐसी ही घटना में एक ऋषि की पत्नी अहिल्या को उसके पति ने शिला (पत्थर) बन जाने का श्राप दे दिया, हालांकि जिस अपराध के लिए उसे दंड दिया गया था उसमें उसका कोई दोष नहीं था। ऐसी ही एक अन्य पौराणिक कथा में परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा मिलने पर अपनी मां का सिर धड़ से अलग कर दिया। आज भी परशुराम की प्रशंसा एक श्रेष्ठ पुत्र के रूप में की जाती है। पौराणिक कथाओं के ये सभी उदाहरण समाज में नारी के निम्न दर्जे और पितृसत्तात्मक सत्ता की श्रेष्ठता को दर्शाते हैं। साथ ही ये किंवदंतियां पारंपरिक भारतीय समाज में महिलाओं की अधिकारहीन, अबला की सांस्कृतिक छवि को अच्छी तरह से प्रकट करती हैं। ये सांस्कृतिक नियम और मूल्य आज के समाज को भी कुछ हद तक प्रभावित करते हैं।

क्या आप जानते हैं ?

पूर्वी उत्तर प्रदेश में आपको छोटे छोटे टीले देखने को मिलते हैं जो ऊपरी सिरे से नुकीले होते है और उनके तल पर एक चबूतरा बना होता है। टीले और चबूतरे को चौरा कहा जाता है।

ये ढांचे स्थानीय देवियों देवी माई या सती माई के हैं। ऐसा ही एक असामान्य ढांचा सगुनी माई का है। किंवदंती के अनुसार एक बनिये का परिवार बेटे की बारात लेकर लौट रहा था। इस लंबी यात्रा के दौरान दुल्हे की तबियत खराब हो गई और वह चल बसा। अपने पति की मृत्यु से आहत दुल्हन भी तड़पकर मृत्यु का आह्वान करने लगी। शीघ्र ही उसके केशों के जूड़े से एक ज्वाला निकली जिसने उसके पूरे शरीर को भस्म

कर दिया। उसी स्थान पर सगुनी माई का स्मारक या मंदिर है।

ऐसा एक और किस्सा पकड़ी गांव का है जहां नोनिया जाति (मिस्त्री) की एक कन्या से किसी सवर्ण जाति के व्यक्ति ने दुष्कर्म करने की चेष्टा की, तो उसने अपने पैरों के पंजों को रगड़कर ज्वाला उत्पन्न कर ली जिसने उसे भस्म कर दिया। उस लड़की ने अपने कौमार्य के लुट जाने से मृत्यु को श्रेयस्कर समझा।

इन देवियों की उत्पत्ति स्पष्टतः एक ऐसे समुदाय की ओर संकेत देती है, जिसने अपनी महिलाओं को कठोर यौन नियमों में जकड़ रखा है। यही नहीं यह भूमि के वितरण की ऐसी पद्धति के स्वरूप को भी दर्शाता है जो मौजूदा जाति और पितृसत्तात्मक रीतियों से मेल खाती है।

ये देवियां उन अपेक्षाओं और भूमिकाओं का मूर्तरूप भी है जिन्हें समाज या समुदाय अपनी स्त्रियों को सौंपता है, मगर सामाजिक लिंग एक ऐसे समुदाय में एकसमरूप श्रेणी का रूप नहीं ले सकता जो जाति और वर्ग के आधार पर बंटा हो। यह जाति ही है जो इन स्थानीय देवियों के सृजन को तय करती है।

यहां एक रोचक बात यह है कि देवत्व का दर्जा पाने वाली स्त्रियों में कोई भी निम्न जाति की नहीं होती। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि ऊंची जाति की स्त्रियों की तरह निम्न जाति की स्त्रियों की मृत्यु उन्हीं कारणों से इसलिए नहीं हुई क्योंकि शायद उनका नैतिक संसार एकदम भिन्न था। लेकिन यह कहना भी सही नहीं होगा कि निम्न जातियों की स्त्रियों की मृत्यु आकस्मिक या अप्राकृतिक कारणों से नहीं होती थी। लेकिन उनकी इस तरह की मृत्यु का कारण यौन या घरेलू पाप नहीं थे। हम एक ऐसे राजपूत परिवार का उदाहरण यहां दे सकते हैं जो आज तक एक असाध्य चर्म रोग से ग्रस्त है। ऐसा कहा जाता हैं उस परिवार पर एक चमार जाति की स्त्री का श्राप है, जिसे इस परिवार ने लगान या जुर्माना न देने पर बर्बरता से जान से मार दिया था। मगर इस स्त्री को देवी का दर्जा नहीं मिला न ही उसकी स्मृति में कोई स्मारक बना, बल्कि लोग उसे भूतनी कहते हैं।

स्रोत : विभा एस. चौहान, कम्यूनिटी स्टेट एंड वूमेनस लिंक में खंड 5 नं० 2 अप्रैल-जून 1999

जरा सोचिए-1

- क्या आप सोचते हैं कि महिलाएं स्वभाव से आत्मत्यागी होती हैं या समाजीकरण के कारण स्वभाव से आत्म-त्यागी हो जाती हैं?
- रामायण में सीता को आदर्श नारी क्यों कहा जाता है?
- अपने अनुभव से बताइए कि घरेलू कार्य को किस किस तरह महिलाओं का दायित्व कह कर उचित ठहराया जाता है। संक्षेप में उत्तर लिखिए।

2.4 यथार्थ : उत्पीड़ित और उपेक्षित

नारी को मिथकों में ऊंचा दर्जा दिया तो गया है अगर उसका गहराई से अध्ययन किया जाए तो उससे स्पष्ट हो जाता है कि वे पुरुषों की तरह समान नहीं हैं। देवराला, राजस्थान में रूप कुंवर के सती दाह जैसी घटनाओं को नारी में देवत्व, श्रेष्ठता और आत्मोत्सर्ग के गुणों के आधार पर तर्कसंगत, शास्त्रसम्मत ठहराया जाता है।

2.4.1 महिलाओं के प्रति हिंसा

भारत में एक आम धारणा प्रचलित है कि यहां नारी को देवी के तुल्य माना जाता है और उसका आदर किया जाता है। मगर सचाई इसके बिल्कुल विपरीत है। यूं तो भारतीय संविधान महिला और पुरुष समानता की बात करता है लेकिन महिलाओं पर बड़े पैमाने पर घर में और घर के बार हिंसक हमले किए जाते हैं। पूरे देश में होने वाली हिंसक घटनाओं के आंकड़ों का विश्लेषण करें तो पता चलता है कि हर छः मिनट में एक हिंसक वारदात महिलाओं के साथ होती है—यह वारदात अत्याचार, हत्या का प्रयास, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, अश्लीलता, सार्वजनिक अपमान, छेड़-छाड़ कुछ भी हो सकती है। केंद्र सरकार द्वारा एकत्र किए जाने वाले आंकड़ों के अनुसार इन वारदातों की शिकार महिलाएं हर वर्ष कोई एक लाख मामले दर्ज कराती हैं। जिन वारदातों की सूचना नहीं दी जाती या उन्हें दर्ज नहीं किया जाता है, उनकी संख्या कई सौ गुनी होगी। देश की राजधानी दिल्ली में हर चौवन मिनट पर अत्याचार की एक वारदात घटती है। हर 102 मिनट में एक दहेज हत्या दर्ज होती है। हर सातवें मिनट महिलाओं पर हिंसक आक्रमण होता है। हर 26 मिनट में एक महिला के साथ यौन उत्पीड़न की घटना घटती है। राजधानी दिल्ली में 1993 में दहेज हत्याओं या मौतों की संख्या 127 थी तो यह वर्ष 1994 में बढ़कर 146 हो गई थी। वर्ष 1993 में ही विवाहित महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों की संख्या 809 थी। महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों के मामले में सबसे अग्रणी स्थान महाराष्ट्र का है जहां ऐसी 13,913 वारदातें घटती हैं। इसके बाद मध्य प्रदेश (11,378), आंध्र प्रदेश (8,335) और राजस्थान (7,160) में सबसे अधिक वारदातें हुई हैं। बलात्कार के वारदातों के दर्ज मामलों में 1996 में 400 प्रतिशत वृद्धि हुई थी। ऐसे में उन मामलों की संख्या का अनुमान लगाना कोई कठिन काम नहीं है, जिनकी सूचना नहीं मिलती या जिन्हें दर्ज नहीं किया जाता। आंकड़ों से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश में वर्ष 1994 में दहेज के कारण होने वाली मौतों के 1852 मामले दर्ज किए गए थे जबकि वर्ष 1993 में 1,606 और 1992 में 1,444 मामले दर्ज हुए थे। वर्ष 1994 में इसी राज्य में बलात्कार के 1976 मामले दर्ज हुए थे जबकि वर्ष 1993 में 1,590 और वर्ष 1991 में 1,569 बलात्कार के मामला दर्ज किए गए थे। महिला संगठनों को ऐसा ज्यादा से ज्यादा महसूस होने लगा है कि पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी महिलाओं के प्रति बढ़ते अत्याचारों को कम करने में कोई रुचि नहीं ले रहे हैं। मगर पुलिस और अधिकारियों का मानना है कि देश के कानूनों में अनेक कमजोरियां हैं जिनके कारण पीड़ितों को न्याय नहीं मिल पाता। लेकिन उनकी इस दलील में कितनी सचाई है वह तब सामने आती है जब स्वयं कोई अधिकारी और पुलिस वाला ऐसे अपराध में शामिल होता है और उसे सजा नहीं मिलती। महिला संगठनों को महसूस होता है कि अदालतों में कारवाई लंबे समय तक चलती है। उदाहरण के लिए देश में वर्ष 1992-96 के दौरान दर्ज बलात्कार के मामलों से पता चलता है कि बलात्कार के 80 प्रतिशत मामलों में दोषियों को कोई सजा नहीं मिली है।

2.4.2 भारतीय समाज में अति-असुरक्षित स्थिति में नारी—एक मूल्यांकन

सामाजिक-लिंग समानता की तमाम संवैधानिक गारंटियों के बावजूद वास्तविकता अपेक्षाओं के बिल्कुल विपरीत है। महिला संबंधी विभिन्न अध्ययनों से हमें निम्न विशेषताएं पता चलती हैं हालांकि इनकी प्रखरता उनकी जाति और वर्ग के अनुसार अलग-अलग दिखाई देती है।

- महिलाएं विविक्त और पृथककृत या पृथग्वासित हैं। निस्संदेह वे शिक्षा तो पा रही हैं और सार्वजनिक अधिकारक्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिकाएं तथा पद भी प्राप्त कर रही हैं, लेकिन अधिकाश महिलाएं घर की चारदीवारी में ही कैद हैं। महिलाओं को बेटी,

बहन, पत्नी, मां, सास, दादी-मां इत्यादि की ही भूमिकाएं मिलती हैं। जो व्यावसायिक जीविकाएं (प्रोफेशनल कैरियर), जिन्हें बोलचाल की भाषा में हम नौकरी-पेशा कहते हैं, महिलाओं को हासिल है वे बस इन्हीं पारिवारिक भूमिकाओं का विस्तार ही हैं जैसे शिक्षिका, नर्स, ऑफिस क्लर्क, इत्यादि।

पारिवारिक संपत्ति या घर, जमीन जायदाद में बराबरी के हिस्से के अधिकार की गारंटी के लिए अनेक राज्यों द्वारा कानून बनाए जाने के बावजूद संपत्ति का स्वामित्व पूरी तरह से पुरुषों तक ही सीमित है हालांकि कुछ जातियों में विवाह के समय लड़की को कुछ अचल संपत्ति दहेज या स्त्रीधन के रूप में देने का प्रचलन भी है। उच्च महिला मृत्युदर और मादा भ्रूणहत्या महिलाओं की निम्न स्थिति को बताते हैं।

महिलाओं का विवाह अब भी उनकी इच्छा के विरुद्ध किया जाता है, उन्हें बलात्कार और यौन उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता है।

स्त्री की निम्न जैविक स्थिति की दलील भी बार-बार दी जाती है। यह किसी भी तरह से सच नहीं है। भारतीय समाज नारी की गौण भूमिका को विधिसम्मत बनाता है। यह बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है कि पुरुष पर स्त्री की निर्भरता (पिता, पति और पुत्र) के लिए उसकी जैविक प्रकृति के बजाए सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां अधिक जिम्मेदार हैं। यही नहीं, उसकी भूमिका (पत्नी, मां बहन, बेटी) का निर्धारण और मूल्यांकन उसके व्यक्तित्व के बजाए सामाजिक लिंग के आधार पर करने के लिए भी यही सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां अधिक जिम्मेदार हैं। स्त्री की पहचान हमेशा पुरुष से जुड़ी है: वह पुरुष की पत्नी, मां, बेटी, बहन है। समाज में उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसे परिभाषित किया जाता है तो दूसरे नजरिए से। इस नजरिए से नहीं कि वह एक प्राणी है जिसका अपना अस्तित्व है।

स्त्री-पुरुष संबंधों में महिला शिक्षा या उसके रोजगार, आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण इन सबके कारण कुछ हद तक बदलाव आया है। मगर कई क्षेत्रों में महिलाओं की उपलब्धियों के बावजूद सबसे बुनियादी स्तर पर उन्हें अनगिनत समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

2.4.3 निर्वाचित पदों और मंत्रिमंडलों में महिलाएं

देश के कुल मतदाताओं में आधी संख्या महिलाओं की है। मगर इसके बावजूद भी लोकसभा और राज्य विधान मंडलों में उनका प्रतिनिधित्व घोर निराशाजनक और निंदनीय है। आंकड़े बताते हैं कि सिर्फ 1984 के चुनावों को छोड़कर, जिसमें उन्हें लोकसभा में 8.1 प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिला था, उनका प्रतिनिधित्व 3.5 और 6.8 प्रतिशत रहा है जो निर्वाचित लोकसभा सदस्यों की कुल संख्या का 5.5 प्रतिशत है। अगर हम लोक सभा चुनावों में लड़ने वाली महिला उम्मीदवारों की संख्या पर आते हैं, तो हमें इस समस्या पर एक और जानकारी मिलती है। लोक सभा चुनावों में महिला उम्मीदवारों की संख्या 2..8 और 3.2 प्रतिशत के बीच और औसतन 3.0 प्रतिशत रही है। इसी प्रकार संघीय और राज्य सरकारों के मंत्रिमंडलों में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व औसतन 6.8 प्रतिशत है जो निराशाजनक ही है। अपने मताधिकार का प्रयोग करने वाली महिलाओं की संख्या भी पुरुष मतदाताओं से लगभग 7.5 प्रतिशत कम है।

2.4.4 महिलाएं और शिक्षा

गांवों सहित सभी जगह शिक्षा लड़कियों में अधिक से अधिक लोकप्रिय होती जा रही है मगर उनमें स्कूल छोड़ने की दर भी लड़कों से ज्यादा है। वैसे मेधावी लड़कियां परीक्षाओं में अव्वल आती हैं और किसी भी विश्वविद्यालय के परिणाम-पत्र में पहले दस शीर्ष स्थानों में कुछ लड़कियों के नाम भी अक्सर देखने को मिल जाते हैं।

परंतु समूचे देश में सिर्फ लगभग 39 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर या पढ़ी-लिखीं हैं, जबकि पुरुषों में 66% साक्षर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता दर तो काफी कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट *वर्ल्ड वीमेन: ट्रेन्ड्स एंड स्टैटिस्टिक्स* (1995) के अनुसार भारत में 15-24 वर्ष आयुवर्ग की लगभग 60 प्रतिशत महिलाएं अनपढ़ हैं जबकि अनपढ़ पुरुषों की संख्या 34 प्रतिशत है।

चौबीस वर्ष की आयु से ऊपर की महिलाओं में लगभग 80% निरक्षर हैं जबकि पुरुषों में यह संख्या 50 प्रतिशत है। मगर महिलाओं की शिक्षा को नगण्य, निरर्थक भी नहीं कहा जा सकता है। शहरी महिलाओं में 40 प्रतिशत साक्षर हैं तो उनमें सिर्फ 1 प्रतिशत स्नातक या स्नात्कोत्तर हैं।

2.4.5 सरकारी नौकरी में महिलाएं

सरकारी रोजगार में महिलाओं का प्रवेश क़मोबेश एक नया चलन है। संगठित सेक्टर या क्षेत्र के अधिकांश हलकों में यूं तो उनकी संख्या बहुत सीमित है, मगर उन्होंने पुरुषों के गढ़ों में सफलतापूर्वक प्रवेश कर लिया है। संघ लोक सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं और राज्य लोक सेवाओं, जैसी प्रतिष्ठित सरकारी सेवाओं में उनका अनुपात बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) में उनकी सफलता का एक सार्थक परिणाम यह रहा है कि जिला मुख्यालयों में कलेक्टरों या जिलाधिकारियों के रूप में नव-युवतियों की नियुक्ति होने लगी है। इससे पहले जिले का सर्वेसर्वा पुरुष जिलाधिकारी ही होता था। सो ग्रामीणों के लिए यह अपने आप में एक संज्ञानात्मक क्रांति से कम नहीं है जब वे एक तरुण युवती को प्रशासन चलाते देखते हैं।

भारतीय पुलिस सेवा (आई.पी.एस.) और अधीनस्थ पुलिस सेवाओं में भी महिलाएं जब अच्छी खासी तादाद में प्रवेश कर चुकी हैं और उन्होंने अपराध के नियंत्रण, कानून और व्यवस्था और ट्रैफिक बंदोबस्त पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। उन्हें अब भारतीय सेना, वायु सेना, सशस्त्र सेनाओं में भी भर्ती किया जा रहा है जिन्हें अभी तक पुरुषों का गढ़ समझा जाता था। भारत के कई राज्यों में लिंग के आधार पर महिलाओं के आरक्षण मिल रहा है जिसके चलते वे सरकारी सेवाओं में भारी संख्या में प्रवेश कर रही हैं।

किरण बेदी पहली भारतीय नारी आई.पी.एस. अधिकारी और मेगसेसे पुरस्कार से सम्मानित

सौजन्य : सी. एस. आर., नई दिल्ली

जरा सोचिए-3

1) एक ऐसे उदाहरण के बारे में सोचिए जिसमें महिलाओं की वास्तविक छवि आदर्श छवि से भिन्न दिखाई देती हो।

2) आपके विचार में महिलाएं हिंसा को शिकार क्यों बनती हैं? क्या इससे महिलाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण प्रतिबिंबित होता है?

3) सार्वजनिक कार्य क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकाधिक प्रवेश से क्या उनकी दशा में सुधार आ रहा है?

2.5 सारांश

अपेक्षतया जिस सहजता से महिलाएं न्यायिक समता हासिल कर रही हैं, पेशों में प्रवेश कर रही हैं और सत्ताधिकार के पदों को हासिल कर रही हैं उससे यह मिथक पैदा हो गया है कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी है और वे अपनी भूमिकाओं में दक्षता से संतुलन बना लेती हैं तथा वे सत्ताधिकार का काफी उपयोग कर लेती हैं। मगर संगठित क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता का अनुपात काफी कम है। फिर संगठित क्षेत्र में रोजगार के सिमटते अवसरों के चलते सबसे बुरा प्रभाव महिलाओं पर ही पड़ा है। इस संबंध में नीरा देसाई और मैत्रेयी कृष्णराज ने टिप्पणी की है: "संगठित क्षेत्र में महिलाओं को रोजगार कम हो गया है। मगर साथ ही अनौपचारिक क्षेत्र के विस्तार ने महिलाओं को एक आरक्षी श्रमिक सेना की श्रेणी में ला खड़ा किया है। सबसे गहरी चिंता की बात गरीबी का बढ़ता स्त्रीकरण है (देसाई 1987:46)।

शहर की शिक्षित महिलाओं की समस्याओं पर गंभीरता से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि उनके प्रति बरते जाने वाले भेदभाव और उनकी कमजोरियां बड़े ही गूढ़ और प्रच्छन्न तरीके से काम करते हैं। इसीलिए हमें उच्च पदों पर आसीन और साथ ही तरह-तरह के भेदभावों और कठिनाइयों का सामना करने वाली महिलाओं का द्वैत या दोहरा अस्तित्व निरंतर नजर आता है।

2.6 शब्दावली

पतिस्थानिक आवास: यह कुछ संस्कृतियों का रिवाज है जिसमें विवाहित दंपती पति या पति के पैतृक (पिता) के घर या मोहल्ले, गांव में ही बसते हैं।

पितृवंशीय वंशक्रम: ऐसा वंशक्रम (इसे कभी-कभी वंशानुक्रम या उत्तराधिकार भी कहते हैं) जो पिता या पुरुष वंशक्रम के आधार पर ही एकतरफा जाना जाए।

संस्कृतीकरण: यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके जरिए निम्न जाति के हिंदू या जनजाति या अन्य समुदायों के लोग अपने रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों, विचारधारा और जीवन शैली को उच्च और "द्विज" जाति के स्तर की दिशा में बदलते हैं।

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

देसाई, नीरा और मैत्रेयी कृष्णराज, *वीमेन एंड सोसायटी इन इंडिया*, अजंता पब्लिकेशंस, दिल्ली 1987; पृ. 46

इकाई 3 निरंतरता, परिवर्तन और प्रतिरोध

रूपरेखा

3.1 लक्ष्य और उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 लक्ष्य समूहों से सशक्तिरण
  3.2.1 नया स्वतंत्र राष्ट्र
  3.2.2 साठ का दशक
  3.2.3 सतर का दशक
  3.2.4 अस्सी का दशक
  3.2.5 नब्बे का दशक
3.3 विचारणीय विषय
  3.3.1 सार्वजनिक और निजी प्रभाव
  3.3.2 सामुदायिक पहचान, धर्म और महिलाएं
  3.3.3 नई आर्थिक नीतियां
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 लक्ष्य और उद्देश्य

हमने पिछली दो इकाइयों में भारतीय महिलाओं की विविधता और समानताओं, मिथक और वास्तविक स्थिति के बारे में अध्ययन किया। इस इकाई में हम महिलाओं की सामाजिक स्थिति में आए परिवर्तनों, उनके विभिन्न पहलुओं और बाधाओं के बारे में पढ़ेंगें। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- परिवर्तन की दिशा को स्वरूप प्रदान करने वाली विभिन्न शक्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- समय-समय पर हुए परिवर्तनों की चर्चा कर सकेंगे;
- इन परिवर्तनों के द्वारा कुछ निरंतरताओं की पहचान कर सकेंगे; और
- महिलाओं की स्थिति व स्तर की समीक्षा कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

जब कभी हम महिलाओं की स्थिति, विशेष रूप से भारत में महिलाओं की स्थिति परिवर्तन के बारे में बात करते हैं, तो यह समझ लीजिए कि हम एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया पर चर्चा कर रहे हैं। आधुनिकीकरण , शहरीकरण और औद्योगिकीकरण आदि प्रक्रियाओं का भारत में महिलाओं की स्थिति पर चाहे अन चाहे प्रभाव पड़ा है। इन प्रक्रियाओं ने सार्थक प्रयास किए बिना ही अनेक परिवर्तन किए हैं। इसके बाद स्त्री-पुरुष के बीच समानता कायम करने के लिए सार्थक प्रयास किए गए हैं। स्वतंत्रता के पश्चात वैयक्तिक कानून (Personal Laws) के क्षेत्र में श्रम से संबंधित अनेक कानून बनाए गए और अनेक अन्य प्रावधानों द्वारा असमर्थता को दूर करने के लिए प्रयास किए गए; जिससे हमारे समाज में महिलाओं की

निम्न स्थिति में सुधार हुआ। सरकार द्वारा शुरू किए गए इन उपायों के अतिरिक्त व्यक्तियों और समुदायों अथवा महिला आंदोलन द्वारा भी संगठित रूप से प्रयास किए गए। ये सभी प्रकार के सरकारी और सामुदायिक अथवा सामूहिक प्रयास एवं प्रक्रियाएं एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं और इन्होंने एक साथ मिलकर परिवर्तन लाने के लिए प्रयास किए हैं।

इन प्रक्रियाओं और प्रयासों के प्रभाव को मापना बहुत मुश्किल है। प्रभाव का माप करने के लिए एक समान प्रतिमान की पहचान करना संभव नहीं है, क्योंकि इन प्रक्रियाओं का सभी वर्ग की महिलाओं पर समान रूप से प्रभाव नहीं पड़ा है। धर्म, परिवार, जाति, नातेदारी आदि सामाजिक संरचनाओं की प्रतिक्रिया द्वारा जीवन के अन्य क्षेत्रों में परिवर्तन की शक्तियों का अनुमान लगाना कठिन है। सामाजिक संरचनाओं की प्रतिक्रिया द्वारा जीवन के अन्य क्षेत्रों में परिवर्तन की शक्तियों का अनुमान लगाना कठिन है। सामाजिक संरचना परिवर्तन को प्रेरित कर सकती है लेकिन यह देखा गया है कि कई बार वे परिवर्तन की राह में अड़चनें पैदा करती हैं। सामंजस्य (Unison) की स्थिति में व्यवहार और मानकों तथा संगठनात्मक संरचना में परिवर्तन नहीं होता है। उदाहरण के लिए सती अथवा विधवा को पति की चिता के साथ जलाने जैसी सामाजिक कुरीति पर प्रतिबंध होने के बावजूद इसे समुदाय का समर्थन प्राप्त है। रूप कंवर अपने पति के साथ जल गई, लेकिन सरकार इसे रोकने में असमर्थ रही। अन्य देशों की तुलना में भारत में पर्याप्त प्रगतिशील कानून हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश कानून किताबों तक ही सीमित हैं। देश की जनता को ही इन कानूनों पर अमल करना, लेकिन लोगों ने अभी तक महिलाओं से संबंधित अपनी धारणाओं को नहीं बदला है।

अब तक हुए परिवर्तनों के बारे में स्पष्ट रूप से कहना मुश्किल है। यदि हम महिलाओं की साठ अथवा सत्तर साल पहले की स्थिति की वर्तमान स्थिति से तुलना करें तो हमें परिवर्तन दिखाई देता है। आज पहले से अधिक संख्या में महिलाएं सार्वजनिक कार्यों में कार्यरत दिखाई देती है। अब महिलाओं को डाक्टर, इंजीनियर और यहां तक कि पायलट के रूप में काम करते हुए देख सकते हैं। आज महिलाएं घर से दूर अकेली भी रहती हैं। इस प्रकार के परिवर्तन अधिकांशत: समाज के उच्च वर्गों में दिखाई देते हैं लेकिन परिवर्तनों के बावजूद अनेक ऐसे संकेत हैं, जिनसे परिवर्तनों के बारे मे एक भ्रामक तस्वीर दिखाई देती है। उदाहरण के लिए जहां तक महिलाओं का प्रश्न है, उनकी संख्या में तेजी से कमी आई है। ऐसे भी अनेक क्षेत्र हैं, जिनमें परिवर्तनों को व्यापक पैमाने पर रोका गया है। वैयक्तिक कानून (पर्सनल लॉ) इसका एक उदाहरण है। समुदाय और धार्मिक पहचान (identities) ने अनेक प्रकार से महिलाओं को प्रताड़ित किया है। महिलाओं को परम्परा का वाहक समझा जाता है। परम्परा और समुदाय के नाम पर उन्हें आगे बढ़ने से रोका जाता है। शाह बानो और रूप कंवर इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि परिवर्तन के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति का अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि परिवर्तन में भिन्नता की व्यापकता है और इसका स्वरूप जटिल है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तन हुए है। भारत में महिलाओं की निम्न-स्थिति में जान बूझकर परिवर्तन किए गए हैं। जब हम राज्य के संगठनों और अन्य संस्थाओं द्वारा परिवर्तन के लिए किए गए कुछ प्रयासों पर दृष्टि डालते हैं तो हमें कुछ विशेष प्रकार की विचारधाराएं और परिदृश्य दिखाई देते हैं जिनसे इन परिवर्तनों को साकार किया जा सका है। आइए, अब हम इस विचारधारा पर सरसरी नजर डालते हैं। जिसने अपेक्षित परिवर्तन को दिशा दर्शन कराया है।

3.2 लक्ष्य समूहों से सशक्तिकरण

महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन आया है। समाज में महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए किए गए शुरुआती प्रयास उनकी परिवार में भूमिका, परिवार व्यवस्था में उनके योगदान, मां के रूप में, जिसकी समाज में महत्वपूर्ण भूमिका है तक ही केंद्रित है। सामाजिक संरचनाओं जैसे परिवार विवाह तथा अन्य संबंधित क्षेत्रों में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई।

3.2.1 नया स्वतंत्र राष्ट्र

भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान ही सुधार के लिए प्रयास शुरू हो गए थे। अधिकांश प्रारंभिक प्रयास पुरुषों और प्रशासनिक सुधारों द्वारा अथवा कानून बनाकर किए गए न कि महिलाओं द्वारा बड़ी संख्या में महिलाओं ने अपने जीवन-स्तर में सुधार करने के लिए इन परिवर्तनों को अपनाया। परिवर्तन का यह क्रम स्वतंत्रता के बाद भी चलता रहा, जिसे सरकार ने अपने विकास कार्यों में शामिल किया। कल्याणकारी उपायों की व्यवस्था करना सरकारी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य था और महिलाओं का कल्याण करना इन उद्देश्यों में से एक था। इसके लिए समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई। परिवर्तन के लिए शिक्षा को एक मुख्य हथियार के रूप में स्वीकार किया गया।

3.2.2 साठ का दशक

क़ामगार के रूप में महिलाओं के अधिकारों सहित 60 के दशक में महिलाओं के अधिकारों के प्रति समाज में रुचि में वृद्धि हुई। एक ऐसा बदलावा आया, जिसमें घर से बाहर अर्थात सार्वजनिक कार्यों में महिलाओं की भूमिका पर बल दिया गया। कानून/स्थिति/विधान/मताधिकार/मताधिकार-व्यवहार और राजनीति में महिलाओं की भागीदारी इत्यादि विषयों पर व्यापक चर्चा की गई। इस प्रकार कानूनी दृष्टि से महिलाओं को समानता प्रदान करना एक गंभीर विषय था। (विकास में महिलाओं की भूमिका पर सार्क द्वारा तैयार गाइड बुक, 1988 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ० 30)।

लेकिन कानून द्वारा स्वीकृत अधिकारों पर अमल नहीं किया गया। साठ के दशक में आर्थिक वृद्धि पर जोर दिया गया और यह माना गया कि इससे गरीबों और सुविधाहीन लोगों की समस्याओं को कम किया जा सकेगा। शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि स्त्री पुरुष के बीच परंपरागत भेदभाव पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

3.2.3 सत्तर का दशक

सत्तर के दशक में महिलाओं ने विभिन्न मंचों के माध्यम से अपनी आवाज उठाई। अनेक महिला संगठनों, व्यक्तियों, समूहों, निचले स्तर के कार्यकर्त्ताओं, शोधकर्त्ताओं आदि ने बड़े पैमाने पर महिलाओं से संबंधित प्रश्नों के विभिन्न पहलुओं को जोर शोर से उठाया। इन लोगों ने महिलाओं के जीवन-स्तर को अच्छा बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया। इसने जाति, वर्ग और मानव जातीय पृष्ठभूमि के आसपास मंडराने वाले वास्तविक भेदभावों की भी अनदेखी की। स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक कार्यकलापों आदि में भागीदारी से संबंधित आंकड़े भी कोई उत्साहवर्द्धक तस्वीर नहीं दिखाते हैं।

सत्तर के दशक में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष (1975) की घोषणा की गई और 1975-85 को महिला दशक के रूप में घोषित किया गया। कुछ अर्थों में इसे विश्व महिला आंदोलन की शुरुआत माना जा सकता है। 1979 में संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने महिलाओं के प्रति

सभी प्रकार के भेदभावों को दूर करने का संकल्प लिया। इसने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी प्रकार के क्षेत्रों में समान अधिकार प्रदान करने की वकालत की।

भारत में महिलाओं की स्थिति से संबंधित समिति ने भारतीय महिलाओं की स्थिति पर अपनी प्रथम विस्तृत रिपोर्ट दी। इस रिपोर्ट में कुछ असहनीय वास्तविकताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया और सरकार की नीतियों और मानदंडों की कठोर शब्दों में आलोचना की इसने उन संदर्भो की तरफ इशारा किया, जिनसे महिलाएं जूझ रही थीं और जिन पर सरकारी नीतियों में बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया गया था। साठ के दशक में अनेक संगठनों ने लैंगिक न्याय के लिए किए जा रहे संघर्ष में हिस्सा लिया जिसमें पारिवारिक हिंसा, लैंगिक, प्रताड़ना जैसे अनछुए विषयों सहित सभी प्रकार के मुद्दे उठाए गए। इसी बीच कुछ सीमा तक ग्रामीण महिलाओं को आंदोलन का केंद्र बिंदु बनाया गया क्योंकि इन महिलाओं का दोहरा शोषण किया जा रहा था। इस दशक में महिलाओं से संबंधित मुद्दों और महिला पर शोध कार्यों में वृद्धि हुई। इस तरह से इस दशक में महिला अध्ययन की शुरुआत हुई। अत: निश्चित रूप से महिला मुद्दों और नए दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य का शुभारंभ हुआ। अब महिलाओं को निष्क्रिय लाभ प्राप्तकर्ता न मानकर, समाज के सभी क्षेत्रों में सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में स्थान दिया गया। महिलाएं अब तक जिस प्रकार के शोषण और अपमान का सामना कर रही थीं, उसके प्रति समाज में तीव्र जागृति उत्पन्न हुई। महिलाओं ने अनेक संघर्षों में हिस्सा लिया। वे न केवल महंगाई जैसी दिन प्रतिदिन की समस्याओं के खिलाफ आवाज उठा रही है बल्कि उग्रवादी संगठनों में भी सक्रिय हैं। भूमि-हस्तांतरण जैसे मौलिक मुद्दों के विरुद्ध भी महिलाओं ने आवाज उठानी शुरू कर दी है। शहद (shahade) का श्रमिक संगठन इसी प्रकार का एक संगठन था, इस आंदोलन की शुरुआत 1972 में हुई थी। इसमें श्रमिकों ने सक्रिय रूप से भाग लिया, जबकि महिलाओं ने इसमें अपेक्षाकृत उग्र भूमिका निभाई। इससे लिंग आधारित सभी मुद्दे, विशेष रूप से लैंगिक रूप से महिलाओं के शोषण के प्रति जागरुकता में वृद्धि हुई। शहद की महिलाओं ने पत्नी की पिटाई के मुद्दे को उठाया।

यही वह समय था, जब महिला कार्यकर्त्ताओं को एक मुद्दे के रूप में चुना गया और उनके बीच सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास किए गए। गुजरात में शायद पहली बार महिला कार्यकर्ताओं को संगठित करने का प्रयास किया गया। सेवा (स्व-रोजगारत महिला संगठन) ने अलग अलग व्यवसायों में लगी सभी महिलाओं को संगठित करने का प्रयास किया, जो असंगठित क्षेत्र में कार्य कर रही थी। इनमें से अधिकांश महिलाएं या तो घर पर काम करती थीं या विक्रेता के रूप में काम कर रही थीं और उन्हें उत्पादन में किसी भी प्रकार से सहायक नहीं माना जाता था। सामूहिक मंच बनाकर महिलाओं की कार्य करने की परिस्थितियों में सुधार करना, शिकायतों को व्यक्त करने के लिए उन्हें मंच प्रदान करना, अच्छे अवसर तलाशना, प्रशिक्षण और धनराशि प्रदान करना सेवा के प्रमुख उद्देश्य थे।

अनेक शहरों में महिलाओं में मूल्य-वृद्धि के विरुद्ध प्रदर्शन किए। नव निर्माण और भ्रष्टाचार के विरुद्ध उन्होंने जनादेश प्राप्त किया। हजारों महिलाओं ने सार्वजनिक आंदोलन में भाग लिया।

इन आंदोलनों और विकास कार्यों के परिणामस्वरूप महिलाओं की सोच में बदलाव आया कि महिलाओं को विकास के संसाधन के रूप में सक्रिय भूमिका निभानी है। यह मांग की गई कि महिलाओं को उनके अधिकारों के रूप में देखा जाना चाहिए, परिवार और गृहिणी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि परिवार में महिलाओं की आर्थिक भूमिका को बहुत सीमित समझा जाता है। यद्यपि प्रारंभ में लोग उत्साहित नहीं थे, लेकिन अंत में महिला सांसदों और महिला संगठनों के व्यापक समर्थन से पहली बार छठी पंचवर्षीय योजना में 'महिला और

विकास' नाम से एक अध्याय सम्मिलित किया गया। लैंगिक समानता को प्राप्त करने में सरकार की असफलता को देखते हुए छठी पंचवर्षीय योजना में स्पष्ट रूप से कहा गया कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना शिक्षा, दक्षता, प्रशिक्षण और परिवार कल्याण संबंधी सेवाओं तक समान रूप से पहुंचने की संविधान की प्रतिबद्धता सिर्फ एक मिथक बनकर रह जाएगी।

3.2.4 अस्सी का दशक

पुरुषों और महिलाओं के बीच और स्वयं महिलाओं के बीच व्याप्त अनेक असमानताओं के विरुद्ध आठवें दशक में बड़े पैमाने पर लगातार आवाज उठाई गई। जाति, परिवार, धर्म, जनजाति आदि विभिन्न सामाजिक संरचनाओं और संस्थाओं में फैली असमानताएं अब केंद्र बिंदु बन चुकी थी।

आठवें दशक के अंत में, दहेज प्रथा इन बिंदुओं में से एक बिंदू था। महिला दक्षता समिति और स्त्री संघर्ष समिति ने अन्य समितियों के साथ मिलकर दहेज प्रथा का जमकर विरोध किया। 1979 में स्त्री संघर्ष समिति ने नव युवती तरविन्दर कौर की मृत्यु के खिलाफ प्रदर्शन किए। तरविन्दर कौर को उसके ससुराल वालों ने उनकी दहेज लाने की बढ़ती मांग को पूरा न कर पाने के कारण मार डाला था। इससे पहले आग लगने से मरी हुई महिला को आत्महत्या का मामला माना जाता था। इस प्रकार की आत्महत्या के लिए किसी प्रकार की छानबीन नहीं की जाती थी। इस प्रकार के मामलों को पारिवारिक मामला समझा जाता था।

महिला कार्यकर्ताओं ने माँग की कि इस प्रकार के मामलों की छानबीन की जानी चाहिए और मृत्यु की घोषणा को साक्ष्य के रूप में माना जाए और पुलिस-प्रक्रिया को सख्त किय जाए।

क्या आप जानते हैं? - 1

30 जून को मालवीय नगर के निवासियों ने कचन चोपड़ा की हत्या के खिलाफ प्रदर्शन किया था। 29 तारीख को सुबह कचन अपने माता-पिता के घर गई और उसने अपने माता-पिता से कहा कि उसे डर लग रहा है, क्योंकि उसके ससुराल वाले और दहेज की माग कर रहे हैं और ऐसा न करने पर उसे जान से मारने की धमकी दे रहे हैं। उस दिन शाम को उसका भाई उसके ससुराल वालों के खिलाफ दहेज का केस दर्ज करने के लिए मालवीय नगर पुलिस स्टेशन गया, लेकिन पुलिस ने इसे 'पारिवारिक झगड़ा' बताते हुए हस्तक्षेप करने से मना कर दिया और शिकायत दर्ज नहीं की। उसी रात कचन की मृत्यु हो गई। अगले दिन मालवीय नगर के निवासियों ने कचन के शोकाकुल परिवार के साथ उसके ससुराल वालों के खिलाफ हत्या का मामला दर्ज कराने के लिए पुलिस स्टेशन का घेराव किया। जब इस घटना की रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो जनता बहुत क्षुब्ध हुई। (कुमार, 1993)।

1980 में सरकार ने इस मुद्दे पर गौर किया और दहेज प्रथा के खिलाफ कानून बनाने का निर्णय लिया। दिसम्बर 83 में अपराधिक कानून (द्वितीय संशोधन) अधिनियम पारित हुआ। भारतीय दण्ड संहिता में खण्ड 498 ए जोड़ा गया। इसके अंतर्गत पत्नी के प्रति निर्दयता को संज्ञेय गैर जमानती अपराधी माना गया, जिसके लिए तीन साल तक की कारावास की सजा और जुर्माना देने का प्रावधान किया गया। साक्ष्य अधिनियम के धारा 113 क में संशोधन किया गया, जिससे न्यायालय आत्महत्या करने के लिए विवश करने का निष्कर्ष निकाल सके। फौजदारी कानून की धारा 174 लैंगिक रूप से शोषण करना महिलाओं के शोषण का एक और पहलू है। इस प्रकार के पहलू सबसे पहले नवें दशक में प्रकाश में आए। महिलाओं

के शोषण में बलात्कार सबसे अधिक जघन्य और हिंसात्मक था, जिसकी तरफ जनता का ध्यान बहुत कम था। भारत में महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार की सबसे कम रिपोर्ट दर्ज की जाती है। यद्यपि बलात्कार में महिला का कोई दोष नहीं होता है, फिर भी उसे बलात्कार के लिए बहुत शर्मिंदा होना पड़ता है, क्योंकि नारित्व आदर्श और सदगुण की रक्षा करने का दायित्व उसका ही समझा जाता है। पुलिस द्वारा न्यायिक हिरासत में रखी गई रमीजा बाई के साथ पुलिस ने सामूहिक बलात्मकार करने और उसके पति द्वारा इसका विरोध करने पर उसे जान से मारने के मामलें ने गुनाहों के पुलिन्दे को खोलने का काम किया। इसके विरोध में महिला संगठनों और जनता ने जबर्दस्त विरोध प्रकट किया। फिर भी दोषियों को छोड़ दिया गया। इसके विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की गई, लेकिन यह मामला अभी तक विचाराधीन है। पहली बार 1980 में मथुरा बलात्कार के मामले में महिला वर्ग ने संयुक्त रूप से एक आंदोलन चलाया। पुलिस ने 17 वर्षीय आदिवासी लड़की मथुरा के साथ बलात्कार किया किंतु दोषियों को कोई सजा नहीं हुई। पुलिसवालों के पक्ष में दलील दी गई कि मथुरा एक चरित्रहीन लड़की थी। इसलिए उसने ही अपराध करने के लिए पुलिस वालों को आमंत्रित किया था।

वरिष्ठ वकीलों ने निर्णय के खिलाफ कोर्ट को एक पत्र लिखा। मथुरा बलात्कार के मामले में चिनगारी की तरह आंदोलन को भड़काया, जिसके फलस्वरूप बलात्कार से संबंधित प्राचीन कानून में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए, जिसमें न्यायिक हिरासत में बलात्कार भी सम्मिलित है। लेकिन इन परिवर्तनों का कोई असर नहीं पड़ा। विवाह के अंतर्गत बलात्कार को सम्मिलित नहीं किया गया और 18 वर्ष से पहले विवाह होने पर परस्पर संपर्क के लिए किसी प्रकार की सहमति की आवश्यकता का प्रावधान नहीं किया गया।

नवें दशक में महिला आंदोलन की एक मुख्य विशेषता यह है कि जिसे अब तक निजी मामलां समझा जाता था, उसे अब सार्वजनिक मुद्दा माना गया और परिवार अथवा महिला की लैंगिकता जैसे अछूते विषयों में परिवर्तन करने की मांग की गई।

कानून में परिवर्तन होने के बाद महिलाओं ने महसूस किया कि इन पर अमल करते समय पितृसत्ता की धारणा को अधिक महत्व दिया जाता है। उन्होंने यह भी महसूस किया कि महिलाओं की सहायता समूहों की आवश्यकता होती है। नवें दशक में महिला केंद्रों की संख्या में वृद्धि हुई। इन केन्द्रों ने महिलाओं की समस्याओं को सूझबूझ से उठाया। उन्होंने उन सभी प्रकार की समस्याओं को हल करने के लिए सहायता प्रदान की जिन्हें वे एक दूसरे से परस्पर संबंधित मानते थे।

नवें दशक के मध्य तक, महिला संघर्षों के अंतर्गत अनेक मुद्दों को उठा गया। महिलाओं की भी लैंगिकता और अर्थव्यवस्था में उसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया। इससे भी बढ़कर महिलाओं पर प्रतिबंध लगाने वाले विभिन्न सामाजिक संपर्कों और संरचनाओं का व्यापक रूप से विश्लेषण किया गया और विभिन्न मंचों द्वारा इनके समाधान के लिए उपाय किए गए। कानून बनाना भी इनमें से एक उपाय था।

जहाँ एक ओर कुछ प्रगतिवादी परिवर्तनों ने लैंगिक न्याय प्रदान करने के लिए योगदान दिया, वहीं दूसरी ओर कुछ शक्तियों ने महिलाओं के विरुद्ध कार्य भी किया। नवें दशक के अंत में जाति और धर्म जैसी साम्प्रदायिक शक्तियों का उदय हुआ। यद्यपि महिलाओं को प्रभावित करने वाले कुछ कानूनों में सकारात्मक परिवर्तन किए गए, लेकिन कुछ ऐसे भी क्षेत्र थे जहां पर समुदाय ने अपना दवाब बनाए रखा। रूप कंवर का सती होना और मुस्लिम महिला बिल इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

3.2.5 नब्बे का दशक

नवें दशक की प्रवृत्तियां नव्वे के दशक में भी जारी रहीं। सामुदायिक पहचान और रूढ़िवादिता भूमण्डलीकरण के साथ-साथ कमजोर होती गई। इन संरचनात्मक और सामाजिक परिवर्तनों ने महिलाओं की समस्याओं के समाधान के लिए एक रास्ता तैयार किया। विकास प्रक्रिया पर प्रश्न चिह्न लगाए गए और इसे गरीब विरोधी और पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाला माना गया। पर्यावरण की समस्या और निचले स्तर के लोगों की सहभागिता को केंद्र बिंदु बनाया गया। इन सभी में महिलाओं की भूमिका पर विशेष जोर दिया गया। महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण में भाग लिया। महिलाओं और पर्यावरण के बीच संबंध, विशेष रूप से प्राकृतिक संसाधन और महिलाओं के बीच संबंध पर विशेष बल दिया गया। गैर सरकारी संगठनों, अन्य स्वैच्छिक संगठनों और विकास संगठनों की बढ़ती सहभागिता ने महिलाओं को अपने भविष्य के बारे में सोचने और इन कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित किया। सशक्तीकरण और सहभागिता शब्दों को केंद्र बिंदु बनाया गया। महिलाओं को प्रत्येक विकास कार्य का अभिन्न अंग माना गया। दसवें दशक में अनेक छिप पुट कार्यों और जन आंदोलन में महिलाओं ने सक्रिय रूप से भाग लिया।

73वें और 74वें संशोधन अधिनियम के पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए 335 सीटें आरक्षित कर निचले स्तर पर महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में ठोस कार्य किया। इसने निश्चित रूप से निचले स्तर पर महिलाओं को गतिशील बनाने में अहम भूमिका निभाई। यद्यपि जिस वातावरण में महिलाएं काम कर रही हैं, वह उनकी सक्रिय सहभागिता के लिए सहायक नहीं है। और यह भी सच है कि कई बार महिलाएं मात्र प्रतिनिधि (प्रॉक्सी) के रूप में कार्य करती है। फिर भी, महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया का एक अंग बनाने की इस नई पहल ने परम्परागति शक्ति संरचना को आघात पहुंचाया है। निचले स्तर पर सरकारी शक्तियों में हिस्सेदारी की नई संरचना की आलोचना के साथ-साथ महिला सरपंचों और प्रधानों के साहस की अनेक कहानियां भी सुनने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल में कुलतीक्री पंचायत की सभी महिला सदस्यों ने पंचायतों के समग्र विकास के लिए अपना एक कार्यक्रम बनाया। इस पंचायत को राज्य की सर्वोत्तम पंचायत घोषित किया गया (मुखोपाध्याय, 1995)। इसके बाद फातिमा बी को गरीबी उन्मूलन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सम्मानित किया गया। एक बार बैठक में भाग लेने के बाद कई महिलाओं ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अब अनेक महिलाएं परदा नहीं करती हैं। इससे पहले निम्न वर्गों/जातियों की महिलाएं अन्य ग्रामवासियों को आसानी से सुलभ हो जाती थी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस महिला पंचायत ने गांव के सम्पूर्ण विकास के लिए वास्तविक कार्य किया। इस प्रकार, वे अलग-अलग कार्यक्रमों को एक साथ लाने में कामयाब हुई। वे उपलब्ध विकास योजनाओं का पूर्ण उपयोग करने में सफल रही। दैनिक जीवन में महिलाओं की सहभागिता का सशक्त प्रभाव साक्षरता कार्यक्रमों में देखा जा सकता है। महिलाओं की समग्र सहभागिता का प्रभाव परिवार, बच्चों पड़ोसियों और गांव पर कई गुणा अधिक पड़ा है। महिलाओं द्वारा संसद में आरक्षण विधेयक प्रस्तुत करने और लागू करने के अभियान के बावजूद लोकसभा और राज्य की विधान सभाओं में आरक्षण की मुहिम अभी तक अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाई है। यहाँ तक की महिलाओं में भी इस विषय पर विचार-विमर्श जारी है कि क्या आरक्षण में जाति जैसी श्रेणियों को भी सम्मिलित करना चाहिए, जिससें विभिन्न स्तर की महिलाओं को इसमें सम्मिलित किया जा सके। एकता बनाम विविधता की चर्चा ने महिला-मुद्दे को लम्बे समय तक के लिए लटका दिया है, जिसे एकमत और व्यापक रूप से ही स्वीकार किया जा सकता है। इस मुद्दे पर हम यहाँ पर चर्चा नहीं करेंगे। यह मुद्दा आम सहमति के अभाव में एक विधेयक के रूप में अभी अधर में ही लटका हुआ है।

जरा सोचिए- 1

1) क्या आप सोचते हैं कि विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाएं महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करती हैं? स्पष्ट कीजिए।

2) 1960 और 60 के दशक के बीच महिलाओं की सोच में कौन-सा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ?

3) वे कौन से महत्वपूर्ण महिला मुद्दे हैं जो 1980 के दशक में प्रकाश में आए और इन मुद्दों पर किस प्रकार के परिवर्तन की मांग की जा रही है?

4) आपके अनुसार निचले स्तर पर महिलाओं को गतिशील करने के लिए कौन-सा प्रयास प्रभावपूर्ण होना चाहिए?

3.3 विचारणीय विषय

अभी तक हमने सामान्य सामाजिक प्रक्रियाओं के साथ-साथ मुख्यत: महिला समूहों द्वारा किए गए संघर्षों के परिणामस्वरूप हुए कुछ सोचे-समझे परिवर्तनों के बारे में चर्चा की। इस परिवर्तन संबंधी अपनी चर्चा में हमने कुछ सामान्य प्रवृत्तियों पर भी चर्चा की और लैंगिक दृष्टि से न्यायोचित समाज की स्थापना के लिए किए गए प्रयासों का उल्लेख किया। लैंगिक न्याय के लिए किए गए इन संघर्षों ने अनेक चुनौतियों का सामना किया और महिलाओं को परिवार, समाज, राज्य और आमतौर पर समाज का प्रबल विरोध सहना करना पड़ा। लगातार परेशानियों से जूझते हुए इस दशा में कुछ सकारात्मक संकेत दिखाई देने के साथ साथ कुछ ठोस प्रगति भी हुई है कुछ निर्णायक क्षेत्रों को अनेक विरोधों के बावजूद सार्वजनिक कार्यसूची में सम्मिलित करने में सफलता प्राप्त हुई है। विभाजन संबंधी जिन मुद्दों का महिलाओं का सामना करना पड़ा है, उनमें से सार्वजनिक और निजी, समुदाय और महिला श्रम की अनदेखी करने जैसे मुद्दे भी शामिल हैं। निम्नलिखित उपभागों में हम इनमें से कुछ विषयों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

3.3.1 सार्वजनिक और निजी प्रभाव

जैसा कि हम इससे पहले चर्चा कर चुके हैं कि परिवार और महिलाओं का लैंगिकता के प्रश्न पर आमतौर पर समाज से और विशेष रूप से सरकार और उसकी संस्थाओं की ओर से दवाब पड़ा है। इस पर ध्यान केंद्रित करते हुए, यह माना जाता है कि सरकार और सरकारी मशीनरी केवल सामाजिक ढांचे को प्रभावित कर सकती है, जबकि निजी मामलों का सार्वजनिक विशेष रूप से राज्य अथवा प्रशासन द्वारा संरक्षण किया जाता है। लैंगिकता और परिवार को निजी मामला समझा जाता रहा है। आश्चर्य की बात है कि भारत में विवाह के अंतर्गत घरेलू हिंसा अथवा बलात्कार के लिए कोई भी अलग कानून नहीं है। अनेक नारीवादी तर्क देते हैं कि 'व्यक्तिगत ही राजनीतिक' है। और घरेलू हिंसा, बलात्कार तथा बाल दुर्व्यवहार जैसे विषयों को सार्वजनिक मुद्दा बनाया जाना चाहिए।

सार्वजनिक-निजी प्रभाव क्षेत्र अनेक स्तरों पर कार्य करता है। निजी प्रभाव क्षेत्र में परिवार महिला की लैंगिकता और रीति रिवाज आते हैं। निजी प्रभाव क्षेत्र इन्हें हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार से बचाता है। साथ ही महिलाओं से इन क्षेत्रों का सही प्रकार से वहन करने की अपेक्षा की जाती है। उसे परंपरा का वाहक, इसे कायम रखने तथा परिवार की एक

महत्वपूर्ण कड़ी माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के बाद भी महिलाएं पारिवारिक उत्तरदायित्व को निभाती हैं। जब परिवार को ऊँचा उठाने, भोजन बनाने अथवा अन्य घरेलू कार्यों को करने की बात आती है, तो अपने व्यवसाय में निपुण और अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित महिलाएं इन कार्यों को करने में पीछे नहीं रहती हैं। अनेक आधुनिक महिलाएं यह महसूस करती हैं कि उन्हें अपने व्यवसाय, नौकरी इत्यादि के साथ पारिवारिक उत्तरदायित्वों का वहन कर दोहरे बोझ से जूझना पड़ता है। सामाजिक उत्तरदायित्व और पैतृक विचारधाराएं महिलाओं को पोषक त्याग वफादार सहनशील पुत्री-पत्नी को शाश्वत गुणों को अपनाने और इनका पालन करने की शिक्षा देते हैं।

3.3.2 सामुदायिक पहचान, धर्म और महिलाएं

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि सरकारी और निजी क्षेत्र के बीच व्यापक विभाजन, परंपरा को भी अपने में सम्मिलित करता है। सती जैसे आपराधिक कृत्य को गैर कानूनी होते हुए भी, इसे राजपूतों के केवल एक वर्ग का समर्थन ही प्राप्त नहीं है, अपितु इसे अनेक राजपूत महिलाओं का समर्थन भी प्राप्त हैं। जैसा कि रूप कंवर के आग में जलने के मामले में इसे परम्परा माना गया। इस मामले में सरकारी कार्रवाई नहीं हुई और सरकार की भूमिका मूकदर्शक की रही। हमारे जैसे बहु-संस्कृति वाले और लोकतांत्रिक समाज में धार्मिक एवं नृजातीय सभी प्रकार के समुदायों को अपनी संस्कृति की रक्षा करने और उसके नियमों के अनुसार काम करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। सभी प्रकार के समाज अपने रीति रिवाजों के अनुसार चलना चाहते हैं। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं कि सभी समाज महिलाओं को पुरुषों के समान नहीं मानते हैं। महिलाओं को कम अधिकार प्राप्त हैं तथा उनकी भूमिका को सहायक के रूप में माना जाता है। जब कुछ स्वार्थी समूह अपनी परंपरा के संरक्षण की बात करते हैं, तो इससे महिलाओं की स्थिति और भी गंभीर बन जाती है, विशेष रूप से जब महिलाओं से समाज, धर्म अथवा जाति के प्रति वफादार होने की आशा की जाती है। इससे उनका शोषण होता है। शाह बानो का मुद्दा इसका एक उदाहरण है (आगामी इकाइयों में आप इसके तथा सती प्रथा के बारे में अध्ययन करेंगे)।

जरा सोचिए–2

1) महिलाओं को किस प्रकार उनकी परंपरा भूमिकाओं से बांधकर रखा जाता है? उचित उदाहरण देते हुए व्याख्या कीजिए।

2) समाज में महिलाओं की भूमिका को समुदाय द्वारा किस प्रकार प्रभावित किया जाता है?

3) संक्षेप में बताइए कि नई आर्थिक नीतियां महिलाओं के जीवन स्तर को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?

क्या आप जानते हैं–2

सामुदायिक प्रणाली को अनवरत रूप से विद्यमान रखने के लिए आधुनिक समाज में मिलाने के प्रयास सफल नहीं हो पाए हैं। शासन की नई प्रणालियों को पारम्परिक प्रभाव का वर्तमान परिदृश्य में बने रहना अपरिहार्य है। अक्सर देखने में आता है कि इसके फलस्वरूप गंभीर परम्परागत विषमताएं और असमानताएं व्याप्त हो जाती हैं। अधिकारों की आधुनिक विचारधारा के भीतर अपना प्रभुत्व बनाए रखने में सफल हुई

जयपुर के जिला सत्र न्यायाधीश द्वारा भंवरी देवी बलात्कार के मामले में दिया गया निर्णय इसका एक उदाहरण है। भंवरी देवी के साथ सामाहिक रूप से बलात्कार करने वाले सभी आठों दोषियों को यह कहते हुए छोड़ दिया गया कि बलात्कार करने वाले किशोर अवस्था' के थे। ये सभी बलात्कारी मध्यम आयु वर्ग के नागरिक थे। चूंकि अपराधी एक ब्राह्मण सहित उच्च वर्गों से संबंधित थे और भंवरी देवी निम्न जाति की महिला थी। यह प्राचीन समुदाय की उस्तिा का आधुनिक तार्किक और व्यक्तित्वहीन कानूनी प्रणाली में हस्तक्षेप का एक उदाहरण है जो बलात्कार पीड़ित महिला तथा निचली जातियों के प्रति प्राचीन भेदभाव को प्रदर्शित करता है।

(स्रोत : कम्यूनिटी, स्टेट एंड वूमेन'' वूमैन लिंग, खंड 5, सं० 2, अप्रैल-जून 1999)।

3.3.3 नई आर्थिक नीतियाँ

महिलाओं की दयनीय स्थिति से अत्यधिक प्रभावित दूसरा क्षेत्र है – महिलाओं का आर्थिक रूप से कमजोर होना और गरीब महिलाओं की संख्या में वृद्धि होना। जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि महिलाओं को कभी भी उत्पादकता संबंधी कार्यों में सहयोगकर्ता नहीं समझा गया। ऐसी बात भी नहीं है कि महिलाएं काम नहीं करती हैं। उन्हें कम वेतन ही नहीं दिया जाता है, बल्कि जितना कार्य वे करती हैं उसके बदले में उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता है। अब यह महसूस किया जा रहा है और जैसा सी.एस.डब्ल्यू.आई ने संकेत दिया है कि आर्थिक संसाधनों तक पहुंच और उन पर नियंत्रण के बिना महिलाएं किसी भी प्रकार की शक्ति से लाभान्वित नहीं हो सकती हैं। इस प्रकार की चेतावनियों के बावजूद, महिलाओं को आर्थिक संसाधन, स्वतंत्रता और गरिमा प्रदान करने के लिए सार्थक एवं गंभीर प्रयास नहीं किए जा रहे हैं, जिससे वे इनका सुख भोग सकें। इसके साथ साथ भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा अथवा आर्थिक उपाय जैसी कुछ आधारभूत सामाजिक सुविधाएं प्रदान करने में सरकार की उदासीनता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यहां तक कि आर्थिक उदारीकरण और संरचनात्मक सामंजस्य की नीति में भी इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा। चूंकि अधिकांश महिलाएं गैर संगठित एवं पारंपरिक उद्योगों में काम करती हैं। इसलिए उन्हें बड़ी बहुराष्ट्रीय संरचनाओं में विशेष रूप से परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

क्या आप जानते हैं ? - 3

महिला विषय पर तीन साल तक किए गए अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया कि दिल्ली और बंबई के कुछ उद्योग में महिला कामगारों की संख्या पुरुषों की तुलना में अधिक थी। और इनमें महिलाओं को छटनी अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में की गई। उदाहरण के लिए बंबई स्थित सभी मांग और आभूषण उद्योगों को हटाए जाने से बड़ी संख्या में गैर कानूनी तरीके से छटनी की गई और इसमें महिलाओं को ज्यादा से ज्यादा संख्या में छटनी करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। जैसे जैसे काम की संभावना में कमी होती जा रही है। महिलाओं द्वारा की गई आत्महत्याओं की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के दबाव के कारण श्रमिकों के अधिकारों को कार्यस्थल से हटाया जा रहा है। औद्योगिक पुनर्संरचना की प्रक्रिया का अर्थ है कि अनेक परंपरागत उद्योग बंद होते जा रहे हैं और लघु उद्योग उनका स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं जिनमें महिलाओं को अकुशल श्रमिकों के रूप में काम पर लगाया जाता है। भोजन की सुरक्षा का अभाव और श्रमिक विस्थापन का अर्थ है कि लोग, विशेषत: महिलाएं असुरक्षित भविष्य को लेकर चिंतित हैं।

स्रोत : आजीविका और आर्थिक सशक्तिकरण महिलाएं बीजिंग की ओर से लोकायन बुलेटिन जुलाई अक्तूबर 1995)।

3.4 सारांश

इस इकाई में हमने यह देखने का प्रयास किया कि महिलाओं को कहां होना चाहिए था और वे इस समय कहां हैं। हमने परिवर्तन, निरंतरता और अवरोध अथवा रुकावट का विश्लेषण क्रमवद्ध तरीके से किया, जिससे हम यह जान सकें कि महिला संबंधी अवधारणा अथवा परिदृश्य ने उनसे संबंधित मुद्दों को किस प्रकार दिशा प्रदान की। यद्यपि महिलाओं की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। लेकिन इसके साथ-साथ उनके ऊपर बोझ भी अधिक पड़ा है। इस प्रकार यदि महिलाएं दो कदम आगे बढ़ती हैं तो उन्हें एक कदम पीछे धकेल दिया जाता है। इसके साथ ही यह औपचारिक और अनौपचारिक वर्गों का सशक्त विभाजन है। इस प्रकार हम अपने को एक धर्मनिरपेक्ष समाज अथवा राज्य मानते हैं, लेकिन जब विशेष रूप से महिलाओं के मुद्दे सामने आते हैं तब राज्य इन मुद्दों को संबंधित समाजों के ऊपर छोड़ देता है। जिनमें महिलाओं को वंचित रखने की परंपरा है। समुदायों और सरकार के बीच की इस परस्पर विरोधी विचारधाराओं में सबसे अधिक नुकसान महिलाओं को ही सहन करना पड़ता है। जहां तक उनकी आर्थिक स्थिति का प्रश्न है, सरकार द्वारा सामाजिक क्षेत्रों और कल्याणकारी कार्यों से हाथ खींचने के कारण महिलाएं अब बाजारी शक्तियों की दया का पात्र बन चुकी हैं। इस असमान स्थिति में सबसे ज्यादा अहित महिलाओं का ही होता है।

3.5 शब्दावली

दुत्साहन: किसी कार्य को करने के लिए भड़काना अथवा प्रेरित करना।

विचारधारा : विचार अथवा अवधारणाएं जो व्यवहारवादी होती हैं और चिंतन मनन करती रहती हैं ये लोगों के विचारों को आकार प्रदान करती हैं।

अनौपचारिक क्षेत्र: इसे गैर-संगठित क्षेत्र भी कहा जाता है। यह आर्थिक कार्य कलापों अथवा संगठनों का वह क्षेत्र है, जो किसी प्रकार के नियम कानूनों और संबंधियों का पालन नहीं करता है और सभी कानूनी निर्धारणों (लेखों) का अनादार करता है। उदाहरणार्थ, न्यूनतम मजदूरी निर्धारित होने के बावजूद निजी निर्माण कंपनियाँ श्रमिकों को कम वेतन देती हैं।

सीमांत: किसी वस्तु के किनारे पर। मुख्यधारा अथवा मुख्य भूमिका का हिस्सा न होना। इसलिए इस पर विचार नहीं किया जाता है।

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रे, भारती और अपर्णा बसु (संपा०) 1999, *फ्राम इंडिपैंडेंस टूवर्डस फ्रीडम*, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड।

मेर, लूसिल माथुरिन (1985), *इंटरनेशनल वूमेन्स डिकेट : ए बैलेंस सीट*, नई दिल्ली, सी. डब्लू.डी.एस.।

संदर्भ

चौहान, विभा, एस. *"कम्यूनिटी, स्टेट एंड वूमेन"* इन वूमेनस लिंक खंड 5 नं० 2 अप्रैल-जून 1999

देसाई, नीरा और मैत्रेयी कृष्णा राज (1987) *वूमेन एंड सोसाइटी इन इंडिया,* नई दिल्ली : एजन्ता पब्लिकेशंस।

मेयर, लूसिले मेथूरिन (1985) *इंटरनेशनल वूमेनस डीकेड : ए बेलेन्सड शीट,* नई दिल्ली : सी.डब्लू.डी.एड.

मुखोपाध्याय, आशिम (1995) *"कुलटीवरी : वेस्ट बंगालस ओनली आल वूमेन ग्राम पंचायत"*, इ.पी.डब्लू 3 जून।

रेय, भारती और अर्पणा बसु (संपा) (1999) *फराम इंडीपेंडस टुवर्डस फ्रीडम : इंडियन वूमेन सिन्स 1947* नई दिल्ली आक्सफोर्ड

1974; *टुवर्ल्डस इक्वेलिटी : रिर्पोट आफ द कमेटी आन दि स्टेटस आफ वूमेन इन इंडिया*। भारत सरकार।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

भारतीय समाज में महिलाएं : सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ

खंड

2

महिलाओं की स्थिति : कुछ प्रस्थिति

खंड परिचय : महिलाओं की स्थिति : कुछ प्रस्थिति 3

इकाई 4
सामाजिक और जनसांख्यिकी विवरण 5

इकाई 5
महिलाएँ और कार्य 24

इकाई 6
राजनीतिक भागीदारी 36

इकाई 7
शिक्षा तक पहुंच 49

संदर्भ 62

खंड परिचय : खंड 2 महिलाओं की स्थिति : कुछ प्रस्थिति

अपने पिछले खंड में हमने भारतीय समाज में महिलाओं की संपूर्ण स्थिति पर, उसके सभी संदर्भों और भिन्नताओं के तहत नजर डाली। इसके साथ ही हमने कुछ अवधारणों, बाधाओं और परिवर्तनों पर भी नजर डालने की कोशिश की। महिलाओं की स्थिति को विभिन्न रूपों में बेहतर रूप में समझने के लिए हमने उन विभिन्न सूचकांकों पर गहरी नजर डालने की कोशिश की है जो महिलाओं की स्थिति को आंकने में मदद करते हैं। इकाई 4 में हमने विभिन्न जनसांख्यिकी सूचकांकों पर नजर डाली है और महिलाओं की स्थिति जांचने में ठोस सांख्यिकी के परिणामों की भी पड़लोचना की है। इस इकाई में जनसांख्यिकी परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

इकाई 5 में महिलाओं की कार्यविधि और कार्यों को जांचा गया है। समाज में महिलाओं की स्थिति को आंकने के लिए आर्थिक संसाधनों तक महिलाओं की पहुंच एक अत्यनत महत्वपूर्ण कारक है। महिला कार्य विशेषकर जो कार्य घर के इर्द गिर्द जुड़ा हुआ है उसको आर्थिक क्षेत्र में कार्य नहीं माना जाता है। इसीलिए आर्थिक क्रियाकलापों में महिलाओं के योगदान को कम महत्व दिया जाता है।

इकाई 6 महिलाओं की राजनीतिक प्रक्रियाओं और व्यवस्थाओं में भागीदारी पर है। जब भी राजनीति की चर्चा होती है तो ज्यादातर यह राजनीतिक क्रियाकलापों तक ही सीमित होती है जो सरकारी और वैधानिक प्रक्रियाओं से संबंधित होती है। इस राजनीति की परिधि का विस्तार करने की जरूरत है, तकरीबन हर सामाजिक संस्था, व्यवस्था और मानव-अन्तक्रिया में शक्ति या सत्ता के संबंध में शामिल होते हैं जिसके राजनीतिक पहलू भी होते हैं। इसलिए राजनीति के सिर्फ सार्वजनिक पहलू पर ही विचार करना काफी नहीं है।

इकाई 7 में महिलाओं की प्रस्थिति को उनकी शैक्षिण स्थिति की तुलना में आंका गया है। भारत उन विकासशील देशों में से एक है। जिसमें अधिकतम संख्या में महिलाएं अनपढ़ है। इस इकाई में हमने इस स्थिति की जांच की गई है तथा उन सभी कारको की समालोचना की गई है जो इस धूमिल तस्वीर को और भी बढाते हैं।

इकाई 4 सामाजिक तथा जनसांख्यिकी विवरण

रूपरेखा

4.0 लक्ष्य और उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 आंकड़ों के स्रोत
4.3 महिला जनसंख्या का आकार एवं आयु वितरण
4.4 स्त्री-पुंजाति अनुपात
  4.4.1 स्त्री-पुंजाति अनुपात क्या है?
  4.4.2 स्त्री-पुंजाति अनुपात के अध्ययन का महत्व
  4.4.3 अन्य देशों की तुलना में भारत में स्त्री पुंजाति अनुपात
  4.4.4 बीसवीं सदी के भारत में स्त्री-पुंजाति अनुपात
  4.4.5 स्त्री-पुंजाति अनुपात के निर्धारक
4.5 शहरी-ग्रामीणवास
  4.5.1 ग्रामीण जीवन के निहितार्थ
  4.5.2 शहरी जीवन के निहितार्थ
4.6 विवाह आयु
  4.6.1 स्थिति के सूचक के रूप में विवाह आयु
  4.6.2 विवाह आयु मापन
  4.6.3 स्त्री और पुरुष विवाह आयु
  4.6.4 अंतरराज्यीय भिन्नताएं
  4.6.5 कम विवाह आयु के निहितार्थ
4.7 जननदर
  4.7.1 स्थिति के सूचक के रूप में जननदर
  4.7.2 जननदर मापन
  4.7.3 निरंतर जन्म लेने वाले बच्चे
  4.7.4 जननदर विभेद
  4.7.5 किशोरावस्था में जनन
  4.7.6 बांझपन
4.8 मृत्युदर
  4.8.1 जन्म के समय आयु संभाविता
  4.8.2 अशोधित मृत्यु-दर और आयु विशेष मृत्यु-दर
4.9 शिशु और बाल मृत्यु-दर
  4.9.1 शिशु मृत्यु-दर के अध्ययन का महत्व
  4.9.2 शिशु मृत्यु-दर मापन
  4.9.3 शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करने वाले कारक
  4.9.4 भारत में शिशु मृत्यु-दर
  4.9.5 भारत में बाल मृत्यु-दर
  4.9.6 मातृ मृत्यु-दर
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में भारतीय नारी की सामाजिक-जनसांख्यिक रचना के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की जाएगी। इन पहलुओं को भारतीय समाज में उसकी स्थिति के सूचकों के रूप में लिया जा सकता है। इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- भारत में वर्तमान स्त्री-पुंजाति अनुपात की सार्थकता को स्पष्ट कर सकेंगे;
- भारत में शहरी और ग्रामीण जीवन के निहितार्थों के बारे में बता सकेंगे;
- भारत में विवाह आयु के निहितार्थ समझा सकेंगे;
- भारत में जननदर के पैटर्नों और निर्धारकों के बारे में बता सकेंगे;
- भारत में मृत्यु-दर में मौजूद स्त्री-पुंजाति भेदों और उनके निर्धारक कारकों को समझा सकेंगे;
- भारत में स्त्री-पुंजाति अनुपात, विवाह आयु, जननदर और मृत्यु-दर के स्तर और रुझान बता सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भारत में महिलाओं की जनसांख्यिक रूपरेखा, रचना के आधार पर महिलाओं की स्थिति के कुछ सूचकों के बारे में चर्चा की गई है। ये जनसांख्यिक सूचक इस प्रकार हैं: स्त्री-पुंजाति अनुपात, शहरी/ग्रामीण वास, विवाह आयु, जननदर और मृत्यु दर। हम जब कभी भारतीय नारी की स्थिति की बात करते हैं तो हम समूचे देश के लिए सामान्यीकरण नहीं कर सकते। निवास-स्थान यानी वे देहात की रहने वाली हैं या शहरी हैं, उनकी शैक्षिक योग्यता और आर्थिक स्थिति के अनुसार कई किस्म की भिन्नताएं उनमें देखने को मिलती हैं। इसलिए इकाई में आगे भारतीय महिलाओं की जनसांख्यिक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जो सबसे पहले हमारे सामने समूचे देश की सामान्य तस्वीर रखती है और फिर उनकी विशेषताओं पर आधारित भेदों, भिन्नताओं पर रोशनी डालती है। इस इकाई में आपको जनसांख्यिक सूचकों से जुड़े विशेष अवधारणाओं और उनके विभिन्न पहलुओं के बारे में विस्तार से जानने को मिलेगा, जिनका उल्लेख पूरे पाठ्यक्रम में आपको बार-बार पढ़ने को मिलेगा।

इकाई के आरंभ में भाग 4.2 में हम आंकड़ों के स्रोतों के बारे में बताएंगे। भाग 4.3 और 4.4 में भारत में महिलाओं की जनसंख्या के आकार और उनका आयु-वितरण बताया गया है। भाग 4.5 बताता है कि भारत की जनसंख्या में महिलाओं की संख्या पिछले वर्षों में घटती जा रही है, जैसा कि स्त्री-पुंजाति अनुपात से पता चलता है। भाग 4.6 में भारतीय जनसंख्या का विश्लेषण शहरी या ग्रामीणवास के अनुसार किया गया है और साथ में ग्रामीण और शहरी जीवन के निहितार्थों के बारे में भी बताया गया है। इसके बाद के भाग 4.7 में भारत में महिलाओं की विवाह-आयु और उनकी स्थिति के लिए इसके निहितार्थों की चर्चा की गई है। भाग 4.8 में महिलाओं की विभिन्न अवस्थाओं में पैदा हुए बच्चों की संख्या के संदर्भ में उनकी जनन क्षमता पर प्रकाश डाला गया है तथा उनकी जनन क्षमता के स्तर के कारणों का विवेचन करता है। मृत्यु-दर की चर्चा 4.9 में की गई है जिसमें विभिन्न चरणों पर पुरुष और महिलाओं के बीच पाए जाने वाले भेदों

पर प्रकाश डाला गया है। शिशु और बाल-मृत्युदर पर चर्चा भाग 4.10 में अलग से की गई है और 4.11 में मातृ मृत्यु-दर के बारे में बताया गया है।

4.2 आंकड़ों का स्रोत

आगे के भागों में दी गई भारतीय महिलाओं की जनसांख्यिक संरचना मुख्यत: तीन स्रोतों से उपलब्ध आंकड़ों पर आधारित है (1) दस वर्ष में एक बार समूचे देश में की जाने वाली जनगणना जिसमें प्रत्येक नागरिक की गिनती की जाती है; (2) सैम्पल रजिस्ट्रेशन स्कीम (नमूना पंजीकरण योजना) और (3) राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (नेशनल फेमिली हैल्थ सर्वे) जिसे वर्ष 1992-93 के दौरान किया गया था जिसमें देश के 24 राज्यों और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की 13-49 वर्ष आयु वर्ग की 89,777 विवाहित महिलाओं को राष्ट्रीय प्रतिनिधिमूलक नमूने के रूप में लिया गया था।

4.3 महिला जनसंख्या का आकार एवं आयु वितरण

वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 84.63 करोड़ थी। इसमें पुरुषों की जनसंख्या 43.88 करोड़ तो महिलाओं की जनसंख्या 40.75 करोड़ बताई गई थी। महिला जनसंख्या इस तरह 48.15 प्रतिशत थी जो कि देश की कुल जनसंख्या के आधे से भी कम है।

भारत में 15 वर्ष से कम आयु के तरुणों की जनसंख्या 36.0 प्रतिशत है, 57.6 प्रतिशत जनसंख्या 15 से 59 वर्ष और शेष 6.2 प्रतिशत 60 वर्ष ऊपर के आयु वर्ग में है। शहर की तुलना में देहाती इलाकों में 0-14 वर्ष आयु वर्ग और 60 से ऊपर के आयु वर्ग की जनसंख्या का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक है। 15-59 वर्ष आयु-वर्ग में उत्पादक आयु वाली जनसंख्या का प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक है (सैम्पल रजिस्ट्रेशन स्कीम, 1992)।

महिला जनसंख्या में 35.8 प्रतिशत 0-14 वर्ष के आयु-वर्ग में, 46.4 प्रतिशत 15-44 वर्ष के जननशील आयु-वर्ग में, 11.3 प्रतिशत 45-59 वर्ष आयु-वर्ग में तो शेष 6.5 प्रतिशत महिलाएं 60 वर्ष से ऊपर के आयु-वर्ग में हैं।

तालिका 4.1

महिला आयु-वितरण, (एस.आर.एस.) 1992

आयु-वर्ग	शहरी	ग्रामीण	कुल
0-14	33.1	36.5	35.8
15-44	49.9	45.4	46.4
45-59	10.8	11.4	11.3
60 के ऊपर	6.2	6.7	6.5
कुल	100.0	100.0	100.0

स्रोत: रजिस्ट्रार जनरल कार्यालय, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली; सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम, फर्टिलिटी एंड मार्टेलिटी इंडीकेटर्स, 1992

शहर की तुलना में गावों में 0-15 आयु वर्गों, 45-59 आयु वर्गों और 60 से ऊपर के आयु

वर्गों में महिलाओं की जनसंख्या का प्रतिशत अधिक है। 15-44 वर्ष आयु-वर्ग में महिला जनसंख्या का प्रतिशत गांवों से शहर में अधिक है (तालिका 4.1)। यूनिसेफ ने बड़े ही स्पष्ट तरीके से बताया है कि भारतीय नारी को जीवन के प्रत्येक चरण में किस तरह से विभिन्न प्रकार की आपदाओं का सामना करना पड़ता है, जिन्हें उसे समुचित अवसर प्रदान करके दूर किया जा सकता है। भारतीय नारी की दुर्दशा जन्म से पहले ही आरंभ हो जाती है। उसे जन्म-पूर्व लिंग-निर्धारण के बाद की जाने वाली मादा भ्रूण हत्या से जन्म लेने से पहले मारे जाने का खतरा उठाना पड़ता है। जन्म लेने के पश्चात शैशवास्था में भी उसके जीवन को खतरा रहता है–अगर कहीं किसी समुदाय या परिवार में मादा-शिशु हत्या का चलन है तो जान-बुझकर उसे मार दिया जाता है। गर्भावस्था जैसी अति-संवेदनशील अवधि के दौरान बरती जाने वाली उपेक्षा, अनदेखी से भी जन्म लेने के बाद वह मर सकती है। बाल्यावस्था के आरंभ में उसे स्वास्थ्य और पोषण संबंधी उपेक्षा की आपदा का सामना करना पड़ सकता है, जिसके फलस्वरूप कुपोषण, रुग्णता और मृत्य दर उनमें अधिक पाई जाती है। बचपन बीतते-बीतते उसे कई तरह के शोषण का खतरा रहता है, जैसे घरेलू काम-काज और छोटे भाई-बहनों की देखभाल की जिम्मेदारियां समय से पहले ही उठानी पड़ती हैं, पढ़ाई छोड़नी पड़ती है, खतरनाक, जोखिम भरे कार्य करने पड़ते हैं, यौन शोषण और उत्पीड़न जैसी अनेक कठोर परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है।

किशोरावस्था में उसे पार्थक्य की आपदा का सामना करना पड़ता है जो कई तरह से परिलक्षित होती है। जैसे यौवनारंभ होते ही उसकी गतिशीलता पर रोक, पूर्ण क्षमता तक शारीरिक लंबाई और भार प्राप्त न कर पाना, ऐनीमिया होना, शारीरिक वृद्धिरोध, कच्ची उम्र में विवाह और जल्दी-जल्दी कई बार गर्भधारण करना, उच्च मातृ रुग्णता और उच्च शिशु रुग्णता व मृत्यु-दर। इन सब आपदाओं का परिणाम है "शक्तिहीन नारी" जो अनपढ़, अदक्ष, शारीरिक रूप से जर्जर है और जिसकी उत्पादकता घटती जा रही है।

इकाई मे आगे के भागों में भारतीय महिलाओं की जनसांख्यिक संरचना की चर्चा की है जो उन तमाम आपदाओं, समस्याओं को प्रतिबिंबित करती है जीवन के विभिन्न चरणों में जिनका उन्हें सामना करना पड़ता है।

4.4 स्त्री-पुंजाति अनुपात

इकाई के इस भाग में स्त्री-पुंजाति अनुपात की परिभाषा देते हुए जनसंख्या में स्त्री-पुंजाति अनुपात के अध्ययन के महत्व के बारे में बताया गया है। इसमें अन्य देशों से भारत में स्त्री-पुंजाति अनुपात की तुलना की गई है। इसके पश्चात भारत में स्त्री-पुंजाति के स्तर और उसके रुझानों के बारे में बताया गया है। इस भाग के अंत में भारत में असामान्य स्त्री-पुंजाति अनुपात के संभावित कारणों पर प्रकाश डालते हुए यह बताया है कि इससे हमें क्या संकेत मिलते हैं।

4.4.1 स्त्री-पुंजाति अनुपात क्या है?

किसी जनसंख्या की स्त्री-पुंजाति (महिला-पुरुष) संरचना को जानने, समझने के लिए प्रायः दो विधियां प्रयोग की जाती हैं: (1) जनसंख्या में पुरुषों का प्रतिशत या पुंजाति अनुपात, और (2) स्त्री-पुंजाति अनुपात जो प्रति 100 पुरुषों के तुल्य महिलाओं की संख्या है। इन दो विधियों में स्त्री-पुंजाति अनुपात की विधि का ही प्रयोग जनसंख्या के अध्ययन में अधिक होता है।

इस इकाई में हमने स्त्री-पुजाति अनुपात का प्रति 100 महिलाओं के तुल्य पुरुषों की संख्या के रूप में बताया है। क्योंकि पूरे विश्व में यही परिभाषा अपनायी जा रही है और फिर यह

अन्य देशों से तुलना को आसान, सुविधाजनक बनाती है। (भारतीय जनगणना ने स्त्री-पुंजाति अनुपात को प्रति 100 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या के रूप में ही अभिव्यक्त किया है।)

4.4.2 स्त्री-पुंजाति अनुपात के अध्ययन का महत्व

स्त्री-पुंजाति अनुपात को किसी भी देश में महिलाओं की स्थिति का एक महत्वपूर्ण सूचक माना जाता है। ऐसा क्यों है यह जानना भी महत्वपूर्ण है।

पुरुष यूं भी लाभप्रद स्थिति में रहते हैं क्योंकि जन्म के समय स्त्री-पुंजाति अनुपात प्राय: 105 रहता है यानी प्रति 100 मादा शिशुओं पर 105 नर शिशु जन्म लेते हैं। मगर जैविकीय दृष्टि से नर की तुलना में नारी अधिक शाक्तिशाली होती है और इसलिए जीवन के अधिकांश चरणों में उनके जीवित बने रहने की संभावनाएं पुरुषों से अधिक होती हैं। जीवन के प्रजननात्मक चरण में आकर ही उन्हें शिशु-जनन यानी संतानोत्पत्ति से जुड़े जोखिमों का सामना करना पड़ता है। तब उनकी मृत्यु की संभावनाएं भी पुरुषों की तुलना में बढ़ जाती हैं। जैसा कि अमेरिका जैसे विकसित देशों में होता है, अगर ऐसे जोखिमों को कम कर दिया जाता है जो महिलाओं के पुरुषों से अधिक दीर्घायु होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। तब इसके फलस्वरूप एक ऐसा स्त्री-पुंजाति अनुपात स्थापित हो जाता है जो नारी जाति के अनुकूल रहता है।

जैविक कारकों के अलावा सामाजिक और सांस्कृतिक कारक भी देश के स्त्री-पुंजाति अनुपात के निर्धारण में महती भूमिका अदा करते हैं। जिन सभी देशों में भोजन, कार्य, स्वास्थ्य और चिकित्सा सेवाओं को सुलभ कराने, इत्यादि में महिलाओं के प्रति भेदभाव बरते जाते हैं उनमें महिलाओं में मृत्युदर अधिकांश आयु-वर्गों में पुरुषों से अधिक पाई जाती है, जिसके फलस्वरूप स्त्री-पुंजाति अनुपात भी पुरुषों के अनुकूल हो जाता है।

जो स्त्री-पुंजाति अनुपात पुरुषों के अनुकूल हो वह महिलाओं की निम्न स्थिति को प्रतिबिंबित करता है क्योंकि ऐसी स्थिति में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक जैविकीय कारकों पर प्रभावी हो जाते हैं।

4.4.3 अन्य देशों की तुलना में भारत में स्त्री-पुंजाति अनुपात

भारतीय जनगणना के अनुसार 1991 तक देश में स्त्री-पुंजाति अनुपात 107.7 था। इसका यह अर्थ है कि प्रति 100 महिलाओं पर पुरुषों की संख्या 108 थी। (इसमें प्रति 100 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 93 थी।)

भारत का स्त्री-पुंजाति अनुपात पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल जैसे अन्य देशों के अनुरूप ही पुरुषों के अनुकूल है, जिनमें प्रति 100 महिलाओं पर पुरुषों की संख्या औसतन 105 से अधिक है। स्त्री-पुंजाति अनुपात के इन मानों की तुलना में जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, स्वीडन, जर्मनी जैसे विकसित देशों में स्त्री-पुंजाति अनुपात 91 और 97 के बीच है। इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री-पुंजाति अनुपात विकासशील देशों में पुरुषों के अनुकूल है मगर वहीं विकसित देशों में यह अनुपात महिलाओं के अनुकूल है।

4.4.4 बर्षिसवीं सदी के भारत में स्त्री-पुंजाति अनुपात

तालिका 4.2 में भारत की जनसंख्या में वर्ष 1901 से 1991 तक स्त्री-पुंजाति अनुपात प्रस्तुत किया गया है। इसमें यह देखा जा सकता है कि स्त्री-पुंजाति अनुपात पूरी अवधि में पुरुषों के अनुकूल रहा है, जिसका यही अर्थ है कि महिलाओं की तुलना में पुरुषों की संख्या हमेशा अधिक रही है। वस्तुत: पुरुषों का महिलाओं पर आधिक्य 1951 की जनगणना को छोड़कर

प्रत्येक जनगणना के साथ क्रमशः बढ़ता रहा है। दूसरी ओर 1981 की जनगणना में स्त्री-पुंजाति अनुपात में निश्चित कमी देखी गई लेकिन फिर यह 1991 जनगणना में बढ़ गया है।

तालिका 4.2

20वीं सदी के दौरान भारत में स्त्री-पुंजाति अनुपात

जनगणना वर्ष	स्त्री-पुंजाति (पु./महिला) x 100
1901	102.9
1911	103.8
1921	104.7
1931	105.3
1941	105.8
1951	105.7
1961	106.3
1971	107.5
1981	107.1
1991	107.7

स्रोत: 1) 1901-1971 का आकलन सेंसस सेंटीनरी 1972, पॉकेट बुक ऑव पॉपुलेशन स्टैटीस्टिक्स, पृ. 18-19, से किया गया है

2) 1981 का आकलन रजिस्ट्रार जनरल एंड सेंसस कमिश्नर ऑव इंडिया, द्वारा की गई भारतीय जनगणना 1981 के प्रोविजनल पॉपुलेशन टोटल्स सिरीज-1, इंडिया पेपर ऑव 1981 से किया गया है।

3) 1991 का आकलन रजिस्ट्रार जनरल एंड सेंसस कमिश्नर ऑव इंडिया द्वारा की गई भारतीय जनगणना 1991 के प्रोविजनल पॉपुलेशन टोटल्स सिरीज-1, इंडिया पेपर ऑव 1991 से किया गया है।

4.4.5 स्त्री-पुंजाति अनुपात के निर्धारक

भारत और सांस्कृतिक रूप से समान अन्य देशों में उच्च स्त्री-पुंजाति अनुपात जोकि पुरुषों के अनुकूल है अर्जेंटीना, चिली, इंडोनेशिया, बर्मा (म्यानमार), मलेशिया जैसे अन्य विकासशील देशों की तुलना में असामान्य है।

भारतीय जनगणना में पुरुषों की अधिक गणना को पुरुषों के अनुकूल उच्च स्त्री-पुंजाति अनुपात में योगदान करने वाला कारक नहीं माना जाता है। महिलाएं अगर एक देश से भारी संख्या में अन्य देशों में प्रवास कर जाएं तो स्त्री-पुंजाति अनुपात बढ़ जाता है, और उस देश में जनसंख्या में महिलाओं की तुलना में पुरुषों की संख्या अधिक हो जाती है। भारत में स्थितियां ऐसी नहीं हैं जिससे ऐसी संभावना उत्पन्न होती हो। फिर यह भी देखा गया है कि भारत में जन्म के समय स्त्री-पुंजाति अनुपात सामान्य पैटर्न पर चलता है और असामान्य रूप से अधिक नहीं रहता। इस प्रकार भारत में उच्च महिला मृत्युदर ही इसका एकमात्र संभावित कारण रह जाता है। (इस पर हम इकाई में आगे भाग 4.9 में अलग से विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे)। यहां पर यह बताना पर्याप्त होगा कि समाज विज्ञानियों के

अनुसार पुरुषों के अनुकूल उच्च स्त्री-पुंजाति अनुपात भारत में महिलाओं की उच्च मृत्युदर के कारण है जिसके मूल में दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में उनकी निम्न स्थिति जिम्मेदार है।

4.5 शहरी/ग्रामीणवास

वर्ष 1991 की भारतीय जनगणना के अनुसार, शहरी क्षेत्रों की परिभाषा में निम्न आते हैं:

क) नगरपालिका, निगम, कैंटोनमेंट बोर्ड या नोटिफाइड टाउन एरिया कमेटी इत्यादि वाले सभी स्थान

ख) निम्न शर्तों को पूरा करने वाले अन्य सभी स्थान:

i) न्यूनतम जनसंख्या 5,000 हो;

ii) पुरुष श्रमजीवी जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत हिस्सा गैर-कृषि वाले कार्यों में लगा हो; और

iii) जनसंख्या घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी हो।

4.5.1 ग्रामीण जीवन के निहितार्थ

वर्ष 1991 की भारतीय जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 84.63 करोड़ थी, जिसमें 26.1 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में और शेष 73.9 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है।

ग्रामीण जीवन लोगों के जीवन को कई तरह से प्रभावित करता है। ग्रामीण समुदाय प्राय: परंपरावादी और बदलाव के विरोधी होते हैं। जन-संचार माध्यमों और गैर-पारिवारिक संपर्कों के प्रभाव में वे कम ही आते हैं। गांवों में स्वास्थ्य और शैक्षिक सेवाएं सीमित रूप से उपलब्ध हैं, जिससे अच्छा स्वास्थ्य और शैक्षिक स्थिति प्राप्त करने के कुछ ही अवसर रह जाते हैं। देहाती इलाकों में आजीविका का मुख्य स्रोत खेती-बाड़ी है जो मुख्यत: मनुष्य के नियंत्रण से परे जलवायु-स्थितियों पर आश्रित है। जीवन की ये सभी स्थितियां देहात के लोगों को भाग्यवादी बना देती हैं जिनमें और उनमें स्वयं पर तनिक भी आत्म-विश्वास नहीं रहता।

ये स्थितियां पुरुषों की तुलना में ग्रामीण महिलाओं को अधिक प्रभावित करती हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाएं अपने घरों तक अधिक सीमित रहती हैं, बाहरी दुनिया से उनका संपर्क नहीं के बराबर रहता है, जन-संचार माध्यमों से उनका संपर्क कम हो पाता है और वे अधिक भाग्यवादी तथा परंपरावादी होती हैं।

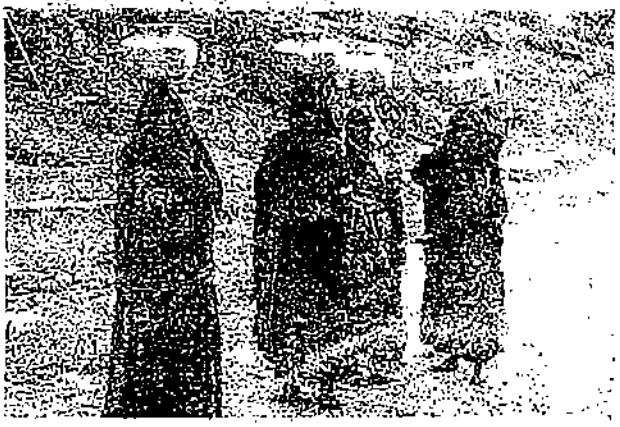

सिर्फ पानी और जलावन के लिए लम्बा रास्ता तय करती हुई, पश्चिमी बंगाल और राजस्थान की ग्रामीण महिलाएं

सौजन्य : सी.डब्लू.डी.एस., नई दिल्ली

ग्रामीण जीवन महिलाओं पर भारी बोझ डालता है। परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें पानी और लकड़ी लानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त खाना बनाना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना, जैसे घरेलू कामकाजों के दायित्व का निर्वाह नित्यप्रति करने के साथ साथ वे अक्सर घर के खेतों में अवैतनिक श्रम या बहुत ही कम मजदूरी पर कृषि श्रमिकों के रूप में भी काम करती हैं।

ग्रामीण जीवन की वास्तविकताएं महिलाओं की स्थिति के सभी जनसांख्यिक सूचकों में प्रतिबिंबित हो जाती हैं। जैसा कि इकाई में आगे बताया जाएगा, शहरी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाओं में जीवन संभाविता कम और जननदर अधिक पाई जाती है। इकाई में आगे हम शहरी महिलाओं की निम्न शैक्षिक स्थिति तथा निम्न मजदूरी वाले कामधंधे या बेगार में उनकी भागीदारी के बारे में बताएंगे।

4.5.2 शहरी जीवन के निहितार्थ

अक्सर यह सोचा जाता है कि शहर में महिलाओं का जीवन बेहतर होगा। मगर यह सत्य नहीं है। शहरी क्षेत्रों में रहने वाले पुरुषों और महिलाओं दोनों को अधिक भीड़-भाड़, गंदगी और प्रदूषण के कारण अनेक स्वास्थ्य संबंधी जोखिमों का सामना करना पड़ता है। शहरी जीवन के दबावों से उत्पन्न होने वाले तनाव भी मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। शहरों में श्रमजीवी या काम-काजी महिला को मजदूर और गृह निर्वाहक (होम मेकर) की दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। घरेलू महिलाओं को भी अपने बच्चों की शिक्षा के निरीक्षण और बड़ा होने पर उन्हें आज के अतिस्पर्धी विश्व का सामना करने के लिए तैयार करने का अतिरिक्त दायित्व भी उठाना पड़ता है। उन्हें वित्तीय मामलों की ओर भी ध्यान देना पड़ता है, घर की जरूरतों के लिए आवश्यक खरीददारी भी करनी पड़ती है, जो महिलाओं के पारंपरिक कार्यों से अतिरिक्त हैं।

बेहतर जीवन की तलाश में शहर की राह करते हुए प्रवासी ग्रामवासी : दिल्ली का एक झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र
सौजन्य : बी. किरणमई, नई दिल्ली

शहरों के स्लमों और स्लमनुमा बस्तियों में जीवन स्त्री और पुरुष दोनों के लिए और भी कठिन है। मुंबई जैसे महानगरों में, जनसंख्या का बड़ा हिस्सा स्लमों और स्लमनुमा बस्तियों में रहता है (मुंबई में तो इनकी संख्या लगभग 50 प्रतिशत है)। स्लम बस्तियों की अमानवीय स्थितियों में रहने का सबसे अधिक दुष्प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है। वे अक्सर कच्ची उम्र

में ही यौन-शोषण का शिकार बन जाती हैं। शराबी पतियों के कारण वे घर में हिंसा का शिकार बनती हैं। पर्याप्त आवास-स्थान की कमी के कारण एकांत का अभाव तो रहता ही है, उसके साथ-साथ पेयजल और शौचालयों की कमी भी उनके शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। स्लमवासियों विशेषकर महिलाओं के जीवन को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक यह है कि वे ग्रामीण क्षेत्रों से आए प्रवासी होते हैं। वे अपनी ग्रामीण जड़ों और जीवन शैली, सोच तथा विश्वासों को त्यागते नहीं हैं। इसलिए इन ग्रामीण प्रवासियों को खासतौर पर महिलाओं को पुरुषों से अधिक तालमेल की व्यवहार संबंधी समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है।

मगर यहां यह बात ध्यान में रखी जानी जरूरी है कि ग्रामीण और शहरी महिलाओं में जनसांख्यिक सूचक संबंधी जो भी भेद हमें नजर आते हैं, वे मुख्यत: शहरी क्षेत्रों में बेहतर अवसरों के सुलभ होने के कारण हैं।

ज़रा सोचिए 1

1) स्त्री-पुजाति अनुपात का क्या तात्पर्य है?

2) आपके विचार में भारत में स्त्री-पुजाति अनुपात पुरुषों के अनुकूल क्यों है?

3) भारतीय महिलाओं की जनसांख्यिक संरचना को समझने के लिए शहरी-ग्रामीण विभेदों का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है?

4.6 विवाह आयु

इकाई के इस भाग में हम महिलाओं की स्थिति के एक और महत्वपूर्ण सूचक के बारे में बताएंगे: यह है विवाह आयु। जिस आयु में एक महिला का विवाह होता है वह उसकी स्वास्थ्य, शैक्षिक स्थिति और उसके सामाजिक परिवेश में उसे प्राप्त दर्जे का सूचक होती है।

4.6.1 स्थिति के सूचक के रूप में विवाह आयु

विवाह भारत में कमोबेश सार्वभौमिक है भले ही स्त्री या पुरुष के समुदाय का किसी भी धर्म से संबंध हो। इसका सीधा सा अर्थ यही है कि आम तौर पर सभी पुरुषों और स्त्रियों से अपेक्षा की जाती है कि वे विवाह कर संतान उत्पन्न करें।

महिलाओं का विवाह जिस आयु पर किया जाता है वह उसकी सामाजिक-स्थिति का एक महत्वपूर्ण सूचक है। इससे यह पता चलता है कि लड़की का विवाह तय करते समय उसकी इच्छाओं को किस हद तक सम्मान दिया जाता है। परंपरावादी समाजों में महिलाओं के विवाह की आयु प्राय: यौवनारंभ से पहले या यौवनारंभ के तत्काल बाद निश्चित कर दी जाती है। क्योंकि अनेक समाजों में दुल्हन के कौमार्य को अत्यधिक महत्व दिया जाता है, इसलिए उनमें माता-पिता किसी "समस्या में पड़ने से पहले" ही अपनी बेटियों के हाथ पीले कर देना पसंद करते हैं। लड़कियों के लिए यही वांछनीय समझा जाता है कि उनमें अपनी मनोकामनाएं अंगड़ाई लेने लगें और वे अपने वैवाहिक घर यानी ससुराल के तौर-तरीके में सहजता से ढलने के योग्य न रहें, इससे पहले ही कच्ची उम्र में उनका विवाह कर दिया जाना चाहिए दूसरी ओर उच्च विवाह आयु का अर्थ है कि लड़कियां अपनी पसंद-नापसंद को प्रकट कर सकती हैं और अपने पति का चुनाव भी स्वयं कर सकती हैं। विवाह आयु ही महिलाओं के प्रजननात्मक काल का निर्धारण करती है, जब महिलाएं जैविक रूप से बच्चे पैदा करने में सक्षम रहती हैं। यह उनकी (जननदर यानी पैदा होने वाले बच्चों की संख्या)

को प्रभावित करता है। विशेषकर ऐसी स्थिति में जब गर्भनिरोधक के जरिए जननदर को नियंत्रित करने का चलन आम नहीं हो।

4.6.2 विवाह-आयु मापन

जनसांख्यिकविद एकल माध्य विवाह आयु (सिंगूलेट मीन एज एट मैरिज-एसएमएएम) को विवाह आयु की माप मानते हैं। इसकी गणना कभी विवाह नहीं करने वाले व्यक्तियों के आयु-विशेष अनुपात से विभिन्न आयु-वर्गों के लिए की जाती है, जो 15-19 आयु-वर्ग से आरंभ होकर 45-49 आयु-वर्ग पर समाप्त होती है। एकल माध्य विवाह आयु की गणना के लिए सही प्रक्रियाओं के विस्तार में जाना जरूरी है। यह समझना पर्याप्त होगा कि एसएमएएम समूची जनसंख्या की औसत विवाह आयु है जिसका एक निश्चित अवधि के दौरान अध्ययन किया गया हो।

विभिन्न आयु-वर्गों के लिए महिला विवाह-आयु में रुझानों का अध्ययन करना भी संभव है। इस तरह हम 40-41 वर्ष के आयु वर्ग की महिलाओं की माध्य विवाह आयु का पता लगा कर उसकी तुलना उन महिलाओं की माध्य विवाह आयु से कर सकते हैं जो तरुण आयु-वर्गों में हैं। विभिन्न आयु वर्गों के औसत मानों की तुलना से पता लगाया जा सकता है कि पिछले वर्षों में विवाह आयु में कोई बदलाव आया है या नहीं।

आगे की चर्चा में हमने बताया है कि एसएमएएम का प्रयोग शहरी-ग्रामीण विभेदकों और अंतर्राज्यीय भिन्नताओं का पता लगाने के लिए किया जाता है। विभिन्न आयु वर्गों के लिए माध्य विवाह आयु का भी प्रयोग किया जाता है।

4.6.3 महिला और पुरुष विवाह आयु

राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार महिला एकल माध्य विवाह आयु मान देश में 20.0 वर्ष, शहरी क्षेत्रों के लिए 21.5 वर्ष और 19.3 वर्ष ग्रामीण क्षेत्रों में है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शहर की महिलाएं गांवों की महिलाओं से दो वर्ष पश्चात विवाह करती हैं। एक उल्लेखनीय बात यह नजर आती है कि 1961 और 1992-93 के दौरान महिलाओं की एकल माध्य विवाह आयु 15.9 से 4.1 वर्ष बढ़कर 20 वर्ष जा पहुंची है।

विवाह के समय पुरुष औसतन पांच वर्ष बड़े रहते हैं। शहरी व्यक्ति गांवों के पुरुषों से दो वर्ष बाद विवाह करते हैं। वर्ष 1961 और 1992-93 के दौरान पुरुषों की माध्य विवाह आयु 21.9 वर्ष से 3.1 वर्ष बढ़कर 25.0 वर्ष हो गई।

राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार महिलाओं के विभिन्न आयु-वर्गों के लिए माध्य विवाह का आकलन करने पर तरुण आयु-वर्गों की माध्य विवाह-आयु प्रौढ़ आयु-वर्गों से अधिक पाई गई। उदाहरण के लिए जिन महिलाओं की आयु 40 से 49 वर्ष के बीच थी उनकी माध्य विवाह आयु 15.5 वर्ष तो 20-24 वर्ष के तरुण आयु वर्ग की महिलाओं की माध्य विवाह आयु 17.4 वर्ष पाई गई। इन परिणामों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि महिलाओं की विवाह आयु पिछले वर्षों की अपेक्षा बढ़ रही है।

4.6.4 अंतर्राज्यीय अंतर

सभी राज्यों में पुरुष महिलाओं से देर में विवाह करते हैं और शहर के स्त्री पुरुषों से ग्रामीण स्त्री-पुरुष शीघ्र विवाह कर लेते हैं।

एकल माध्य विवाह आयु को लेकर राज्यों के बीच बड़ी भिन्नताएं देखने में आती हैं। महिला

विवाह आयु मध्य प्रदेश में न्यूनतम (17.4 वर्ष) और गोवा में उच्चतम (25.1 वर्ष) है। जिन राज्यों में 1991 में जनसंख्या पांच करोड़ से अधिक थी उनमें से केरल (21.1 वर्ष), आसाम (21.4 वर्ष), पंजाब (21.9 वर्ष), दिल्ली (20.9 वर्ष), उड़ीसा (20.7 वर्ष), तमिलनाडू (20.5 वर्ष), हिमाचल प्रदेश (20.4 वर्ष) और गुजरात (20.2 वर्ष), इन राज्यों में महिला विवाह आयु 20 वर्ष से अधिक है। दूसरी ओर मध्य प्रदेश (17.4 वर्ष), बिहार (18.0 वर्ष), आंध्र प्रदेश (18.1 वर्ष), राजस्थान (18.4 वर्ष), हरियाणा (18.4 वर्ष) और उत्तर प्रदेश (18.6 वर्ष) में महिलाओं की विवाह आयु 20.0 वर्ष से कम है। यह देखा जा सकता है कि पूर्वोत्तर राज्यों में महिला विवाह आयु अपेक्षाकृत अधिक है जो अरुणाचल प्रदेश में 20.0 वर्ष से लेकर मणिपुर में 25.0 वर्ष तक है पुरुष विवाह आयु में भी ऐसे ही अंतर्राज्यीय भिन्नताएं देखने को मिलती हैं।

4.6.5 कम विवाह-आयु के निहितार्थ

कच्ची उम्र में विवाह का एक महत्वपूर्ण निहितार्थ लड़की को अपने मूल परिवार से ऐसे समय में हटा देना है जब उसे सहायता और मार्ग दर्शन की सबसे अधिक आवश्यकता रहती है। यह वह समय है जब वह किशोरावस्था और नवयौवन की उथल-पुथलों से गुजर रही होती है। देश के उत्तरी भाग में प्रचलित बहिर्विवाह के नियम उसके लिए अपने गांव से बाहर ही विवाह रचाना अनिवार्य कर देते हैं। उस पर यह एक और भावनात्मक तनाव डालता है क्योंकि अचानक वह स्वयं को एक अपरिचित वातावरण में ऐसे अजनबियों में घिरा पाती है जिनमें नुक्ताचीनी करने, मीनमेख निकालने की प्रवृत्ति हावी रहती है। यह नव-नवेली दुल्हन के जीवन को कष्टमय बना सकता है।

किसी कन्या का विवाह जब कच्ची उम्र में ही कर दिया जाता है तो इससे वह अपनी शिक्षा को जारी रखने से वंचित हो जाती है। वह अक्सर बाहरी प्रभावों से अछूती रह जाती है।

राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण 1992-93 के अनुसार 15-19 वर्ष के आयु वर्ग की लगभग 40 प्रतिशत महिलाओं का विवाह तब तक हो चुका था। ग्रामीण महिलाओं में यह प्रतिशत 46 तो शहरी महिलाओं के लिए 22 था। इसका यही मतलब निकलता है कि इन महिलाओं के छोटी उम्र में ही बच्चे होने लगे (विवाह के पश्चात पहले वर्ष के अंत तक या फिर दूसरे वर्ष तक पहला बच्चा पैदा होने की आशा की जाती है)। यह बात सभी जानते हैं कि किशोरावस्था में गर्भ धारण अनेक शारीरीय समस्याओं को जन्म दे सकता है। इसके अलावा किशोर माताओं से जन्मे बच्चे कुपोषण के शिकार रहते हैं, उनका शारीरिक भार कम रहता है और उनके अल्पायु में ही मर जाने की संभावना भी अधिक रहती है।

कम उम्र में विवाह करने वाली महिलाएं न सिर्फ कम उम्र में ही बच्चे पैदा करने लग जाती हैं बल्कि इनमें से अनेक महिलाएं अगर गर्भनिरोधक उपाय नहीं अपनाती हैं तो वे अपने संपूर्ण प्रजनन-काल में बच्चे पैदा करना जारी रखती हैं। इस प्रकार अपने जीवन के सर्वाधिक उत्पादक वर्षों में वे बच्चे जनने और उनके लालन-पालन के बोझ में ही दबी रह जाती हैं। एक पत्नी और मां बनने के अलावा उन्हें कच्ची उम्र से ही घर के काम-काजों के दायित्वों का बोझ भी उठाना पड़ता है। कम उम्र में विवाह और फलतः कम उम्र में बच्चों को जन्म देना तथा इसके साथ आत्म-अभिव्यक्ति व आत्म-विकास के सीमित अवसर परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारने में किसी भी तरह से सहायक नहीं हैं।

4.7 जननदर

जनसांख्यिक भाषा में जननदर किसी एक व्यक्ति या जनसमूह की प्रजनन क्रिया, उसके निष्पादन को कहते हैं। जननदर के अध्ययन में हम सिर्फ उन बच्चों को शामिल करते हैं जो जीवित पैदा होते हैं, जिसमें बच्चा रोने जैसे जीवन के लक्षणों के साथ जीवित पैदा हो। जननदर को मापने में मृत-जन्मों, जिसमें मृत बच्चे का जन्म हो, गर्भपात इत्यादि शामिल नहीं किए जाते हैं।

जननदर समाज के लिए महत्वपूर्ण कार्य का निर्वाह करती है। इसका दायित्व जनसंख्या का जैविकी प्रतिस्थापन करना है। मृत्यु से जनसंख्या में ह्रास आता है तो जन्म उसकी क्षतिपूर्ति देते हैं। परंतु जब जन्मों की संख्या मृत्यु से अधिक हो जाए तब भारत जैसे गरीब, विकासशील देश को जनसंख्या विस्फोट जैसी समस्या से जूझना पड़ता है। जननदर और मृत्युदर के अलावा देश के अंदर और उसके बाहर प्रवास भी जनसंख्या में परिवर्तन लाने वाला एक और कारक है। बहरहाल भारतीय संदर्भ में प्रवास की जनसंख्या परिवर्तन में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है।

4.7.1 स्थिति सूचक के रूप में जननदर

एक व्यक्ति और परिवार की दृष्टि से बच्चे होना महत्वपूर्ण है और चूंकि बच्चों को जन्म देने का दायित्व महिला ही पूरा करती हैं इसलिए परिवार और समाज की दृष्टि में जननदर का उसकी स्थिति से घनिष्ठ संबंध है।

भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बच्चे विवाह का स्वाभाविक और वांछित परिणाम माने जाते हैं। हिंदू धर्म के अनुसार विवाह का उद्देश्य धर्म (अपने कर्तव्य का निर्वाह करना), प्रजा (संतान उत्पन्न करना) और रति (यानी यौनेच्छा की तुष्टि करना) है। इस प्रकार संतान उत्पन्न करना विवाह के लक्ष्य के रूप में कामेच्छा की तुष्टि से पहले आता है।

वंश को आगे बढ़ाने के लिए पुत्रों को महत्वपूर्ण समझा जाता है। हिंदुओं में मां-बाप की चिता को मुखाग्नि सिर्फ बेटा ही दे सकता है, ताकि उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो सके। बेटों की कामना इस आशा से भी की जाती है कि वे वृद्धावस्था में मां-बाप का सहारा बनेंगे। अगर कोई स्त्री कम से कम एक बेटा भी उत्पन्न नहीं कर पाती है तो इसके लिए उसे ही दोष दिया जाता है। हालांकि विज्ञान कहता है कि बच्चे के लिंग के निर्धारण के लिए पुरुष ही उत्तरदायी होता है। परंपरागत रूप से हिंदुओं में बेटियां पूरी तरह से अवांछित नहीं मानी जाती हैं, कन्यादान से मां-बाप को पुण्य मिलता है।

मगर बेटों की कामना बेटियों की प्राप्ति की कामना से अधिक बलवती होती है। इस कामना के चलते यह भी देखने में आता है कि कई बेटियां उत्पन्न हो जाने के बाद भी दंपती बेटा उत्पन्न करने के प्रयास में लगे रहते हैं। इससे जनन दर में अतिशय वृद्धि हो जाती है।

भारतीय समाज में निःसंतान स्त्री को प्रायः हेय दृष्टि से देखा जाता है। उसे बच्चे के नामकरण संस्कार जैसे सामाजिक शुभ अवसरों में भाग लेने से मना किया जा सकता है। उसे अक्सर बच्चों के लिए "बुरी नजर" माना जाता है। निःसंतानता से जुड़े इस तरह के कलंक के चलते अगर पति के संबंधियों ने उसका दूसरा विवाह नहीं कर लिया हो तो पत्नी स्वयं ही इस दिशा में पहल करने के लिए विवश हो जाती है। हालांकि प्रजनन के लिए दोनों जीवन-साथी उत्तरदायी हैं लेकिन निःसंतानता के मूल कारण की पुष्टि के लिए चिकित्सकीय

जांच कराएं बिना ही इसका सारा दोष पत्नी पर ही मढ़ दिया जाता है। इस तरह की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में स्वैच्छिक नि:संतानता बिल्कुल नहीं है, हालांकि उच्च वर्गीय शहरी समाज में इस तरह के कुछ मामले अपवाद स्वरूप देखे जा सकते हैं।

4.7.2 जननदर मापन

जननदर को दो प्रकार से मापा जाता है: (1) कालाविध मापन जिसका मतलब है एक विशेष अवधि, प्राय: एक पंचांग वर्ष, में किसी जन समूह का जनन कार्य। (2) भिन्न आयु वर्गों में महिलाओं को नित्य उत्पन्न होने वाले बच्चों की संख्या।

कालावधि जनन दर का सबसे सरल रूप अशोधित जन्म दर है जिसकी गणना जन्मों की संख्या को कुल वर्ष-मध्य जनसंख्या से भाग देकर और फिर उसे 100 से गुणा करके की जाती है। इस प्रकार अशोधित जन्म दर एक वर्ष में प्रति 1000 जनसंख्या में सप्राण जन्मों की संख्या है। भिन्न की संख्या में सिर्फ 15-44 या 15-49 वर्ष के आयु वर्ग की महिलाओं (सामान्य जननदर) या विशेष आयु वर्गों में महिलाओं की संख्या (आयु विशेष जननदर) को शामिल कर इस गणना को परिष्कृत किया जा सकता है। कुल जनन-दर असल में एक प्राक्कल्पनात्मक दर है जो हमें बताती है कि एक स्त्री जैसे-जैसे अपने सम्पूर्ण प्रजननकाल से गुजरती है वह कितने सप्राण जन्म देती है। इसका आंकलन आयु-विशेष जनन दर के आधार पर किया जाता है। इन भिन्न दरों से प्रतिस्थापन दरें भी निकाली जाती हैं, जो बच्चों की संख्या (सकल जननदर) और बेटियों की संख्या (नेट जननदर) को बताती है, जिन्हें एक स्त्री इस संसार में जन्म देती है।

आगे की चर्चा में हमने जननदर की माप के रूप में भिन्न आयु वर्गों में महिलाओं को उत्पन्न होने वाले बच्चों की संख्या को लिया है। यहां 45-49 वर्ष आयु-वर्ग की महिलाओं के उत्पन्न होने वाले बच्चों की संख्या का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि इन महिलाओं के बारे में यही समझ लिया जाता है कि इन्होंने संतानोत्पत्ति का कार्य पूरा कर लिया है।

4.7.3 निरंतर जन्म लेने वाले बच्चे

राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण ने पाया है कि 45-49 वर्ष आयु-वर्ग में महिलाएं औसतन पांच या अधिक जीवित बच्चों को जन्म देती हैं और इस आयु वर्ग में 17 प्रतिशत महिलाएं कम से कम आंठ सप्राण जन्म देती हैं।

4.7.4 जननदर में अंतर

शहरी और ग्रामीण महिलाओं की जननदर में 45-49 आयु वर्ग में अंतर पाए गए हैं जिसमें ग्रामीण महिलाएं शहरी महिलाओं से एक जन्म अधिक देती हैं। जब सभी विवाहित महिलाओं को लिया जाता है तो हर महिला औसतन तीन सप्राण जन्म देती पाई जाती है, इसमें भी ग्रामीण महिलाएं शहरी महिलाओं से अधिक औसत दर्ज करती हैं। मगर यह अंतर ज्यादा बड़ा नहीं है।

महिलाओं के शैक्षिक स्तर का उनके जननदर पर निश्चित अंतर पड़ता है। इन महिलाओं का शैक्षिक स्तर जैसे-जैसे बढ़ता है, उनके कम बच्चे औसतन कम होते हैं। इसलिए अनपढ़ महिलाएं जहां औसतन तीन से अधिक सप्राण जन्म देती हैं वहीं हाई-स्कूल और उससे अधिक शिक्षित महिलाएं दो जीवित बच्चों को जन्म देती हैं। मुस्लिम महिलाएं औसतन तीन से अधिक सप्राण जन्म देती हैं जबकि शेष धर्मों की महिलाएं औसतन तीन से कम सप्राण जन्म देती हैं। अनुसूचित जातियों और जनजातियों की महिलाओं में जननदर अन्य महिलाओं से थोड़ा सा अधिक पाई जाती है।

विभिन्न राज्यों के जननदर में भी अंतर पाए गए हैं। पंजाब को छोड़कर सभी उत्तरी राज्यों, मध्य भारत के राज्यों, पूर्वी राज्यों, उत्तर-पूर्वी राज्यों और दक्षिण में कर्नाटक आदि राज्यों ने पश्चिमी और दक्षिणी राज्यों से उच्च जननदर दर्ज की है। गोवा में जननदर सबसे कम पाई गई है।

अनुभव से सीखें-1

अपने परिवार के लोगों, संबंधियों, पड़ोस के मित्रों से बात कीजिए और उनसे पूछिए कि वे बच्चे पैदा करने और एक निश्चित संख्या में बच्चों की आवश्यकता महसूस क्यों करते हैं। इसे सावधानीपूर्वक लिख डालिए और फिर अपने स्टडी सेंटर के अन्य सहपाठियों के साथ इस पर चर्चा कीजिए।

4.7.5 किशोरावस्था में जनन

इस बात से हम अच्छी तरह से परिचित हैं कि भारतीय महिलाएं कम उम्र से ही बच्चे जनने लग जाती हैं इनमें से अधिकांश तो अपनी किशोरावस्था (यानी 20 वर्ष की उम्र से भी कम) में होती हैं। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार 20 वर्ष से कम आयु की 58 प्रतिशत विवाहित महिलाओं ने जनन कार्य शुरू कर दिया था, 48 प्रतिशत महिलाएं मां बन चुकी थीं और 12 प्रतिशत महिलाओं के गर्भ में उनकी पहली संतान पल रही थी। सर्वेक्षण के दौरान 13-16 वर्ष आयु वर्ग की महिलाओं में 25 प्रतिशत मां बन चुकी थीं और 11 प्रतिशत महिलाओं के गर्भ में उनकी पहली संतान पल रही थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 13 से 16 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाओं में 36 प्रतिशत ने बच्चों को जन्म देना शुरू कर दिया था, 17 से 19 वर्ष के आयु वर्ग में 52 प्रतिशत महिलाएं मां बन चुकी थी और 12 प्रतिशत महिलाएं अपने पहले गर्भ से थीं। इस प्रकार 17-19 वर्ष के आयु वर्ग में 64 प्रतिशत विवाहित महिलाएं जनन या संतानात्पत्ति का कार्य आरंभ कर चुकी थीं।

बीस वर्ष की उम्र तक पहुंचने से पहले ही जिन विवाहित महिलाओं ने संतान उत्पन्न करना आरंभ कर दिया था उनका प्रतिशत शहरी क्षेत्रों की तुलना में देहात में अधिक था। इसी प्रकार अनपढ़ महिलाओं में यह प्रतिशत हाईस्कूल या उससे ज्यादा शिक्षित महिलाओं से अधिक था। अनुसूचित जातियों और जनजातियों की महिलाओं में यह प्रतिशत अन्य जातियों से अधिक पाया गया। अन्य धार्मिक समुदायों की तुलना में हिन्दू महिलाओं में यह प्रतिशत कम किसी भी सूरत में नहीं कहा जा सकता है क्योंकि 20 वर्ष से कम उम्र की 57 प्रतिशत विवाहित हिन्दू महिलाएं संतानोत्पत्ति आरंभ कर चुकी थी।

4.7.6 बांझपन

बांझपन या प्राथमिक बंध्यता का तात्पर्य है कि स्त्री ने कभी एक ऐसे बच्चे को जन्म नहीं दिया जिसमें जीवन का कोई लक्षण हो, जैसे रोना जैसा कि हमने पीछे कहा है स्वैच्छिक निःसंतानता भारत में सिर्फ अपवाद स्वरूप ही सुनी जा सकती है।

भारत में बांझपन या निःसंतानता उतनी ज्यादा व्यापक नही है जितना कि विश्वास किया जाता है। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण ने पाया है कि 40 वर्ष से ऊपर के आयु की मौजूदा विवाहित महिलाओं में सिर्फ 2 प्रतिशत ने ही कोई सप्राण जन्म नहीं दिया था। इसमें संदेह नहीं है कि निरपेक्ष संख्या के संदर्भ में भारत की विशाल जनसंख्या को देखते हुए ऐसी महिलाओं की संख्या निश्चित ही काफी अधिक नजर आती है।

जरा सोचिए – 2

1) भारत में महिला विवाह आयु कम होने के क्या निहितार्थ हैं?

2) भारत में जननदर में अंतर के बारे में बताइए?

3) भारत में कम उम्र में संतानोत्पत्ति किस सीमा तक है?

4.8 मृत्यु-दर

महिलाओं में मृत्यु-दर की स्थिति को किसी भी देश में उनकी स्थिति का सूचक माना जा सकता है। सामान्य अनुभव तो कहता है कि महिलाएं मृत्यु-दर के मामले में पुरुषों से लाभकारी स्थिति में हैं। जैसाकि पीछे भाग 4.5.2 में बताया गया है कि जैविकी की दृष्टि से महिलाएं पुरुषों से अधिक शक्तिशाली होती हैं। शिशु-जनन काल को छोड़कर वे सभी जोखिमों का सामना करते हुए पुरुषों से ज्यादा समय तक जीवित रह सकती हैं। जीवन-चक्र के सभी चरणों पर महिलाओं में मृत्युदर पुरुषों से अधिक हो तो उससे यही संकेत मिलता है कि इसके लिए जैविक कारकों के बजाएं सामाजिक-सांस्कृतिक कारक अधिक उत्तरदायी हैं। इससे देश में महिलाओं की निम्न स्थिति का संकेत मिल जाता है।

जननदर या जनन-क्षमता की तरह मृत्यु-दर का आकलन एक पंचांग वर्ष में मृत्यु की संख्या पर आधारित आवधिक दरों से किया जाता है। अशोधित मृत्यु-दर की गणना एक वर्ष में हुई मृत्यु को वर्ष-मध्य की जनसंख्या से भाग देकर और उसे 1000 से गुणा करके की जाती है। अशोधित मृत्यु-दर इस तरह एक विशेष वर्ष में प्रति 1000 जनसंख्या में होने वाली मृत्यु की संख्या है।

अशोधित मृत्यु-दर को विभिन्न आयु-वर्गों के पुरुषों और महिलाओं के लिए पृथक गणना की जाती है। शिशु मृत्यु यानी पहली वर्षगांठ मनाने से पहले बच्चों की मृत्यु को अलग से लिया जाता है क्योंकि मानव के जीवन का पहला वर्ष सबसे अधिक असुरक्षित, संवेदनशील काल होता है।

भिन्न आयु-वर्गों की मृत्युदरों के आधार पर जन्म के समय आयु-संभाविता का आंकलन जीवन-तालिका विधि से किया जाता है। यह विधि हमें उन वर्षों की संख्या बताती है जब तक एक व्यक्ति के जन्म के समय उसके जीवित रहने की संभावना व्यक्त की जा सकती है।

आगे की चर्चा में हम मृत्यु-दर और आयु संभाविता का प्रयोग भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति को बताने के लिए करेंगे जैसा कि मृत्यु-दर के इन आकलनों से हमें पता चलता है। शिशु और बाल मृत्यु-दर तथा मातृ मृत्यु-दर को भाग 4.10 और 4.11 में अलग से लिया गया है।

4.8.1 जन्म के समय आयु संभाविता

विश्व के अधिकांश देशों में महिलाओं की आयु-संभाविता पुरुषों से अधिक है। विकसित देशों में आयु-संभाविता का यह अंतर विकासशील देशों से अधिक है। भारत में हाल के समय तक स्थिति इसके एकदम विपरीत थी, जब महिलाओं की आयु-संभाविता पुरुषों से कम थी। वर्ष 1980 के बाद जाकर ही महिलाओं की आयु संभाविता पुरुषों से थोड़ा सा बेहतर देखने

में आती है। वर्ष 1986-90 की अवधि के दौरान, पुरुषों की आयु संभाविता 57.7 वर्ष तो महिलाओं की आयु-संभाविता 58.1 वर्ष पाई गई जोकि पांच महिने से भी कम का अंतर है। यहां भी ग्रामीण महिलाओं की मृत्युदर की स्थिति में बहुत ही कम सुधार हुआ है और उनकी आयु संभाविता में मात्र 0.1 वर्ष यानी दो महीने से भी कम का अंतर आया है। इसके विपरीत शहरी क्षेत्रों में यह अंतर लगभग तीन वर्ष है (.....1994)

4.8.2 अशोधित मृत्यु-दर और आयु विशेष मृत्यु-दर

राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण 1992-93 और सैम्पल रजिस्ट्रेशन स्कीम (नमूना पंजीयन योजना) 1991-92 के जरिए प्राप्त की गई अशोधित मृत्यु-दरें काफी हद तक एक दूसरे से मेल खाती हैं। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण में 35 वर्ष तक विभिन्न आयु वर्गों में महिलाओं में मृत्यु-दर पुरुषों से अधिक दर्ज की गई, जिसके बाद पुरुषों में मृत्युदर प्राय: अधिक दर्ज की गई। ये परिणाम संकेत देते हैं कि 35 वर्ष की आयु तक महिलाओं को परिवार में अपनी निम्न स्थिति के अनेक जोखिमों, कष्टों का सामना करना पड़ता है, जैसे, उपेक्षा, भेदभाव इत्यादि। इनके अलावा जनन-काल के दौरान उन्हें अतिरिक्त आपदाएं उठानी पड़ती हैं। मगर उनकी उम्र 35 वर्ष होने के बाद उनकी स्थिति में सुधार आ सकता है। संतानोत्पत्ति के दायित्व से वे मुक्त हो चुकी होती हैं। फिर कम उम्र में विवाह हो जाने के कारण तब तक वे सास और दादी बन चुकी होती हैं। ये सभी कारक इन प्रौढ़ महिलाओं की परिवार के संसाधनों तक अधिक पहुंच और उन्हें अधिक निर्णयकारी अधिकार हासिल होने का संकेत देते हैं। यह संभव है कि परिवार में उनकी स्थिति में ये परिवर्तन 35 वर्ष की आयु के बाद उनकी निम्न मृत्युदर में प्रतिबिंबित होते हैं। यहां यह भी दोहराए जाने की जरूरत है कि जैविकी की दृष्टि से महिलाएं पुरुषों से अधिक शक्तिशाली हैं। यहां यह बात भी नोट की जानी चाहिए कि विश्व के अधिकांश देशों में लगभग सभी आयु वर्गों में मृत्युदर पुरुषों में महिलाओं से अधिक है। दक्षिण-एशियाई देश इसका अपवाद हैं। जीवनकाल में महिलाओं की उच्च मृत्यु दर होने के कारण भारत भी इस पैटर्न में सही बैठता है।

4.9 शिशु और बाल मृत्यु-दर

4.9.1 शिशु मृत्यु-दर के अध्ययन का महत्त्व

किसी भी देश या उसके अंचलों की मृत्यु-दर के विश्लेषण में शिशु मृत्यु-दर महत्वपूर्ण है, क्योंकि मनुष्य के जीवन का पहला वर्ष बड़ा ही महत्वपूर्ण और आपदाओं से भरा रहता है। ये आपदाएं या जोखिम जन्म के पहले कुछ घंटों तक सबसे अधिक होते हैं। जीवन के पहले के कुछ दिनों और फिर कुछ महीनों तक ये आपदाएं बनी रहती हैं। शिशु मृत्युदर के अध्ययन में शिशु मृत्यु को मृत्यु के समय शिशु की आयु के आधार पर श्रेणियों में बांटा गया है। पहली श्रेणी में जीवन के पहले चार हफ्तों में हुई मृत्यु आती है जिसे हमें नवजात मृत्यु-दर कहते हैं। (जीवन के पहले चार हफ्ते नवजात काल में आते हैं।) शिशुओं के चार हफ्ते पूरे कर लेने के बाद मगर एक वर्ष की आयु पूरा करने से पहले होने वाली मृत्यु को नवजातोत्तर मृत्युदर की श्रेणी में रखा जाता है।

4.9.2 शिशु मृत्यु-दर मापन

शिशु मृत्यु-दर के आकलन के लिए प्राय: एक पचांग वर्ष में दर्ज शिशुओं की मृत्यु संख्या (एक वर्ष की आयु से छोटे बच्चों की मृत्यु) को उसी वर्ष में दर्ज हुए सप्राण जन्मों की संख्या से भाग देकर उसे 1000 से गुणा किया जाता है। नवजात शिशु मृत्यु-दर दर का आकलन करने के लिए अंग्र में जीवन के पहले चार हफ्ते में होने वाली शिशु मृत्यु की

संख्या को शामिल कर वही विधि दोहराई जाती है। नवजातोत्तर शिशु मृत्यु-दर के आकलन के लिए अंश में 28 और 365 दिनों के बीच होने वाली मृत्यु की संख्या को मिलाया जाता है।

4.9.3 शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करने वाले कारक

शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करने वाले कारकों को अंतर्जात और बहिर्जात कारकों में बांटा गया है।

क) अंतर्जात कारक: ये कारक स्त्री के गर्भाशय में भ्रूण की रचना से जुड़े हैं और इसलिए मुख्यत: जैविक हैं। भ्रूण और नवजात शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करने वाले अंतर्जात कारक इस प्रकार हैं: मां की आयु, जन्म का क्रम, जन्मों के बीच अंतर की अवधि, अपरिपक्वता, जन्म के समय शारीरिक भार और बहुल जन्म।

ख) बहिर्जात कारक: छूत के रोग, दोषपूर्ण खान-पान, स्वच्छता की कमी और पर्यावरण संबंधी अन्य स्थितियां जैसे भीड़-भाड़, गंदगी, धूप और ताजी हवा की कमी। ये सभी शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करने वाले बहिर्जात कारक हैं। इनके अतिरिक्त सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से विशेष कर कन्या शिशु की जानबूझकर उपेक्षा को भी एक बहिर्जात कारक माना जा सकता है।

4.9.4 भारत में शिशु मृत्यु-दर

आयु संबंधी कुछ आधी अधूरी और गलत सूचना के बावजूद राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण 1992-93 और सैम्पल रजिस्ट्रेशन स्कीम (एसआरएस) ने जो शिशु मृत्यु-दर (आईएमआर) बतायी हैं वे एक दूसरे से लगभग पूरी तरह से मेल खाती हैं। एसआरएस के अनुसार 1992 में शिशु मृत्यु-दर प्रति 1000 सप्राण जन्मों पर 79 थी, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की शिशु मृत्यु-दर (53) से कहीं ज्यादा मृत्यु-दर (85) दर्ज हुई थी।

भिन्न राज्यों की शिशु मृत्यु-दर में भारी अंतर देखने में आता है जो मिजोरम में 15 तो उड़ीसा में 112 है। राष्ट्रीय औसत से अधिक शिशु मृत्यु-दर वाले अन्य राज्य उत्तर प्रदेश (100), बिहार और आसाम (89) तथा मध्य प्रदेश (85) हैं।

महिलाओं की स्थिति के सूचक के रूप में शिशु मृत्यु-दर के अध्ययन के संदर्भ में एक बात ध्यान रखे जाने योग्य यह है कि शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में बालिका शिशु मृत्यु-दर बालक शिशु से हालांकि कम है लेकिन जब हम नवजातोत्तर मृत्यु-दर पर विचार करते हैं तो हमें उसमें अंतर नजर आते हैं। बालिकाओं में नवजात शिशु मृत्यु-दर तो कम है मगर उनमें नवजातोत्तर मृत्यु-दर पुरुषों से अधिक है। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के लिए यही बात लागू होती है। मगर बालक और बालिका नवजातोत्तर मृत्यु-दर के बीच अंतर शहर से ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा गहरा है।

इन परिणामों को कुछ महत्ता दिए जाने की जरूरत है। यह संभव है कि नवजात काल (जीवन के पहले चार हफ्तों) में शिशु की उत्तरजीविता के निर्धारण में अंतर्जात या जैविकी कारक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हों। मादा शिशु नवजात काल में लाभकारी स्थिति में रहता है क्योंकि वह जैविकी दृष्टि से नर शिशु से शक्तिशाली है। नवजातोत्तर काल (पहले चार हफ्ते और पहली वर्षगांठ के बीच की अवधि) के दौरान सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और वातावरणीय परिस्थितियों से जुड़े बहिर्जात कारक हावी हो जाते हैं। इस अवधि के दौरान मादा शिशु में मृत्यु-दर नर शिशुओं से अधिक होती है। मादा शिशुओं को नाना

प्रकार की उपेक्षाओं का शिकार बना दिया जाता है, जैसे अपर्याप्त स्तन पान, आवश्यकता के समय मात्रा और गुणवत्ता में अपर्याप्त संपूरक पोषण, संक्रामक रोगों के प्रति उनमें प्रतिरक्षण की कमी, चिकित्सकीय उपचार देने में देरी या कोई चिकित्सकीय उपचार प्रदान नहीं किया जाना। ये तो कुछ गिनी चुनी आपदाएं हैं जो मादा शिशु या कन्या को अपने शैशव काल में झेलनी पड़ती हैं। जन्म के समय नर शिशु पर मादा शिशु की जैविक श्रेष्ठता नवजातोत्तर काल में जारी नहीं रहती जिससे इस अवधि में उनमें मृत्यु-दर अधिक हो जाती है।

4.9.5 भारत में बाल मृत्यु-दर

बाल मृत्यु-दर का तात्पर्य पहले और पांचवी वर्षगांठ के बीच बच्चों की मृत्यु है। लड़कियों और लड़कों के बीच अंतर का अध्ययन करने पर पता चलता है कि लड़कियों में बाल मुत्यु-दर (42) लड़कों (29) से अधिक है। इस तरह का अंतर शहर और देहात दोनों क्षेत्रों में है मगर शहर की तुलना में यह अंतर ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है।

4.9.6 मातृ मृत्यु-दर

गर्भवस्था और शिशु जनन से जुड़े कारणों के चलते महिलाओं में होने वाली मृत्यु (मातृ मृत्यु-दर) पर आंकड़े जुटाना कठिन है। यही कारण है कि हाल के समय तक मातृ मृत्यु-दर पर राष्ट्रीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते थे। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) 1992-93 में ऐसा ही एक प्रयास किया गया था। इनमें कई खामियां हैं, मगर इसके बावजूद भी हम इन आंकड़ों का यहां उल्लेख कर रहे हैं क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर एकमात्र यही आंकड़े उपलब्ध हैं।

वर्ष 1992-93 में हुए राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार भारत में मातृ-मृत्यु-दर प्रति 1,00,000 सप्राण जन्मों में 437 है। इस सर्वेक्षण के अनुसार भारत में शिशु जनन से जुड़े कारणों के चलते हर वर्ष एक लाख महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। देहाती इलाकों में मातृ मृत्यु-दर शहरी क्षेत्रों (मातृ मुत्यु-दर 397) से अधिक (448) है।

इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। सर्वेक्षण के इन परिणामों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सभी महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान शिशु जन्म-पूर्व देखभाल की सुविधा सुनिश्चित कराना कितना महत्वपूर्ण है। यहीं नहीं सभी प्रसव स्वच्छ-स्वस्थ स्थितियों में प्रशिक्षित व्यक्ति और हो सके तो चिकित्सक की सहायता से ही कराए जाएं।

4.10 सारांश

इस प्रकार भारतीय महिलाओं की जनसांख्यिक संरचना अनेक सूचकों के संदर्भ में पुरुषों की तुलना में भारतीय नारी की निम्न स्थिति को प्रतिबिंबित करती हैं। भारत में स्त्री-पुंजाति अनुपात पुरुषों के अनुकूल है जबकि अधिकांश देशों में स्थिति इसके विपरीत है। महिलाओं की विवाह आयु कम और उनमें जनन-दर अधिक है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं में आयु संभाविता थोड़ी अधिक अवश्य देखने में आती है हालांकि जैविकीय दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होने के कारण उन्हें पुरुषों से अधिक दीर्घायु होना चाहिए था। नवजातोत्तर शिशु मृत्यु-दर और बाल मृत्यु-दर दोनों ही महिलाओं में पुरुषों से अधिक हैं, जिसमें जैविक कारकों के बजाए सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरण संबंधी कारकों की भूमिका अधिक है। मातृ मृत्यु-दर से पता चलता है कि गर्भावस्था और शिशु-जन्म से जुड़े कारणों के चलते भारत में प्रतिवर्ष एक लाख महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। इन सभी सूचकों के

मामले में शहरी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाओं की स्थिति अधिक चिंताजनक है। तिस पर इनमें भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अनपढ़ महिलाओं की स्थिति सबसे अधिक चिंताजनक है।

4.11 शब्दावली

स्त्री-पुंजाति अनुपात	:	प्रति 100 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या या प्रति 100 महिलाओं पर पुरुषों की संख्या।
जननदर	:	किसी जन समूह का वास्तविक प्रजननात्मक कार्य जिसका संबंध सिर्फ जीवित या सप्राण जन्मों से है जिसमें बच्चे का जन्म जीवन के लक्षणों, जैसे रोना, के साथ हो।
बांझपन	:	इसको प्राथमिक बांझपन भी कहा जाता है। जिसका तात्पर्य है कि एक महिला ने ऐसे बच्चे को जन्म न दिया हो जिसमें जीवन चिह्न यथा रोना आदि दिखाई दिया हो।
निरंतर पैदा होने वाले बच्चे	:	जननदर का मापन, जिसमें विभिन्न आयु वर्गों में महिलाओं को होने वाले बच्चों की संख्या को लिया जाता है।
आयु-संभाविता	:	वर्षों की संख्या जहां तक किसी व्यक्ति के जीवित रहने की संभावना हो।
शिशु मृत्यु-दर	:	एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु।
नवजात शिशु मृत्यु-दर	:	जीवन के पहले चार हफ्ते में बच्चों की मृत्यु।
नवजातोत्तर मृत्युदर	:	चार हफ्ते पूरे कर लेने वाले बच्चों की मृत्यु मगर जो एक वर्ष पूरा जीवित नहीं रह पाऐ हों।

4.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

टुवार्ड्स इक्वैलिटी: रिपोर्ट ऑव द कमेटी ऑन द स्टैटस ऑव इंडियन वीमेन गडायिली, रेहाना (संपा) 1988 वूमेन इन इंडियन सोसाइटी : ए रीडर, नई दिल्ली : सेज।

इकाई 5 महिलाएं और कार्य

रूपरेखा

5.0 लक्ष्य और उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 महिला कार्य का मुद्दा
5.3 महिला कार्य: कुछ सैद्धांतिक संरूपण
  5.3.1 नव-क्लासिक (कालपयी) सिद्धांत
  5.3.2 गृह अर्थव्यवस्था का सिद्धांत
  5.3.3 श्रम बाजार विभाजन का सिद्धांत
  5.3.4 मार्क्सवादी ढांचा
5.4 महिला रोजगार के आंकड़ों में कमियां और पूर्वाग्रह
  5.4.1 आंकड़ों के मुख्य स्रोत
  5.4.2 आंकड़ों की सीमाएं
5.5 भारत की श्रम शक्ति में महिलाएं
  5.5.1 विभिन्न सेक्टरों में श्रमिकों का वितरण
5.6 राज्य का हस्तक्षेप और महिला रोजगार
  5.6.1 महिलाओं व उनकी कार्य दशा पर रिपोर्ट
  5.6.2 सीधा हस्तक्षेप
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम महिलाओं और जो काम वे करती हैं उनकी चर्चा करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- महिलाओं के कार्य के स्वरूप का गहराई से विश्लेषण कर सकेंगे;
- महिलाओं और उनके कार्य की व्याख्या करने वाले कुछ सिद्धांतों की रूपरेखा समझ सकेंगे;
- महिलाओं के कार्य की संकल्पनात्मक तथा संक्रियात्मक समस्याओं का मूल्यांकन कर सकेंगे; और
- कार्य सहभागिता तथा महिलाओं और कार्य की दिशा में राज्य द्वारा की गई कुछ पहलों की चर्चा कर सकेंगे।

इस इकाई का मुख्य विषय महिलाओं के कार्य को ठोस संक्रियात्मक रूप में परिवर्तित करने में आने वाली कठिनाइयां। हमें आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आप महिलाओं के कार्य के मुद्दे को समलोचनात्मक दृष्टि से देखेंगे और उसकी महत्ता समझेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में महिलाओं और जिन कामों में वे लगी रहती हैं उनके बारे में चर्चा की जाएगी। महिलाओं की दिनचर्या घर के काम-काजों से आरंभ होती है जिसमें दूर-दूर से पानी, लकड़ी लाना जैसे काम भी शामिल हैं, इनके अलावा वे दिनभर खेतों में भी काम करती हैं या फिर वे इधर-उधर छुट-पुट कामों में व्यस्त रहती हैं। मगर आर्थिक मुद्रा की दृष्टि से महिलाओं के कार्यों को कोई विशेष महत्व नहीं मिलता। स्त्री घर में जो सारे काम-काज करती है उसे कोई भाव नहीं दिया जाता। बल्कि उसे वास्तविक कार्य का दर्जा देने के बजाए जिससे कि उसका मूल्यांकन मुद्रा में किया जा सके, उसके कार्य को उसका दायित्व कह कर अनदेखा कर दिया जाता है। स्त्री के काम के इस पहलू को अभी हाल-फिलहाल तक प्रकाश में नहीं लाया गया था।

इस इकाई में हम महिलाओं के कार्य के मुद्दे से जुड़े पहलुओं के बारे में बात करेंगे। महिलाओं के कार्य का विश्लेषण करने वाले कुछ सिद्धांतों के प्रकाश में उनकी चर्चा करेंगे। इसमें हम कार्य में महिलाओं की सहभागिता पर भी नजर डालेंगे तथा मौजूदा रुझानों का विश्लेषण करते हुए यह जानने का प्रयास करेंगे कि समाज में महिलाओं का दर्जा क्या है। इस इकाई के अंत में हम महिलाओं और कार्य में उनकी सहभागिता के संदर्भ में राज्य द्वारा की गई पहलों को संक्षेप में चर्चा करेंगे।

5.2 महिला कार्य का मुद्दा

महिलाओं के काम को देखने के दृष्टिकोण में पिछले तीन दशकों से भारी बदलाव आए हैं। 1970 के दशक से पहले घर-परिवार को एक समांगी, समरूप इकाई माना जाता था जिसमें पुरुष प्रधान जीवीकोपार्जक (रोटी कमाने वाला) तो स्त्री घर की देखभाल करने वाली होती थी। ईस्टर बोसरप (1983) के प्रवर्तनकारी शोधकार्य ने अंततः महिलाओं के काम को महत्ता प्रदान की। इस शोध कार्य के फलस्वरूप सबसे महत्वपूर्ण बदलाव यह आया कि इसने आंकड़ों के संकलन की विधि में क्रांति ला दी। परिणामत महिलाओं की कार्य-सहभागिता में भारी वृद्धि हुई। जैसा कि अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के आकलन (1985) बताते हैं, अब यह बात मान ली गई है कि महिलाएं विश्व की कुल श्रम शक्ति का एक महत्वपूर्ण, बड़ा हिस्सा हैं। इसके अलावा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर नीति निर्माताओं के हल्कों में यह ज्यादा से ज्यादा महसूस किया जाने लगा है कि आर्थिक क्रिया-कलापों में महिलाओं की भागीदारी से जनसंख्या वृद्धि और गरीबी दोनों में कमी आती है। इसके अलावा शिशु उत्तरजीविता तथा विकास में भी वृद्धि होती है।

भारत समेत कई विकासशील देशों में महिलाओं के कार्य के मुद्दे में फिर रुचि बढ़ रही है, इनमें से कई देशों में विश्व-बैंक-अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा प्रायोजित ढांचागत समायोजन नीतियां (स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट पॉलिसी) को कार्यान्वित किया जा रहा है। इन नीतियों का उद्देश्य समाज में आर्थिक संबंधों की मूल प्रकृति में परिवर्तन लाकर बाजारोन्मुखी बनाना है। इन नीतियों से अपेक्षा की जा रही थी इनसे विकासशील अर्थ-व्यवस्थाओं को उच्च वृद्धि के मार्ग पर बढ़ाने से गरीबी में भारी कमी आ जाएगी। लेकिन यह आशा धूमिल हो गई है क्योंकि इन नीतियों के चलते संगठित क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ी है जिससे गरीबों की दशा और निराशाजनक हो गई है। इसके फलस्वरूप महिला कामगारों या श्रमिकों की कार्यगत स्थितियां पुरुष कामगारों से अधिक दुष्प्रभावित हुई हैं, पुरुष और महिला श्रमिकों में पारिश्रमिक या मजदूरी विषमताएं बढ़ी हैं, सामाजिक क्षेत्र में खर्च में की जा रही कटौती से बेरोजगारी बढ़ रही है (हिरवे, 1999)।

यहां यह जानकारी भी महत्वपूर्ण है कि ऐसी आर्थिक परिघटनाओं का संगठित व असंगठित क्षेत्र में महिला और पुरुष कार्य-सहभागिता पर बिल्कुल भिन्न प्रभाव पड़ता है। तिस पर गरीबी और महिला कार्य-सहभागिता के बीच जो जटिल अंर्तसंबंध है उसके कारण महिलाओं को श्रम-बाजार के सबसे निचले क्रम में प्रवेश करने के लिए विवश होना पड़ता है। दूसरे शब्दों में श्रम-बाजार की प्रक्रियाएं क्षेत्रगत रोजगार, वेतन इत्यादि मामलों में सामाजिक-लिंग भेददर्शी परिणाम उत्पन्न करती हैं। यहां हम महिलाओं के कार्य की जटिलताओं और उनके नियोजन या रोजगार की सकल्पना को समझने के लिए इस मुद्दे से जुड़े पहलुओं का विश्लेषण करेंगे।

इस अध्ययन सामग्री में सबसे पहले महिला और उनके कार्य से संबंधित मुख्य सैद्धांतिक मतों का विश्लेषण किया गया है। तत्पश्चात महिलाओं और उसके कार्य के संबंध में मुख्य सैद्धांतिक सूत्रों की चर्चा दी गई है। उसके बाद महिला रोजगार से जुड़े आंकड़ों में पाए जाने वाले अंतर और पूर्वाग्रहों के बारे में बताया गया है। इसके आगे भारत की कुल श्रम शक्ति में महिलाओं की वास्तविक संख्या पर चर्चा करते हुए लिंगों (स्त्री-पुरुष) के बीच वेतन के अंतर का विश्लेषण किया गया है। तत्पश्चात, भारत में महिलाओं में उत्पादकतामूलक रोजगार को बढ़ावा देने के लिए राज्य की ओर से किए जा रहे हस्तक्षेपों की प्रकृति का विवेचन किया गया है। अंत में सार रूप में निष्कर्ष दिए गए हैं।

5.3 महिला कार्य : कुछ सैद्धांतिक संरूपण

स्त्रियों के कार्य से संबंधित मुख्य प्रश्नों से अवगत कराने वाले प्रमुख सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों का सिंहावलोकन करना आवश्यक है ताकि विश्व और भारत में महिला श्रम सहभागिता रुझान, प्रकृति और प्रारूप की जटिलताओं को समझा जा सके। "महिला कार्य" को समझने, उसकी व्याख्या के लिए कई सैद्धांतिक मॉडल बनाए गए हैं, जिन्हें हम मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं: 1) नवक्लासिक सिद्धांत, 2) विभाजन सिद्धांत और 3) नारी-अधिकारवादी सिद्धांत।

5.3.1 नव-क्लासिक (कालपयी) सिद्धांत

नव-क्लासिक सिद्धांतकारों का मानना है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों को पारिश्रमिक या मजदूरी उनके सीमांत उत्पाद के मूल्य के आधार पर दी जाती है। दूसरे शब्दों में इन सिद्धांतकारों के अनुसार पुरुष और महिला द्वारा किए जाने वाले कार्य प्रारूप में भिन्नता तथा दोनों लिंगों (स्त्री-पुरुष) के बीच मौजूदा पारिश्रमिक अंतर की व्याख्या श्रमिकों के मौजूदा उत्पादन स्तर से की जा सकती है। इनका मानना है कि परिवार में महिलाओं की प्रजनन और शिशुओं की देखभाल की भूमिका, शारीरिक शक्ति, शिक्षा और प्रशिक्षण के स्तर, उत्पादक कार्य के घंटों की संख्या, अनुपस्थिति ये सब श्रमिक उत्पादकता को प्रभावित करते हैं और यही पुरुष-स्त्री के पारिश्रमिक अंतर के रूप में अभिव्यक्त होता है

5.3.2 गृह अर्थव्यवस्था का सिद्धांत

इस सिद्धांत का एक और परिवर्ती रूप गृह अर्थव्यवस्था का सिद्धांत है, जिसे महिला कामगारों की दशा की व्याख्या करने तथा समझने के लिए खूब प्रयोग किया जाता है। इस सिद्धांत की धुरी घर-परिवार है और यह कहता है कि सभी घर परिवार गृह उत्पादन और पारिश्रमिक कार्य के बीच विवेकपूर्वक समय विभाजित करते हैं। घर-परिवार समय सीमा के अनुसार अपनी उपयोगिता को अधिकतम बढ़ाने का प्रयास करते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसा व्यवहार श्रम बाजार में महिला सहभागिता को प्रभावित करता है क्योंकि परिवार अपने संसाधनों

(समय और धन) को विभिन्न सदस्यों के बीच बांटता है। उसका परिणाम स्पष्टतया यह निकलता है कि बालिका पर अल्प पूंजी निवेश होता है क्योंकि परिवार कार्यों या दायित्वों का तर्क के आधार पर अपने सदस्यों में उनकी इन दायित्वों का निर्वाह करने की क्षमता और घर से बाहर इन कार्यों के लिए कौन सदस्य कितना पारिश्रमिक या मजदूरी पाएगा इन दोनों को ध्यान में रखते हैं बांटता है या उन्हें सौंपता है। इसलिए ऐसी दशा में जब स्त्री-पुरुष दोनों घरेलू कार्यों का निर्वाह समान दक्षता से कर रहे हों मगर जहां पुरुषों को घर से बाहर उत्पादनमूलक रोजगार में अधिक मजदूरी मिल रही हो तो पुरुषों को प्रशिक्षित किया जाता है और उनसे परिवार उत्पादक रोजगार करने की अपेक्षा करता है। इस सिद्धांत का आगे कहना है कि परिवार की आमदनी बढ़ने पर महिलाएं घर-परिवार और बच्चों की देखभाल के दायित्वों से मुक्त हो जाएंगी, तब वे भी उत्पादक रोजगार करने लगेंगी (शर्मा और सिंह, 1982)।

नव-क्लासिक सिद्धांत की आलोचना मुख्यत: उनकी इस अवधारणा के लिए की जाती है कि स्त्री का मुख्य भूमिका एक मां और पत्नी की है और इसलिए उत्पादक रोजगार में उसकी भागीदारी सविराम आवश्यकतापूरक की है। यह सिद्धांत पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाओं के अंतर की बात तो करता है लेकिन उसके कारणों की व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता। इसके अलावा यह सिद्धांत विकासशील देशों में महिलाओं के जीवन को समझने-समझाने में भी असमर्थ है क्योंकि इन देशों की निर्धन महिलाओं को अपने उत्पादक रोजगार को घरेलू कार्यों और बच्चों की देखभाल के दायित्वों के निर्वाह के साथ-साथ करना पड़ता है। वहीं नव-क्लासिक सिद्धांत के अनुसार महिलाएं अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण श्रम शक्ति में सविराम कार्य करती हैं। इसीलिए श्रम बाजार की विखंडित या विभाजित प्रकृति का विश्लेषण एक-आयामी परिप्रेक्ष्य से करने के लिए नव-क्लासिक सिद्धांत की आलोचना की जाती है। इसके इस तरह के एकतरफा विश्लेषण का एक बड़ा कारण इसका यह मानकर चलना है कि श्रम बाजार में महिलाओं और पुरुषों दोनों को समान अवसर उपलब्ध हैं (आर्मस्ट्रांग और आर्मस्ट्रांग, 1990)।

5.3.3 श्रम बाजार विभाजन का सिद्धांत

ये सिद्धांत श्रम बाजार को संस्थागत अवरोधों द्वारा खंडों में विभाजित मानकर चलते हैं। द्वैत श्रम बाज़ार का यह सिद्धांत बाजार को बुनियादी तौर पर दो सेक्टरों या क्षेत्रों में बंटा मानकर चलता है। प्राथमिक सेक्टर के कार्यों में अपेक्षतया बेहतर पारिश्रमिक और कार्यगत स्थितियां, उन्नति के अवसर तथा नौकरी की सुरक्षा ये सब विशेषताएं पाई जाती हैं। इसके विपरीत द्वितीयक सेक्टर एक तरह से बंद गली है जहां उन्नति की कोई संभावनाएं नहीं है और पारिश्रमिक या मजदूरी भी कम मिलती है तथा कार्यगत स्थितियां खराब हैं और नौकरी कम सुरक्षित है। प्राथमिक सेक्टर से द्वितीयक सेक्टर में गमन लगभग असंभव सा है क्योंकि ये दोनों क्षेत्र एकदम भिन्न श्रम आपूर्ति पर चलते हैं।

नव-क्लासिक सिद्धांत के मानव-पूंजी दृष्टिकोण के विपरीत यह सिद्धांत कहता है कि श्रम के स्त्री-पुरुष विभाजन का कारण घटिया विकल्प नहीं बल्कि विकल्पों की कमी है। दोनों सिद्धांतों में यह अंतर है कि द्वैत श्रम बाजार मत में यह नहीं माना गया है कि विवेकपूर्ण विकल्प और मुक्त बाजार शक्तियां भी विद्यमान हैं। मगर नव-क्लासिक सिद्धांत की तरह श्रम बाजार विभाजन सिद्धांत की यह कमी है कि यह विश्लेषणात्मक होने के बजाए दर्शनात्मक है। यह सिद्धांत हालांकि विभिन्न प्रकार के श्रम बाजारों के बारे में बताता है मगर वहीं यह स्पष्ट नहीं करता है कि आखिर महिलाएं विशेष प्रकार के कामों या नौकरियों में ही क्यों रखी जाती हैं। यह सिद्धांत लिंग-पार्थक्य को प्रदत्त के रूप में देखता

है। इसके अलावा यह सिद्धांत यह स्पष्ट नहीं करता है कि आखिर मजदूरी और व्यवसायों में पुरुष-महिला विभाजन महिलाओं की इसमें सतत सहभागिता के बावजूद भी अक्षुण्ण क्यों बना हुआ है। विभाजन सिद्धांत के कुछ आमूल-परिवर्तनवादी रूप इन पहेलियों को बूझते हैं मगर वे भी अमूमन यह स्पष्ट नहीं कर पाते हैं कि महिलाएं आखिर द्वितीयक क्षेत्र या सेक्टर में ही क्यों जा पहुंचती हैं और फिर एक ही व्यवसाय में उन्हें पूर्व-निश्चित खांचों में ही क्यों रखा जाता है।

इन दोनों सिद्धांतों की कमजोरी यह है कि इनकी व्याख्याओं का आधार यह धारणा है कि पुरुषों और महिलाओं का पेशागत या व्यावसायिक पार्थक्य कार्यस्थल की कार्यात्मक वास्तविकता जैसे लंबा कार्य-दिवस और भारी काम तथा पुरुषों और महिलाओं के बीच भूमिका के विभेदन के कारण होता है। भूमिका का विभेदन या विभाजन पुरुषों को तो बाहरी उत्पादक वैतनिक रोजगार और महिलाओं को घर संभालने, बच्चे को जन्म देने और उनकी देखभाल का कार्य सौंपता है (आर्मस्ट्रौंग एण्ड आर्मस्ट्रौंग, 1990)

5.3.4 मार्क्सवादी ढांचा

इनमें से कई सिद्धांत 1960 के दशक में गढ़े गए थे और इनकी उत्पत्ति का मूल मार्क्सवादी ढांचे में है। ये सिद्धांत इस धारणा पर चलते हैं कि समाज मूलतः असमान है मगर उसमें बदलाव की संभावना है। ये सिद्धांत असमानता की सामाजिक रचना और लोगों के दैनिक जीवन के अंतर्विरोध पर जोर देते हैं। मार्क्सबादी नारी-अधिकारवादी वर्गीय विश्लेषण की युक्ति लेकर चलते हैं। इनके अनुसार स्त्री की निम्न स्थिति का मुख्य कारण सार्वजनिक और निजी कार्यक्षेत्र के पार्थक्य में, एक श्रेणी के रूप में घरेलू इकाई के सीमांतीकरण (यानी उसे हाशिए पर रखने) में गहरा विश्वास है और इसलिए एक सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक इकाई के रूप में इसका विश्लेषण किया जा सकता है। उनका मानना है कि श्रम बाजार, और घर और परिवार में महिलाओं की अधीनस्थ, निम्न स्थिति एक-दूसरे से जुड़े हैं। यह ऐसी सामाजिक प्रणाली का फल है जो पुरुष के पक्ष में ढली हुई है और जिसमें नारी-पुरुष के अधीन है।

इन नारी-अधिकारवादियों का मत है कि पूंजीवाद और पितृसत्ता दोनों के कारण मिलकर श्रम बाजार के पुरुष और महिला विभाजन तथा इसके विभिन्न सदस्यों के बीच दक्षता और पारिश्रमिक अंतर आ जाता है। नारी अधिकारवादी सिद्धांतकार मार्क्सवादी ढांचे के आधार पर असमानताओं की सामाजिक प्रकृति तथा व्यक्ति के दैनिक जीवन के अंतर्विरोधों पर बल देते हैं।

जरा सोचिए — 1

1) नव-क्लासिक सिद्धांत किस धारणा पर महिला और कार्य की व्याख्या देते हैं?

2) श्रम बाजार विभाजन सिद्धांत की प्रमुख सीमाएं क्या हैं?

3) आपके विचार में कौन सा सिद्धांत महिलाओं और कार्य की व्याख्या वास्तविकता के समीप करता है?

5.4 महिला रोजगार के आंकड़ों में कमियां और पूर्वाग्रह

यूं तो 1930 दशक के आरंभ से ही आर्थिक क्रिया-कलापों में महिलाओं की सहभागिता की व्यापकता को मापने के लिए एक मानक विधि विकसित करने का व्यवस्थित प्रयास किया जा रहा है, मगर ऐसी विधि विकसित करने में सबसे मुख्य समस्या महिलाओं के कार्य की

जटिल प्रकृति से उत्पन्न होती है। महिलाएं अपने घर में कई भूमिकाएं एक साथ निभाती हैं। इसके फलस्वरूप अनुसंधानकर्ताओं या अध्ययनकार्य में शामिल की जाने वाली महिलाओं की प्रतिक्रियाओं के अनुसार आर्थिक-क्रिया कलापों में उनकी सहभागिता अलग-अलग पाई जाती है। फिर अध्ययन में शामिल की जाने वाली महिलाएं यह नहीं जानती हैं कि उनके कौन-कौन से क्रिया-कलाप काम की परिधि में आते हैं (विसारिया, 1999)। बहरहाल रोजगार पर आंकड़े जुटाने वाले विभिन्न स्रोतों की ओर से अपने आंकड़ों को सरल और कारगर बनाने का निरंतर प्रयास हो रहा है ताकि महिला रोजगार पर मौजूदा आंकड़ों को विस्तृत किया जा सके।

5.4.1 आंकड़ों का मुख्य स्रोत

रोजगार संबंधित आंकड़ें के विशेषकर जो श्रमशक्ति के विभिन्न घटकों की जानकारी देते हैं, दो मुख्य स्रोत हैं: जनगणना और नमूना सर्वेक्षण (सैम्पल सर्वे)। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण संगठन (एन.एस.एस.ओ.) के 1970 दशक के आरंभ में शुरू किए गए पंचवर्षीय नमूना सर्वेक्षण तथा जनगणना संगठन द्वारा समग्र रोजगार और विशेषकर महिला रोजगार के बारे में वृहद पैमाने पर आंकड़े जुटाए जाते हैं। केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन (सेन्ट्रल स्टैस्टीकल ऑरगनाइजेशन या सीएसओ) की आर्थिक जनगणना जैसे अन्य स्रोत भी गैर-कृषि क्षेत्र पर आंकड़े जुटाते हैं।

सीएसओ के वार्षिक औद्योगिक सर्वेक्षण पंजीकृत फैक्टरी सेक्टर में मजदूरी, अतिरिक्त मूल्य और उत्पादन पर आंकड़े उपलब्ध करता है। इसके अलावा सीएसओ और एनएसएसओ समय-समय पर नियमित रूप से अपंजीकृत सेक्टर पर भी आंकड़े जुटाते हैं। अंतत:- श्रम विभाग के व्यावसायिक मजदूरी सर्वेक्षण पंजीकृत विनिर्माण सेक्टर में मजदूरी की मौजूदा दरों तथा प्रतिदिन आमदनी के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। (सूर्यनारायाण, 1999)।

5.4.2 आंकड़ों की सीमाएं

आंकड़े संग्रह करने के लिए योजना और उसकी रूपरेखा बनाते समय तथा संकलित आंकड़ों के संसाधन, सारणीयन और प्रसारण वाले चरण में किए गए निर्णयों के फलस्वरूप उनमें कई कमियां रह जाती हैं। महिला रोजगार के मामले में सबसे बड़ी समस्या मुख्यत: कार्य की व्याख्या और एक श्रमिक या कामगार को परिभाषित करने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली विधियों से उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए जनगणना की कार्य की परिभाषा के दायरे में घर के उपयोग के लिए अपनी ही जमीन में खेती-बाड़ी करना तो शामिल है मगर वहीं ऐसे क्रिया-कलाप इसके दायरे से बाहर हैं अपने उपभोग के लिए लकड़ी पानी आदि सामग्रियां जुटाना इत्यादि। इसी प्रकार एक समस्या इसलिए भी खड़ी होती है कि महिलाएं घर में और घर के बाहर दोनों जगह और कभी-कभार अपने खेतों या पारिवारिक उद्यम से बाहर भी अवैतनिक काम या बेगार करती हैं। फिर महिलाओं के काम की प्रकृति के कारण भी एक और बड़ी समस्या उठती है: महिलाएं छ: महीने से अधिक समय की निर्दिष्ट अवधि तक किसी एक आर्थिक गतिविधि में शायद ही लगी रहती हैं कि जिससे उन्हें जनगणना में मुख्य श्रमिकों की श्रेणी में रखा जा सके। एनएसएसओ भी एक व्यक्ति को तभी प्रधान श्रमिक की श्रेणी में रखता है जब वह वर्ष में लगभग छ: महीने की अवधि तक काम करे। यानी महिलाओं को तभी श्रमिकों का दर्जा मिल सकता है। मगर यह अवधि उससे अधिक है जितने तक वे उपलब्ध रह पाती हैं। हालांकि असंगठित विनिर्माण-क्षेत्र में महिलाएं बड़ी भारी संख्या में मजदूरी कर रही हैं। लेकिन उनके बारे में आंकड़े सुलभ नहीं हैं। संगठित विनिर्माण-क्षेत्र

(मैनुफैक्चरिंग सेक्टर) में भी मजदूरी, बोनस और आमदनी के मद्देनजर महिला रोजगार के दायरे और गुणवत्ता के बारे में आंकड़े बहुत कम उपलब्ध हैं।

सरकारी आंकड़ों में महिलाओं के कार्य की अदृश्यमानता या उसके लोप का कारण मुख्यत: ऐसी अवधारणाओं और विधियों का प्रयोग है जो महिलाओं के कार्य का सही मूल्यांकन करने में असमर्थ हैं। इसका एक और कारण आंकड़ा संकलनकर्ताओं द्वारा आंकड़ों के संकलन में अपर्याप्त प्रयास भी हैं।

5.5 भारत की श्रम-शक्ति में महिलाएं

राष्ट्रीय श्रम आयोग की अनेक रिपोर्टों तथा अनेक अध्ययनों ने प्रभावशाली तरीके से भारतीय अर्थव्यवस्था में महिला श्रमिकों की महत्ता और योगदान को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रदर्शित किया हैं। (भारत सरकार, 1975; अग्रवाल, 1981; शर्मा और सिंह 1992; पपोला और शर्मा, 1999)। मगर साथ में यह भी स्पष्ट हैं कि अपने योगदान के बावजूद महिलाओं का कार्य और श्रम आंकड़ों के ढेरों और समाज की दृष्टि में उत्पादक रोजगार के आकलन दोनों में कहीं भी 'दृष्टिगोचर' नहीं होता। यानी वह दिखाई नहीं देता। इकाई के इस भाग में रोजगार में सेक्टर गत भिन्नताओं और रुझानों, कार्य सहभागिता दरों और पारिश्रमिक अंतर को हम महिलाओं की रोजगार संबंधी स्थिति को जानने के लिए उठा रहे हैं।

5.5.1 विभिन्न सेक्टरों में श्रमिकों का वितरण

कृषि, खनन, मत्स्य पालन इत्यादि आर्थिक क्रिया-कलापों समेत प्राथमिक क्षेत्र यानी प्राइमर सेक्टर, विनिर्माण उद्योग और निर्माण उद्योग समेत द्वितीयक क्षेत्र (सेकेन्डरी सेक्टर) और व्यापार, वाणिज्य, परिवहन, संचार इत्यादि समेत तृतीयक क्षेत्र (टर्शियरी सेक्टर) में लगे मजदूरों का वितरण देखें तो हमें उनकी संख्या प्राथमिक क्षेत्र विशेषकर कृषि क्रिया-कलापों में अधिक दिखाई देती है। मगर एनएसएसओ द्वारा इन क्षेत्रों में रोजगार पर किए गए पंचवर्षीय सर्वेक्षणों (32वां, 38वां, 43वां और 50वां चक्र) से पता चलता है कि प्राथमिक क्षेत्र मुख्यत: देहाती इलाकों में कृषि क्षेत्र में सत्तर के दशक मध्य और अस्सी के दशक मध्य के वर्षों में पुरुष श्रमिकों की संख्या में धीरे-धीरे कमी आई है। दूसरी ओर द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में पुरुष श्रमिकों का प्रतिशत बढ़ा है। यूं तो इसी अवधि में श्रमशक्ति की संरचना में महिलाओं के लिए प्राथमिक क्षेत्र में ही सत्तर के दशक मध्य और अस्सी के दशक मध्य में बदलाव आता देखा गया है, मगर पिछले दशक में यानी अस्सी के दशक मध्य और नब्बे के दशक मध्य के दौरान इसमें भारी बदलाव आया है। प्राथमिक क्षेत्र में ग्रामीण महिला श्रमशक्ति में इस अवधि में वृद्धि हुई है तो वहीं द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में उनकी संख्या घटी है। श्रमजीवी जनसंख्या में प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र की ओर इस परिवर्तन को भारतीय अर्थव्यवस्था में एक बड़े ढांचागत बदलाव के रूप में देखा गया था। मगर ग्रामीण महिला श्रमशक्ति के रुझान में प्राथमिक क्षेत्र की ओर इस नवीनतम परिवर्तन का कारण मुख्यत: श्रमशक्ति का बढ़ता अनियतीकरण (यानी मजदूरों को अनियमित, दिहाड़ी मजदूरी में रखा जा रहा है) तथा शहरी केन्द्रों की ओर बढ़ता पुरुष पलायन है।

तालिका-1 में 1911-91 के बीच हुई जनगणनाओं पर आधारित कार्य-सहभागिता दर और 1972-73 तथा 1993-94 के बीच हुए एनएसएसओ सर्वेक्षणों पर आधारित आंकड़ें दिए गए हैं। सहज तुलना के उद्देश्य से एनएसएसओ सर्वेक्षणों में प्रधान और सहायक मजदूरों तथा जनगणना के आकलनों में मुख्य और सीमांत मजदूरों दोनों को शामिल किया गया है। नीचे

दी गई इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि सत्तर और अस्सी के दशकों में महिला श्रमिकों की कार्य सहभागिता दर में उतार चढ़ाव रहा है यानी दूसरी तरह से कहें तो उनकी कार्य सहभागिता दर कम रही है। मगर मौजूदा कार्य सहभागिता दर की 1961 से पहले की दरों से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों जनगणनाओं में महिलाओं की अदृश्यमानता का कारण परिभाषा-संबंधी समस्याएं हैं। मगर एनएसएसओ के आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कार्य सहभागिता दरें अमूमन स्थिर रही हैं। इन अनुपातों से पता चलता है कि महिला रोजगार 40 प्रतिशत से घटकर 29 प्रतिशत, तो पुरुष रोजगार 62 प्रतिशत से घटकर 50 प्रतिशत हुआ है। 1911 से 1991 के बीच पुरुष और महिला दोनों की सकल कार्य-सहभागिता दर में इस ह्रास का एक कारण स्कूल जाने वाली आयु के बच्चों की स्कूलों में बढ़ती उपस्थिति को माना जा सकता है (विसारिया 1999, आचार्य 1992)। कई विद्वानों का मानना है कि कार्य सहभागिता दरों में भारी गिरावट साठ के दशक में कृषि में हुए यांत्रिकीकरण और द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों में उसके संगत पूरक वृद्धि की कमी के कारण आयी, जिससे कि ये दोनों क्षेत्र प्राथमिक क्षेत्र की अतिरिक्त श्रमशक्ति को अपनी ओर नही खींच पाए।

महिला कार्य की प्रकृति के कारण सहायक और सीमांत श्रमिकों का आकलन महिला कार्य सहभागिता को समझने के लिए जरूरी है। वस्तुत: यही समूह समूची महिला श्रमशक्ति का एक-चौथाई हिस्सा है। कई विद्वानों ने भी बताया है कि महिला सहायक श्रमिकों की संख्या में उतार-चढ़ाव मुख्य श्रमिकों की अपेक्षा अधिक होते हैं क्योंकि यह वर्ग अर्थव्यवस्था में उपलब्ध अवसरों पर अधिक निर्भर है। फिर इस समूह में महिलाओं का अपेक्षतया अधिक प्रतिशत यह भी दर्शाता है कि कई महिलाएं अपने सामान्य प्रधान कार्यों के अलावा बाहर भी उत्पादक कार्य करती हैं।

निर्माण क्षेत्र से जुड़े प्रवासी मजदूर, कोई रोजगार सुरक्षा नहीं और वेतन-भत्ता भी कम।

यह तथ्य अब अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि एक ही उद्योग/सेक्टर में पुरुष और महिला श्रमिक जो मजदूरी कमाते हैं उसमें भी भारी अंतर है। भारत में पुरुषों और महिलाओं की मजदूरी में अंतर का मुद्दा काफी गंभीर है विशेषकर इस तथ्य को देखते हुए

कि पूरे राष्ट्रीय स्तर पर पुरुष-महिला मजदूरी अर्जन के अनुपात में पिछले तीन दशकों में 1.7 और 1.5 के बीच का अंतर रहा है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि महिला मजदूरी में पुरुष मजदूरी की तरह तेज वृद्धि नहीं हुई है।

क्या आप जानते हैं?

तालिका-1: लिंग के आधार पर श्रमिक जनसंख्या अनुपात (जनगणना) और एनएसएसओ सर्वेक्षण) 1911-94

जनगणना और एनएसएस सर्वेक्षण वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	महिला
1911	48.2	62.0	33.9
1921	47.0	60.6	32.8
1931	43.6	57.9	28.4
1941	39.1	53.9	23.4
1951	43.0	57.1	28.0
1961	34.0	52.7	13.9
1971	40.7	52.7	27.8
1972-73 एनएसएस	41.6	53.4	28.9
1981	36.8	52.6	19.8
1983 एनएसएस	42.8	53.5	29.3
1987-88 एनएसएस	40.9	53.0	28.0
1991	37.5	51.6	22.3
1993-94 एनएसएस	42.0	54.5	28.6

स्रोत : भारतीय गणना, 1991

अनेक सिद्धांतकारों ने महिला और पुरुष मजदूरी में इस भेद का कारण श्रमिक को हासिल दक्षता में मौजूद अंतर को बताया है। उदाहरण के लिए कृषि क्षेत्र में महिलाएं अक्सर फसल कटाई, बोआई, निराई-गोड़ाई और रोपाई जैसे अल्पदक्षता और थकाऊ काम करती हैं। मगर वहीं पुरुष अधिक दक्षता वाले काम करना पसंद करते हैं जैसे खेत जोतना, काटना और बेचना। इसी प्रकार तृतीयक क्षेत्र में भी महिलाएं अल्प दक्षता और न्यून मजदूरी वाले कार्यों में ही रोजगार करती पाई जाती हैं। इसके विपरीत पुरुष अर्ध-दक्षता वाले या प्रबंधकीय पदों में पाए जाते हैं। बहरहाल इसके कारणों को जानना बेहद जरूरी है। साथ ही निचले स्तर पर कार्य करने के कारण महिलाओं को जो न्यून मजदूरी दी जाती है उसे साधारण मुद्दा समझ कर अनदेखा नहीं करना भी उतना ही जरूरी है। महिलाओं का एक बहुत बड़ा हिस्सा महिलाओं का कार्य महिलाओं की मजदूरी पर उन ढांचागत अंकुशों, सीमाओं के फलस्वरूप कर रही हैं जो उन पर समाज ने थोपी हैं। फिर बच्चों की देखभाल और घर के सारे काम-काज का दायित्व महिलाओं को ही निभाना पड़ता है। घर पर किया जाने वाला यही बेगार महिलाओं को पूर्णकालिक, अच्छी मजदूरी वाले काम पकड़ने से रोकता है मगर वहीं पैसे की तंगी उन्हें किसी भी तरह को मजदूरी वाले काम पकड़ने के लिए विवश करती है। उनकी स्थिति को दयनीय बनाने का कारण यह भी है कि गृह-निर्वाहक के दायित्व के कारण उन्हें विशेषज्ञता प्रशिक्षण से वंचित रखा जाता है।

जरा सोचिए-2

1) प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र से आप क्या समझते हैं?

2) महिला श्रमिकों की संख्या प्राथमिक क्षेत्र में ही अधिक क्यों है?

3) आपके अनुसार महिलाओं को पुरुषों से कम मजदूरी या वेतन मिलने के क्या कारण हैं?

5.6 राज्य का हस्तक्षेप और महिला रोजगार

आज हर कोई यह बात जानता है कि आर्थिक क्रिया-कलापों में महिलाओं की भागीदारी बड़े पैमाने पर है चाहे वे कम मजदूरी पाने वाले श्रमिक हों या असंगठित क्षेत्र में उत्पादकों के रूप में काम कर रही हों या फिर वे अपने घरों में बेगार कर रही हों। निस्संदेह भारत में बेरोजगारी की दर काफी अधिक है, मगर इसके पर्याप्त प्रमाण हैं जो इस धारणा की पुष्टि करते हैं कि महिलाओं को सामाजिक-लिंग (जेंडर) के कारण अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं (रामास्वामी, 1992)।

5.6.1 महिलाओं और उनकी कार्यदशा पर रिपोर्ट

पिछले तीन दशकों में महिलाओं की स्थिति पर तीन मुख्य रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं। ये हैं: महिलाओं की स्थिति पर गठित राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट *टुवार्ड्स इक्वैलिटी* (यानी समानता की ओर) अनौपचारिक क्षेत्र में स्वरोजगार में लगे पुरुषों व महिलाओं पर गठित राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट *श्रमशक्ति* और अंततः *राष्ट्रीय महिला विकास परिप्रेक्ष्य योजना* (1988)। इन महत्वपूर्ण दस्तावेजों से यही प्रमाणित होता है कि श्रम बाजार में राज्य का हस्तक्षेप नितांत अनिवार्य है। राज्य ने अब यह जान लिया है कि मौजूदा सामाजिक-आर्थिक वातावरण में महिलाओं को आर्थिक वंचना से अधिक जूझना पड़ता है। इसका कारण कुछ नियत क्रिया-कलापों में उनकी अत्यधिक भागीदारी है जो बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण समय और शारीरिक ऊर्जा के लिहाज से अधिक कठोर और कीमती बन गए हैं। इसके अलावा स्थानीय स्तर पर महिलाओं के लिए अवसर भी बहुत सीमित हैं। इनके अलावा राज्य मौजूदा सामाजिक-लिंग भेदभावों से भी परिचित हो गया है जो घर-परिवार, श्रमबाजार और निजी तथा सार्वजनिक संसाधनों के वितरण और उपयोग में विभिन्न स्तरों पर काम करने वाले कारकों से उत्पन्न होते हैं। राज्य ने सीधे नीतिगत हस्तक्षेप से इन असमानताओं और असंतुलनों को दूर करने का प्रयास भी किया है।

5.6.2 सीधा हस्तक्षेप

रोगगार के क्षेत्र में भारत ने अब तक कई किस्म की नीतिगत पहलें की हैं जिन्हें दो मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है: ग्रामीण लोग निर्माण कार्यों के माध्यम से पारिश्रमिक रोजगार का सृजन और आवश्यक अस्तियां और संसाधन जुटाने के लिए सबसीडी वाले ऋण के प्रावधान से स्वरोजगार का सृजन। सरकार ने देहात के गरीबों के लिए मजदूरी और स्वरोजगार तथा ढांचागत सुविधा संबंधी योजनाएं चला रखी हैं जैसे जवाहर रोजगार योजना, रोजगार आश्वासन योजना (ईएएस), कोटि कूप निर्माण (*एमडब्लूएस*) योजना, इंदिरा गांधी आवास योजना, समेकित ग्रामीण विकास योजना (आईआरडीपी), ग्रामीण क्षेत्र महिला एवं बाल विकास योजना (डीडब्लूसीआरए) ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना

(ट्राइसेम) इत्यादि। जवाहर रोजगार योजना व रोजगार आश्वासन योजना का लक्ष्य देहाती इलाकों में लोक निर्माण और विकास कार्यों के जरिए मजदूरी वाले रोजगार का सीधे सृजन करना है। दूसरी ओर आईआरडीपी तथा डीडब्लूसीआरए योजनाओं में गाय, बकरी इत्यादि जैसी अस्तियों को खरीदने के लिए सबसीडी वाले ऋण की सुविधा देकर स्वरोजगार प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। ट्राइसेम का उद्देश्य ग्रामीण युवकों की रोजगारमूल दक्षताओं को उन्नत करके उन्हें वैतनिक रोजगार पाने के यथा योग्य बनाना है।

इसी प्रकार इंदिरा गांधी आवास योजना और एमडब्लूएस में ग्रामीण घरों को लक्ष्य कर उनके जीवन स्तर को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है। उधर राज्य ने शहर में रहने वाले गरीबों के उत्थान के लिए भी कई योजनाएं चला रखी हैं। जैसे नेहरू रोजगार योजना, स्कीम ऑव अर्बन वेज एम्प्लॉयमेंट (सुवे), अर्बन बेसिक सर्विसेज फॉर द पुअर (यूबीएसपी), स्कीम ऑव हाउसिंग एंड शेल्टर अपग्रेडेशन (शासू) इत्यादि। यहां भी नेहरू रोजगार योजना और सुवे में रोजगार बाजार को प्रभावित करने का तो यूबीएसपी और शासू में गरीब लोगों के जीवन स्तर को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है। (महेंद्र देव 1999)

आइआरडीपी और ट्रीइसेम योजनाओं के मूल्यांकन रिपोर्टों से पता चलता है कि स्थानीय स्तर पर मुख्य कार्यान्वय एजेंसी, बीडीओ या अन्य सरकारी अधिकारी अभी भी पुरुषों को ही घर-परिवार का मुखिया मानकर चल रहे हैं। यह भी देखने में आया है कि संभावित महिला लाभार्थियों की ऋण पात्रता को हमेशा संदेह की दृष्टि से देखा जाता है।

राज्य हस्तक्षेप से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ हस्तक्षेप महिलाओं को पूरक रोजगार मुहैय्या कराके उनकी सहायता का प्रयास करते हैं, सूखा आदि विभीषिकाओं में गरीब परिवारों, विशेषकर महिलाओं की अस्थायी राहत देकर सहायता करते हैं। दूसरे हस्तक्षेप गरीब घरों के जीवन स्तर को सुधार कर उनकी सहायता करते हैं। प्रत्येक हस्तक्षेप में 'महिला घटक' का लक्ष्य महिलाओं के लिए बेहतर ढांचागत स्थितियां बनाना और उनके जीवन-स्तर को उठाना है।

जरा सोचिए - 3

1) महिला और कार्य के क्षेत्र में राज्य के कुछ प्रमुख हस्तक्षेपों के नाम बताइए।

2) महिलाओं के कार्य के प्रति सरकार की बुनियादी सोच कैसी है?

3) क्या आप सोचते हैं कि सरकारी नीतियों और हस्तक्षेपों के चलते महिलाओं की कार्यदशा में सुधार आया है?

5.7 सारांश

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि महिलाओं के कार्य को समझने के लिए जरूरी है कि हम पहले उनके कार्य और रोजगार की जटिल और बहुरंगी प्रकृति को जानें। सांख्यिकीय आंकड़े और संख्याएं नीति निर्माताओं के लिए जरूरी हैं ताकि वे सुधारात्मक उपाय करें। मगर आंकड़ों के संकलन के लिए जो भी सिद्धांत, विधियां और श्रेणियां प्रयोग की जाती हैं, वे आंकड़ों के प्रारूप और उनकी प्रकृति को प्रभावित करते हैं। यही महिलाओं के जीवन की आधी, अधूरी तस्वीर हमारे सामने रखता है। इस इकाई में हमने महिलाओं की दुर्दशा के मूल में स्थित मुद्दों और कारकों को समझने का प्रयास किया है।

5.8 शब्दावली

मुख्य या प्रधान श्रमिक: 1981 की जनगणना के अनुसार मुख्य श्रमिक वे हैं जिन्होंने किसी आर्थिक गतिविधि में वर्ष के बड़े हिस्से (183 दिन या उससे लंबी अवधि तक) काम किया हो।

सीमांत श्रमिक: 1981 की जनगणना के अनुसार सीमांत श्रमिक की श्रेणी में वे मजदूर आते हैं जो किसी भी आर्थिक क्रिया-कलाप में वर्ष के बड़े हिस्से के लिए काम नहीं करते।

संगठित क्षेत्र: अर्थव्यवस्था के वे सेक्टर जहां उत्पादन और रोजगार की प्रक्रियाएं समाज की औपचारिक व्यवस्था में कानूनों द्वारा संचालित होते हैं।

असंगठित क्षेत्र: अर्थव्यवस्था के ऐसे सेक्टर जिनका ढांचा ढीला-ढाला हो जहां उत्पादन और नियोजन राज्य के नियमों और विनियमों के अनुसार संचालित नहीं होते।

प्राथमिक क्रिया-कलाप/क्षेत्र: ऐसे आर्थिक क्रिया-कलाप जो कृषि पर आधारित या उससे संबंध रखते हों।

द्वितीयक क्रिया-कलाप/क्षेत्र: ऐसे आर्थिक क्रिया-कलाप जो उद्योग से संबंध रखते हों।

तृतीयक क्रिया-कलाप/क्षेत्र: ऐसे आर्थिक क्रिया-कलाप जो सेवाओं पर आधारित हों।

कार्य-सहभागिता दर: किसी प्रदत्त जनसंख्या में श्रमिकों का अनुपात या उनकी संख्या। इसे स्त्री-पुंजाति अनुपात की तरह प्रति 1000 व्यक्ति के आधार पर आंका जा सकता है।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पपोला, टी.एस. और शर्मा, ए.एन. (संपा) 1999, *जेंडर एंड एंप्लॉयमेंट इन इंडिया*, इंडियन सोसायटी फॉर लेबर इकॉनामिक्स और इंस्टीट्यूट ऑव इकॉनमिक ग्रोथ, नई दिल्ली

शर्मा, एन.एन और सिंह, सीमा (संपा) 1992, *वीमेन एंड वर्क: चेंजिंग सिनैरियो इन इंडिया*, इंडियन सोसायटी फॉर लेबर इकॉनमिक्स, पटना

इकाई 6 राजनीतिक भागीदारी

रूपरेखा

6.0 लक्ष्य और उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 राजनीति की परिभाषा
  6.2.1 निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र
6.3 राजनीतिक भागीदारी की संकल्पना और परिभाषा
  6.3.1 राजनीतिक संकल्पना
  6.3.2 राजनीतिक भागीदारी की परिभाषा
6.4 महिलाएं और राजनीतिक भागीदारी
6.5 भारतीय महिलाएं और राजनीतिक भागीदारी
  6.5.1 राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका
  6.5.2 स्वतंत्रता के बाद का परिदृश्य
6.6 राजनीतिक भागीदारी के उत्तरदायी कारक
  6.6.1 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक
  6.6.2 राजनीतिक कारक
6.7 अधिकारों का पुनः आग्रह महिलाओं द्वारा सतत संघर्ष
  6.7.1 बेलन (रोलिंग पिन) मोर्चा
6.8 राजनीतिक प्रक्रिया में अभिनव मुद्दे
  6.8.1 भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति की रिपोर्ट
  6.8.2 73वां और 74वां संशोधन अधिनियम
  6.8.3 81वां संशोधन बिल
6.9 सारांश
6.10 शब्दावली
6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में आप मुख्य रूप से भारत के औपचारिक और अनौपचारिक शासन की संरचना में महिलाएं और उनकी भागीदारी के संबंध में अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- राजनीति की संकल्पना की परिभाषा और उसकी व्याख्या कर सकेंगे,
- राजनीतिक भागीदारी की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे,
- महिलाओं की भागीदारी के उत्तरदायी कारकों की चर्चा कर सकेंगे,
- शासन के औपचारिक और अनौपचारिक संरचना में महिलाओं की भागीदारी पर टिप्पणी कर सकेंगे और
- औपचारिक और अनौपचारिक शासन संरचना में महिलाओं के लिए आरक्षण के मुद्दे पर चर्चा कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

हाल के कुछ वर्षों में औपचारिक और अनौपचारिक शासन की संरचना में महिलाओं की भागीदारी का मुद्दा भारत और दुनिया भर के अन्य देशों में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है। अब यह लगातार महसूस किया जा रहा है कि जब तक महिलाएं राजनीतिक प्रक्रिया में भाग नहीं लेगी तब तक ये लगातार कमजोर बनी रहेगी। अब लगता है कि वह समय आ गया है। इसलिए इस इकाई में आप महिलाओं से संबंधित व्यापक मुद्दे और उनकी राजनीति में भागीदारी के बारे में विस्तार अध्ययन कर सकेंगे। हमने इसे राजनीति क्या है ? को परिभाषित करते हुए आरम्भ किया है। राजनीति को वास्तव में समझने के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि हम यह समझे कि राजनीति शक्ति हमारे दैनिक जीवन में किस प्रकार से हावी है और वहीं पर उसके प्रत्येक पहलू का विवचेनात्मकरना भी आवश्यक है। हमें इससे आगे की सोचनी होगी कि शासन और वैधानिक निकायों में राजनीतिक भागीदार किस प्रकार से पूरी की जाएं

इस इकाई के अगले भागों में हम महिलाओं की राजनीतिक प्रक्रिया और लगातार संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण करेंगे। इसके साथ ही उनकी सक्रियता की गतिको तेज करने के उपायों पर चर्चा करेंगे। ताकि वे उनकी मांगों को पुरा किया जाए और उनकी स्थिति में सुधार किया जाए।

6.2 राजनीति की परिभाषा

राजनीति का अर्थ है शक्ति प्राप्त करना और उसका प्रयोग अर्थात निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं नीति निर्माण में प्रभावी भागीदारी होता है। राजनीति का सीधा संबंध आवश्यक सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए भी होता है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि राजनीति केवल राजनीतिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं होती है। बल्कि यह अन्य सभी सामाजिक व्यवस्थाओं से जुड़ी होती है जैसे कि सामाजिक, व्यावसायिक क्षेत्र अथवा निजी घरेलू क्षेत्र आदि क्या आप नहीं जानते की कि कभी कभी भावुकता अथवा किन्हीं मनोभावों के कारण अपने माता पिता/मित्रों/भाई-बहिनों से कोई किस प्रकार से डरा धमका कर वस्तु प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यह आपका अपना तरीका होता है। आप यह भी जानते हैं कि किस प्रकार से अपनी इच्छाओं के अनुसार निर्णय कराने के लिए अपने मित्रों को प्रभावित किया जाता है। अत: इस प्रक्रिया को हम शक्ति का प्रयोग कहते हैं तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया को आप कितना प्रभावित कर सकते हैं, यह आपकी योग्यता पर निर्भर करता है।

6.2.1 निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र

शक्ति या शासन का संबंध सभी स्तरों पर होता है। चाहे परिवार, धर्म, जाति अथवा सार्वजनिक संस्थाएं ही क्यों न हों। सभी संस्थाएं शासन से संबंध रखते हैं और इसलिए यह कुछ हद तक राजनीतिक संस्थाएं बन जाती हैं। ये आपस अंत: संबंधों के कारण राजनीतिक संबंध स्थापित हो जाते हैं, और शक्ति के खेल में शामिल हो जाते हैं।

उपर्युक्त अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन का निजी क्षेत्र भी राजनीतिक सिद्धांतों का घनिष्ठ हिस्सा बन जाता है। इसलिए इसके परिणामस्वरूप घरेलू या निजी क्षेत्रों में महिलाओं के जीवन पर भी समान रूप से प्रभाव पड़ता है।

आइए इसे हम सरल शब्दों में बताने का प्रयास करते हैं और इसी संदर्भ में अपने दैनिक जीवन के कार्यकलापों पर एक दृष्टि डालते हैं। पिछले बजट सत्र के दौरान सरकार ने

डीजल के मूल्यों में भारी वृद्धि कर दी थी। जिसके परिणामस्वरूप ट्रक ड्राइवरों ने हड़ताल कर दी। इस हड़ताल के कारण दिल्ली की मंडियों में आसपास के राज्यों से सब्जियों की आपूर्ति बिल्कुल ठप्प हो गई थी। इससे सब्जियों के मूल्यों में असीम वृद्धि हो गई थी। घरेलू महिलाओं ने मंहगाई से निपटने के लिए हरी सब्जियों एवं अन्य वस्तुओं की खरीद में कटौती कर दी। इन सबसे लोगों के स्वास्थ्य और परिवारों के बजट पर सीधा असर पड़ा था। क्या अब भी हम यह कह सकते हैं कि सरकार द्वारा नीति निर्धारण में महिलाओं की भागीदारी नहीं होनी चाहिए ? क्या वे राजनीतिक सिद्धांतों से अलग थलग रह सकती हैं ? इसके विपरीत महिलाएं खासतौर पर अनपढ़ होती है। इसके बावजूद वे सामाजिक, पर्यावरण आर्थिक तथा अन्य विभिन्न मुद्दों के संबंध में सरकारी नीतियों को बदलने में बराबर भागीदार रही हैं।

अपने अनुभव से सीखें –1

1) क्या आपने अपने माता-पिता के राजनीतिक संबधों का अवलोकन किया है ? घर में किस के निर्णय को माना जाता है ? आप स्वय अवलोकन कीजिए तथा अन्य लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा कीजिए।

2) किस प्रकार से प्राय: सरकारी नीतिया आप और अन्य लोगों को प्रभावित करती है? चर्चा कीजिए अपने विचारों को लिखिए।

6.3 राजनीतिक भागीदारी की संकल्पना और परिभाषा

राजनीतिक भागीदारी की संकल्पना को विस्तार से समझने के लिए, यह आवश्यक है कि हम पहले राजनीतिक शब्द का अर्थ समझ लें।

6.3.1 राजनीतिक संकल्पना

पिछले लम्बे समय से राजनीतिक शब्द को राज्य और इसकी प्रमुख एजेंसी सरकार के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है। फिर भी समय के अन्तराल में विशेषकर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस शब्द की परिभाषा में विशेष विस्तार हुआ है। राजनीतिक शब्द का एक बार परिभाषित होने के बाद इसका विस्तार हुआ और इसे शक्ति एवं संबंधों के सदर्भ में परिभाषित किया जाने लगा। जब राजनीतिक अवधारणा की स्वीकृति हो गई तब औपचारिक से समाज की संरचना की अनौपचारिक क्षेत्रों से इसका विस्तार हुआ। अत: उदाहरण के लिए इसे पारिवारिक क्षेत्र में भी सम्मिलित किया गया। उदाहरण के लिए एक पिता अपने अधिकारों अथवा कर्तव्यों को पूरा करने के लिए बच्चों को अपने ढंग से पालन पोषण तथा उनकी शैक्षिक एवं अन्य आवश्यकताओं को पूरा करके अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। इसलिए वह परिवार में राजनीतिक भूमिका निभाता है। इसलिए हमें विश्वास है कि आप "महिला सशक्तिकरण और विकास" कार्यक्रम के आधारिक पाठ्यक्रम के खंड 2 में राजनीति की परिभाषा अवश्य ही पढ़ चुके होंगे। जिसमें सरकार के औपचारिक क्षेत्रों को ही नहीं अपितु समाज में परिवर्तन लाने वाली अनौपचारिक प्रक्रिया को भी विस्तार से शामिल किया गया है।

अंत में कहा जा सकता है कि राजनीति को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सभी क्षेत्रों से संबंध कर दिया गया है तथा इसे देश की सरकार के साथ जोड़ दिया गया है। जिसमें प्रत्येक नागरिक रहता है और उसमें अपनी भागीदारी करता है।

इसलिए इस पत्र का केवल यही उद्देश्य नहीं है कि औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी का अध्ययन किया जाए बल्कि उसका उद्देश्य व्यापक अर्थों में विश्लेषण करना भी है। औपचारिक राजनीतिक भागीदारी महिलाओं के अधिकार और विकास के उत्थान के लिए निर्णयों को प्रभावित करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस संबंध में विस्तार से चर्चा करने से पहले यह अच्छा रहेगा कि सबसे पहले हम राजनीतिक भागीदारी की सरल और संचालनात्मक परिभाषा प्रस्तुत करें।

6.3.2 राजनीतिक भागीदारी की परिभाषा

राजनीतिक भागीदारी को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि कुछ अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष उद्देश्यों के सामने रखकर या उन्हें पूरा करने के लिए शासन के औपचारिक तथा अनौपचारिक संरचना में सक्रिय या असक्रिय रूप से भाग लेना होता है।

इसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए उपर्युक्त दिया गया राजनीतिक भागीदारी औपचारिक शक्ति संरचनात्मक तक ही सीमित नहीं रखा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में उदाहरण के लिए जब हम महिलाएं और राजनीतिक भागीदारी की चर्चा करते हैं तब हमें केवल महिला सांसदों, विधायकों एवं निगम पार्षदों की भूमिका का ही निरीक्षण नहीं करना होता है बल्कि नीचे के स्तर की स्थानीय निकायों गैर सरकारी संगठनों और अन्य आन्दोलनों से जुड़ी कार्यकर्ताओं की भूमिका को सम्मिलित किया जाता है।

राजनीति की व्यापक संकल्पना पर आधारित जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि हमने परिवार को भी राजनीतिक इकाई के रूप में माना है। लोग प्रायः शक्ति/प्राधिकारों की जब चर्चा करते हैं तो मुखिया पुरुष या पुरुष सदस्यों की ही चर्चा करते हैं और महिला सदस्यों को पूर्णतया नकार देते हैं या हासिए पर रख देते हैं। वास्तव में तथ्य यह है कि मातृसत्तात्मक समाजों को छोड़कर अन्य परिवारों में महिलाओं की किसी भी स्तर पर चर्चा नहीं की जाती है और न हीं उन्हें किसी प्रकार का क्षेत्र दिया जाता है।

6.4 महिलाएं और राजनीतिक भागीदारी

राजनीतिक भागीदारी की संकल्पना और परिभाषा की विवेचना करने के बाद अब महिलाओं को सामान्य परिलोकन और उनकी औपचारिक और अनौपचारिक राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के संबंध में अपना ध्यान केंद्रित करते हुए विश्लेषण करेंगे।

राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी के सवाल को इन हाल के दिनों में महत्वपूर्ण स्वीकार किया गया है। इस संबंध में महिलाएं कई दशकों से संघर्ष करती आ रही थी कि निर्णय लेने वाली निकायों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व न के बराबर है। इसलिए उनके लिए स्थान निर्धारित किए जाएं। महिलाओं के पूर्ण बहुमत के लिए राजनीतिक भागीदारी मांगने की क्या आवश्यकता है ? अब और तब प्रत्येक नीति निर्धारकों द्वारा निर्णय लिए जाते रहे हैं और लोग उनसे प्रभावित होते रहे हैं। परन्तु कितनी महिलाएं इस स्थिति में रही हैं जो नीति निर्णायक स्थिति में रही है ? जब से महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी प्राप्त हुई है सभी स्तरों पर कितने निर्णय लिए गए हैं। महिलाओं की सशक्तिकरण का सवाल केवल राजनीतिक ही नहीं बल्कि यह सामाजिक आर्थिक प्रश्न भी है। दुर्भाग्य से "महिलाओं के सशक्तिकरण" का मामला भी राजनीतिक भागीदारी पर ही केंद्रित रहा है। समाज के सभी क्षेत्रों में जैसे कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक में निर्णय निर्धारक प्रक्रिया में भागीदारी की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। इसके साथ ही सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों को पूरी तरह से इस तरह की संकल्पना में अलग कर दिया गया है। महिलाओं के जीवन को

किन्हीं सीमाओं में प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है और वह भी औपचारिक राजनीति के नाम पर जिसे राज्य की संस्थाएं चलाती हैं।

समूचे विश्व में औपचारिक राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की छवि को रूढ़िबन्द्धता से प्रदर्शित किया जाता है और वहां महिलाओं को राजनीति में प्रवेश के लिए उत्साहित नहीं किया जाता है। महिलाओं के संबंध में अनेक अध्ययन हो चुके हैं जिसमें बताया गया है कि महिलाएं स्वतंत्र मतदाता नहीं होती हैं। इसका सबसे बड़ा कारण उनका निरक्षर होना है।

उनको सूचनाएं कम मिल पाती है और उनमें राजनीतिक जागरूकता का अभाव होता है। तथापि, इन अध्ययनों में राजनीतिक भागीदारी शब्द की परिभाषा बहुत ही संकीरणता से की है जिससे उसका सम्पूर्ण भाव स्पष्ट नहीं होता है। राजनीति में महिलाओं को हाशिए पर रखा जाता है, यह परिघटना सारभौमिक है। परन्तु भारत की स्थिति विश्व के सभी क्षेत्रों से बहुत खराब है। भारत में महिलाओं की बदतर स्थिति को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

	संसद	कार्यकारी/प्रशसक
विश्व	10	6
विकासशील देश	10	5
भारत	7	3

स्रोत : "राजनीतिक प्रक्रिया – साहित्य शास्त्र से अलग"

अमाल मंडल, वूमेनस लिंक भांगड़, सं० 2, 1999 पृ० 30

महिलाओं की राजनीति में राजनीतिक भागीदारी बहुत कम है इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र में भी इसी प्रकार की स्थिति मौजूद है। भारत में लैंगिक भेदभावों के सामाजिकीकरण के दौरान बचपन में ही उसे सामाजिक धार्मिक और आर्थिक कारक राजनीति में प्रवेश करने से प्रतिबंधित करते हैं। संस्थाएं और विचारों के कारण महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में समान भागीदार से रोका जाता है। उसे अपंग बनाने का प्रयास किया जाता है।

क्या आप जानते है ?

महिलाओं की सतर्कता

अनेक महिला संगठनों ने एक साथ मिलकर मतदाता जागरूकता पैदा करने के लिए संयुक्त रूप से अभियान छेड़ने का निर्णय लिया। इनमें से कुछ संस्थाएं जैसे वूमेनस वॉइस, इंडियन एसोसिएशन ऑफ वूमेन्स स्टडिज, इंडियन सोसल स्टडिज ट्रस्ट, इस्टियूट फॉर यूथ एंड डेवलमेंट हैगास्थाए हैक्कीना सघा कुआरडीनेट यूनिट (बगलौर) तथा जनोदय महिला संगठन महिलाओं के उत्थान कार्य रही है।

कर्नाटक सबसे पहला राज्य है जिसने 73वां और 74वां संविधान सशोधन को अपने यहां लागू करके स्थानीय सरकारी निकायों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण प्रदान किया है। अभी पिछले दिनों में कई हजार महिला प्रतिनिधि चुन कर आई है। गरीब महिलाओं को जो निम्न स्तर से आई हैं उन्हें प्रशिक्षण देने के लिए प्राथमिकता दी गई है तथा अनेक समूह जो पहले से ही इस प्रकिया में जुटे हुए हैं। महिला मतदाताओं को उनके मत का मूल्य और शक्ति के बारे में जागरूकता और जानकारी देने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है तथा महिला सर्तकता मत जागरूकता अभियान समूहों आदि संगठनों ने

कार्य करना आरम्भ कर दिया है। इसका औपचारिक आरम्भ दिया है। दिनांक 12 अप्रैल 1995 को बैंगलोर के टाउन हाल में आयोजित सार्वजनिक बैठक में किया। इस बैठक में पूरे दक्षिण क्षेत्र से लगभग 2500 से अधिक व्यक्तियों ने भाग लिया था। इसके अतिरिक्त मुख्य चुनाव आयुक्त और नीचे के स्तर की अनेक महिलाओं ने बैठक में भाग लिया और अपने अनुभवों को सबके समक्ष रखा था। इस अभियान का नारा था महिलाओं का मत महिलाओं के लिए हो। इस बैठक की एक फिल्म भी बनाई गई (जिसका उपशीर्षक अंग्रेजी में) थी साथ ही जो लोग मत जागरूकता अभियान में भाग लेना चाहें उन्हें प्रशिक्षण सामग्री भी वितरित की गई थी। इसके बाद जिन्हें इस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता हो वे लोग बंगलौर के इकाई संयोजक से प्राप्त कर सकते हैं।

6.5 भारतीय महिलाएं और राजनीतिक भागीदारी

यह हम सब जानते हैं कि भारतीय महिलाओं का सक्रीय राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का आरम्भ स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान हुआ। आइए अब हम निम्नलिखित भागों में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाली महिलाओं की भूमिका के बारे में चर्चा करते हैं।

6.5.1 राष्ट्रीय आन्दोलनों में भारतीय महिलाओं की भूमिका

भारतीय महिलाओं की राष्ट्रवादी राजनीति में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। परन्तु इनका पूरी तरह से आगमन महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश करने के बाद ही माना जा सकता है। भारत में 19वीं शताब्दी समाज सुधारकों की रही है जिसमें विशेष कर महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने उन्हें समान अधिकार दिलाने के लिए सीधे ही प्रयास किए गए और घिसे पिटे रूढ़ियों को नष्ट करने का प्रयास किया गया। इनमें प्रमुख हैं बालहत्या, बाल विवाह, सती प्रथा के विरुद्ध और विधवा विवाह आदि के लिए प्रयास किए गए हैं। इसके साथ ही महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के लिए भी उत्साहित किया गया है। सन् 1910 और 1920 के दौरान महिलाओं के लिए अनेक सामाजिक संगठन बनाए गए थे तथा इसके सदस्य केवल उपर्युक्त मांगों का समर्थन ही नहीं कर रहे थे बल्कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में भी सक्रीयता से भाग ले रहे थे और महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए भरपूर कोशिश कर रहे थे। इन सामाजिक संगठनों ने सबसे पहला कदम यह उठाया कि इन्होंने महिलाओं की मांगों को मनवाने के लिए मजबूत मंच प्रदान किए।

इन संगठनों के सदस्य प्राय: उच्च वर्ग या "मध्य वर्ग" की पृष्ठ भूमि के होते थे तथा गरीब महिलाओं की मांगों को पूरी तरह से नकारा गया था। यद्यपि इन सामाजिक संगठनों में ग्रामीण और निम्न जाति की महिलाओं का प्रतिनिधित्व नाममात्र का था फिर भी इन संगठनों के कारण ही बहुत सारी महिलाएं इन सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में भाग लेने के लिए प्रभावित हुई थी। इसलिए यह कहा जा सकता है कि समाज सुधार आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन ने महिलाओं में सामाजिक जागरूकता को निश्चित रूप से पैदा किया है जो एक महत्वपूर्ण कार्य है। जनवरी 1927 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना हुई थी जिसकी मुख्य भूमिका महिलाओं में शैक्षिक एवं सामाजिक कार्यों पर केन्द्रित रही।

भारतीय स्वतत्रता ने महिलाओं की कानूनी स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए ठोस कार्य किया है।

6.5.2 स्वतंत्रता के बाद का परिदृश्य

स्वतंत्रता के बाद अनेक कानून पास किए गए जिनमें हिन्दू विवाह अधिनियम (1955) उत्तराधिकार अधिनियम (1956) तथा गोद लेना अधिनियम (1956) महत्वपूर्ण रहे हैं जिनमें महिलाओं की भूमिका में संशोधन किया और साथ में कानून और रीति-रिवाजों को समुचित रूप से परिभाषित किया है। यह परिवर्तन मूलरूप से विभिन्न महिला संगठनों द्वारा उठाए गए मुद्दों पर आधारित थे जिनके लिए 1930 से वैधानिक परिवर्तनों के लिए लगातार संघर्ष किया जा रहा था। इनमें महिलाएं और उनके सार्वजनिक जीवन में भागीदारी के लिए तीव्रता से मांग की गई थी और अन्त में महिलाओं के मत देने का अधिकार प्राप्त हो गया जिसे शिक्षा और सम्पत्ति के द्वारा परिसीमित कर दिया गया था।

अत्यधिक मांग के कारण 1931 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अन्ततः विश्वविद्यालय विमोचन को अपनी कार्य सूची में शामिल कर दिया। 1947 में देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद सम्पूर्ण अधिकारों सहित संविधान में बिना किसी लैंगिक भेदभाव के समान अधिकार दे दिए गए। पहले आम चुनाव में राज्य और स्थानीय दोनों स्तरों पर अच्छी संख्या में महिलाएं चुनकर आई थी। वास्तव में उस समय 22 महिलाएं लोक सभा में चुनकर आई थी जो एक महत्वपूर्ण संख्या मानी गई है। इन चुनी गई सांसदों में से मन्त्री/राजदूत/राज्यपाल आदि के पदों से उन्हें विभूषित किया गया था। महिला, शिक्षा, मताधिकार कानूनी सुधारों पर विशेष बल दिया गया था। साथ में महिला मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए प्रयास बहुत कम किए गए थे। समान काम के लिए समान वेतन और महिलाओं के आवास के मुद्दों पर बहुत कम ध्यान दिया गया था।

जरा सोचिए-1

1) किस प्रकार से राजनीति का सन्चालन होता है यहां तक की सबसे अधिक निजी क्षेत्र में जैसे कि एक परिवार। उपयुक्त उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

2) क्या आप सोचते हैं कि महिलाएं अनेक संगठनों और सुधार आंदोलन में सहायक सदस्य रही हैं जिनके कारण महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है?

6.6 राजनीतिक भागीदारी के उत्तरदायी कारक

इस संबंध में मूलरूप से दो तरह के कारकों की सूची है जिन्हें राजनीति में शामिल होना अथवा उसमें कमी के लिए उत्तरदायी माने गए हैं।

6.6.1 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक

प्रथम प्रकार के कारक देश की सामाजिक संरचना, धार्मिक तथा सांस्कृतिक के आधार से संबंधित हैं और महिलाओं का राजनीति में कितनी भागीदारी है उसके आधार पर स्पष्टीकरण करना संभव होगा। इसके अतिरिक्त दूसरी तरह के कारक राजनीतिक संस्थाओं से संबंधित है जिसमें महिलाओं राजनीतिक पद देने में कितने प्रभावकारी होनी चाहिए यह नियुक्ति की जाने वाली महिला के स्तर पर निर्भर करता है।

यद्यपि भारतीय संविधान ने वास्तव में महिलाओं को पुरुषों के बराबर सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किए हुए हैं। परन्तु दिए गए प्रावधान महिलाओं के समान अधिकारों के स्वपनों को साकार करने में कोई सहायता नहीं करते हैं। यह स्थिति केवल राजनीति के

क्षेत्र में ही नहीं है अपितु अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में भी स्थिति अच्छी नहीं है। उन्हें दलित या वंचित बनाया हुआ है। इसके साथ ही आर्थिक तथा प्रौद्योगिकी विकास के बावजूद प्रबल सांस्कृतिक अभी भी समाज को दो भागों में विभाजन के लिए प्रयासरत हैं जैसे कि निजी क्षेत्रों की दुनिया में महिलाओं को उचित पद देने पर पाबन्दियां लगाई हुई है। परन्तु ये बाधाएं शिक्षा आय और सामाजिक स्तर की ऊँची दरों को प्राप्त करने पर अपने आप हट जाएंगी और महिलाओं को और अधिक भागीदारी के लिए और अवसर उपलब्ध होंगे। यह आश्चर्य जनक नहीं है कि इसीलिए जिन महिलाओं ने भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया था और जो संसद और विधान सभा में चुन कर आई थी। वे सबकी सब अच्छी शैक्षिक पृष्ठभूमि के साथ ऊँचे स्तर के परिवारों से आई थी।

अपने अनुभव से सीखें-2

उन कारकों की पहचान कीजिए जो महिलाओं को राजनीतिक भागीदारी में प्रभावकारी भूमिका निभाने में सहायता करते हैं अथवा उनमें बाधाएं डालते हैं। इस संबंध में अपने रिश्तेदारों/मित्रों/पड़ोसियों से चर्चा करें और अपनी नोट बुक में लिखें।

6.6.2 राजनीतिक कारक

दूसरी तरह के कारक राजनीति में भागीदारी के लिए उत्तरदायी होते हैं। भारतीय संदर्भ में स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान और विशेषकर महात्मा गांधी से प्रभावित होकर बहुत सारी महिलाएं अपने घरेलू जीवन को त्याग कर उनके आंदोलन में शामिल हुई थी और अत्यन्त सक्रीयता देश की स्वतंत्रता के सामूहिक कार्यों में सहायता और संघर्ष किया था। इनकी इस भागीदारी के कारण अनेक कानूनों का निर्माण हुआ। जिनके कारण समाज में महिलाओं का स्तर ऊँचा उठाने में सहायता मिली। हमारे समाज में नातीदारी की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसके द्वारा भागीदारी में वृद्धि भी हो सकती है और रुकावटें भी आ सकती है। आप अवश्य ही किसी बेटी, बहिन, पत्नी या विधवा अथवा कुछ अन्य रिश्तेदारों से सामना हुआ होगा इससे आपको पता चला होगा कि कौन है जो आसानी से इन लोगों को राजनीति में भाग लेने के लिए सहायता करेगा। यह बात स्त्री और पुरुष दोनों के मामलों में सच है। यह सब इसलिए भी होता है क्योंकि राजनीतिक दलों के कार्य तथा उनकी भूमिका इस प्रकार की होती है कि वे कुछ खास ही लोगों को अपना सदस्य चुनते हैं।

यह विडम्बना ही है कि हमारे देश में बहुत थोड़े लोग राजनीतिक पदों पर नियुक्त होकर आते हैं। इसलिए किसी राजनीतिक दल से किसी प्रकार की सहायता न मिलने से चुनाव लड़ने या जीतने के लिए बहुत अधिक धन खर्च होता है। यह बहुत बड़ा कारण है जो महिलाओं के चुनाव लड़ने में बाधा डालता है। इसके अतिरिक्त भारत में महिलाओं का प्रतिनिधित्व इसलिए भी कम है क्योंकि राजनीतिक चुनावों में भारी भ्रष्टाचार और राजनीतिक अपराधिकरण हो चुका है जिसमें महिलाएं चुनाव लड़ने में असमर्थ पाती हैं और उनकी संख्या थोड़ी ही रह जाती है। महिलाओं के लिए जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने में महिलाओं की राजनीतिक भूमिका का मूल्यांकन करने से पता चलता है कि केवल औपचारिक संस्थाएं इस कार्य को पूरा नहीं कर सकती है।

हमें औपचारिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व और महिला कार्यकर्त्ता जो हमेशा परिवर्तन लाने और अपने आन्दोलनों के माध्यम से विकास के लिए विकल्प राजनीतियां विकसित करती हैं। यह दोनों की अत्यन्त आवश्यकता है तभी जाकर महिलाओं को समुचित रूप से प्रतिनिधित्व मिलेगा।

6.7 अधिकारों का पुन: आग्रह : महिलाओं द्वारा सतत संघर्ष

भारत में महिला आन्दोलन ने प्रमुख काम यह किया कि उन्होंने अपने अधिकारों का पुन: आग्रह या निर्धारण के लिए संघर्ष किया जिसमें समान नागरिकता तथा राजनीतिक और विकास प्रक्रिया में समान हिस्सेदारी जैसे महत्वपूर्ण विषय रहे हैं।

स्वतंत्रता के बाद 1970 के दशक के लोकतांत्रिक आन्दोलन से महिला आन्दोलन की छवि साफ प्रकट होती है। बिहार में जे.पी. आन्दोलन रेलवे कागारों की हड़ताल, 1975 में आपात्तकाल लागू होने पर लोकतांत्रिक लहर का उठना आदि शिक्षा और रोजगार में महिलाओं के लिए अवसर उपलब्ध होना आदि स्वतंत्रता के बाद की उत्पादकता मानी जा सकती है।

इसी दौरान विविध प्रकार के आन्दोलन जैसे कि अनौपचारिक क्षेत्रों में दहेज और बलात्कार, बालहत्या और लैंगिक भेदभावों तथा मुस्लिम महिला बिल आदि के विरुद्ध आन्दोलन करना और इसके साथ अनेक ऐसे माध्यम मिले जिनके कारण राज्य नीतियों में परिवर्तन कराने में प्रभावकारी रही है। यहां पर हम यहां विशेष रूप से ताड़ी विरोधी आन्दोलन और 1970 में चलाए गए "चिपको" पर्यावरण संबंधी आन्दोलनों का ज़िकर करना चाहेंगे।

यहां पर यह बताना बहुत ही आवश्यक है कि उपर्युक्त दोनों महत्वपूर्ण आन्दोलनों में ग्रामीण क्षेत्रों की निरक्षर और साधारण महिलाओं ने भाग लिया था जिनके सक्रीय आन्दोलनों ने राज्य की हानिकारक वैधानिक नीतियों का ढट कर विरोध किया था।

6.7.1 बेलन (रोलिंग-पिन) मोर्चा

एक अन्य बहुत महत्वपूर्ण आन्दोलन चलाया गया था जिसे "रोलिंग पिन मोर्चा" या बेलन मोर्चा का नाम दिया था। इस आन्दोलन के विषय में जानना बहुत आवश्यक है क्योंकि इसको चलाने वाली भी महिलाएं ही थी। इसका आरम्भ महाराष्ट्र में हुआ जो मंहगाई और आवश्यक वस्तुओं की कमी के विरुद्ध "एंटी प्राइज राइज वूमेनज कमेटी" द्वारा चला गया था जिसका निशान रोलिंग बिन यानि बेलन था। यह कमेटी वास्तव में महिलाओं की वास्तविक प्रतिनिधि बन गई थी जो प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के अधिकारों और उनके कार्यों के लिए संघर्ष कर रही थी। यद्यपि इस कमेटी का निर्माण विपक्षी पार्टियों के अनेक दलों की महिलाओं ने मिल कर बनाया था ताकि उस समय सभी महिलाओं को उसमें शामिल किया जा सके। इस कमेटी की और सभी महिलाओं ने ध्यान दिया तथा वे महसूस करती थी कि यही एक ऐसी कमेटी है जो घरेलू महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ रही है और उनकी समस्याओं को निपटाने का काम कर रही है। इस तरह से यह आन्दोलन गैर दलीय बन गया तथा बहुत ही प्रसिद्ध और सफल रहा है।

इस तरह के आन्दोलनों और संघर्षों से यह तो सिद्ध होता है कि महिलाओं की सक्रियता से सार्वजनिक एवं सामाजिक समस्याएं सुलझा जाने के लिए बहुत ही आवश्यक हैं और यदि महिलाएं चाहती हैं कि उन्हें समाज में उचित स्थान प्राप्त हो तो उन्हें संघर्ष करना हीं पड़ेगा। इन आन्दोलनों से यह भी सिद्ध होता है कि केवल नीचे के स्तर की महिलाओं की सक्रियता और उनकी भागीदारी महिलाओं के स्तर में परिवर्तन कर सकती है।

6.8 राजनीतिक प्रक्रिया में अभिनव मुद्दे

भारतीय संविधान में लैंगिक समानता का सिद्धांत उसके प्रस्तावना में दिया हुआ है। परन्तु वास्तव में जो लक्ष्य संविधान में रखा गया है उसमें अभी बहुत अन्तर है। और महिलाओं को उनका स्तर अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इस अन्तर को पाटने और उसका विश्लेषण भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति समानता के लिए 1974 तथा महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना 1988–2000 तथा इसी तरह से श्रमशक्ति रिपोर्ट, 1998 इत्यादि में किया गया है। इस तरह से देश की आधी आबादी की भागीदारी के बिना लोकतांत्रिक एवं समतावादी अवधारणा अर्थहीन और अप्रभावी हो जाती हैं। सामाजिक, आर्थिक निर्णय महिलाओं की आवश्यकताओं (परिवार से संबंधित) को ध्यान में न रखने पर जैसे कि जल, स्वास्थ्य, शिशु देखभाल आदि को विकास संबंधी नीतियों में नकार दिया जाता है। इसलिए महिलाओं का राजनीतिक शक्ति में भाग लेना आवश्यक क्योंकि इनके बिना व्यवस्था की प्रकृति में परिवर्तन नहीं हो सकता है। अत: 1970 के दशक में सीमान्तीकरण के संबंध में जागरूकता पदा हुई है। महिलाओं ने इस जागरूकता का भरपूर लाभ उठाया है जिसके कारण महिलाएं सक्रिय हुई हैं साथ ही चुनावी राजनीति में महिलाओं की भागीदारी की संख्या में अच्छी खासा वृद्धि भी हुई है।

6.8.1 भारत में महिलाओं की स्थिति पर समित की रिपोर्ट

यह बहुत ही दिलचस्प विषय है कि सन 1974 में भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति की रपोर्ट आई थी जिसमें विद्यायिकाओं में महिलाओं के आरक्षण के संबंध में विश्लेषण किया था। परन्तु उस समय इस विचार के स्वीकार नहीं किया गया था। इसके बाद सामाजिक जागरूकता के तहत पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण जैसे मुद्दों पर विचार करते हुए इस कार्य को आगे बढ़ाया गया।

6.8.2 73वां और 74वां संशोधन अधिनियम

उपर्युक्त संशोधनों के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण का मुद्दा सैद्धांतिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। 73वां संशोधन जो 1972 में हुआ था। इस में शासन, योजना और विकास के कार्यों को विकेन्द्रीकरण करने के लिए महिलाओं की भागीदारी को स्वीकार किया गया। इन प्रावधानों के परिणामस्वरूप 11 लाख महिलाओं को चुनकर आने का अवसर मिला जिसमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की महिलाएं भी शामिल हैं। इसके साथ ही तीन स्तर पर महिलाओं की अध्यक्ष के पदों पर भी नियुक्त किया अर्थात यह स्तर ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला पंचायते हैं। इस तरह से विभिन्न स्तरों के सदस्यों को सामयिक रूप से चुनाव होता है। जो भी हो यह व्यवस्था केवल संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों के माध्यम से संभव हुई है। जिसमें 33% सीटों की आरक्षण का प्रावधान पास किया गया हैं। इस लिए यह कहा जा सकता है कि वास्तव में पंचायती राज अधिनियम 1994 की बहुत तीव्र सुधारवादी विशेषताएं थी।

तथापि, यह महसूस किया गया कि महिलाओं के व्यापक विकास के लिए यह प्रावधान समुचित नहीं है। अनेक सूचनाएं मिली हैं कि अधिकतर महिला सरपंच निरक्षर हैं और इसके कारण उनके रिश्तेदार उनसे मनमर्जी के निर्णय करवाते हैं अथवा यूं कहें कि वे दूसरों के निर्देशों पर अपना कार्य करती हैं। इस तरह से कई बार यह धारणा भी बनी की इस आधार पर व्यवस्था को समाप्त ही कर दिया जाए। परन्तु इसके साथ यह भी सोचा गया कि यह समय

अभी संक्रमकाल का है और आगे चल कर महिलाएं अपने निर्णय स्वयं लेंगी इसमें कोई दो राय नहीं है। ऐसी भी संभावनाएं की इस व्यवस्था में स्कूली लड़कियां प्रवेश लें क्योंकि कुछ ऐसे भी परिवार थे जो अपनी लड़कियों को अपनी इच्छा से इस व्यवस्था में शामिल करने के इच्छुक थे। आगे क्या होगा, यह हम सब भलीभांति जानते हैं।

6.8.3 81वां संशोधन बिल

संसद और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण ने माहौल को काफी गरमा दिया है। दुर्भाग्य का विषय है कि आरक्षण बिल को सभी प्रकार के निहित स्वार्थियों ने जम कर विरोध किया है। अतः इस 33% आरक्षण में ही कुछ अन्य महिलाओं के लिए भी विशेष आरक्षण की मांग की गई है। अर्थात उदाहरण के लिए पिछड़े वर्गों की महिलाओं के लिए इसके अन्दर सीटों का आरक्षण हो साथ ही धार्मिक अलपसंख्यकों आदि की सीटें भी इसमें निर्धारित की जानी चाहिए। अभी तक विभिन्न राजनीतिक दलों के लोग इस मुद्दे पर एकमत नहीं हुए हैं। इसलिए आरक्षण का यह प्रस्ताव कम से कम कुछ दिनों के लिए तो अवश्य ही ठंडे बस्ते में रख दिया गया है।

सतत संघर्ष ..... महिला आरक्षण बिल पर रेल यात्रा का आयोजन।
सौजन्य : सी एस.आर., नई दिल्ली

क्या आप जानते हैं ?

राजनीतिक दलों में महिलाएं

भारत के संदर्भ में, यदि कोई व्यक्ति राजनीतिक दलों में महिलाओं की भूमिका तथा उनसे जुड़े महिलाओं से संबंधित मुद्दों के महत्व के संबंध में आकलन करने के लिए ये संकेत देखे जा सकते हैं जिससे विभिन्न दलों ने राज्यों में अपना शासन कायम किया है। उनकी नीतियों और प्रवृत्तियों का खुलासा होता है। निम्नलिखित तालिका में कुछ प्रमुख दलों में पुरुषों और महिला सदस्यों की संख्या को दर्शाया गया है। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति, भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) राष्ट्रीय कार्यकारिणी, जनता दल (जेडी) केन्द्रीय कार्यालय अधिकारी, भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति, मार्क्सिष्ट (सीपीआई) एम तथा भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी की राष्ट्रीय समिति (सीपीआई)।

नाम	महिलाएं	पुरुष	महिलाओं का प्रतिशत
कांग्रेस (आई)	2	17	11.7
बीजेपी	8	62	12.5
जेडी	3	25	12.0
सीपीआई (एम)	3	58	5.1
सीपीआई	2	18	11.1

स्रोत विभिन्न पार्टी कार्यालय

यह आंकड़े बताते हैं कि निर्णय लेने वाली प्रमुख पार्टियों में सीपीआई (एम) में 5.1% से लेकर बीजेपी की 12.5% की सीमाओं में आबहद है। दूसरे दलों के प्रतिशत इसी संख्या के बीच में है। इससे जाहिर होता है कि महत्वपूर्ण दलों में महिलाओं की क्या स्थिति है। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि सभी दल पुरुष प्रधान है तथा उससे ही शासित हैं इसलिए यह कहा जा सकता है कि महिला सशक्तिकरण के मामले में ये दल इनका दीर्घकालीन साथ नहीं देंगे।

जरा सोचिए-2

1) क्या आप सोचते हैं कि महिलाओं के आरक्षण के साथ पंचायती राज संस्थाए महिलाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालेगी ? चर्चा कीजिए।

2) आपके विचार से सार्वजनिक जीवन की विस्तृत भागीदारी में प्रमुख समस्याए क्या है?

क्या आप जानते हैं ?

मुस्लिम महिलाओं का कहना है कि वे धर्म पर आधारित कोटा नहीं चाहती हैं।

उत्तर भारत की सामाजिक कार्यकर्त्ता मुस्लिम महिलाओं ने प्रस्तावित महिलाओं को कोटा बिल में मुस्लिम और अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) की महिलाओं के लिए प्रमुख दलों द्वारा आरक्षण की मांग करने पर अपनी चिन्ता जताते हुए विरोध प्रकट किया है। "समूचे भारत में महिलाए लगभग एक जैसी समस्याओं का सामना करती है। इसलिए हम नहीं चाहती है कि राजनीतिक दल हमें धर्म और जाति के नाम पर विभाजित कर दें। कुछ राजनीतिक लोग मुस्लिम महिलाओं और अन्य पिछड़ी जातियों की महिलाओं के लिए प्रस्तावित बिल में कोटे की मांग रख कर इस बिल को पास नहीं कराने में अड़चन डालना चाहते हैं। ताकि वे आगे अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के मुद्दे को पूरा कर सकें।"

यह बयान आज राजधानी में एक संवादाता सम्मेलन में दिया। सामाजिक कार्यकर्ताओं का कहना है कि राजनीतिक लोग अपने निहित स्वार्थों के कारण वे प्रयास कर रहे हैं कि किसी तरह से इस बिल को ताक में रखवा दिया जाए क्योंकि वे नहीं चाहते हैं कि निर्धारित कोटा शासन में भरा जाए अथवा उन्हें शासन में भागीदारी दी जाए।

'ये नेता इतने वर्षों से कहा थे ? इन लोगों को हमारी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं की ओर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए था जिन्हें हम दैनिक जीवन में भुगतते हैं। और अब जब महिलाओं के लिए आरक्षण में वृद्धि करने का एक ठोस कदम उठा लिया गया है तो ये नेता हमारे ही कंधों पर बन्दूक रख कर चला रहे हैं। इससे पहले तो

उन्होंने कभी भी मुस्लिम महिलाओं के विचारों और उनकी आवश्यकताओं को जानने का प्रयास नहीं किया ?''

भोपाल से नारीवादी महिला समिति की एक सदस्य सुश्री जुलेखा ने कहा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने कहा है कि वे चाहती हैं कि धर्म और जाति के आधार पर आरक्षण के बिना प्रस्तावित बिल शीघ्र सदन के पटल पर रखा जाए और उसे पारित किया जाए। 'ये राजनीतिज्ञ जानते हैं कि यदि इस मुद्दे को धार्मिक आधार पर ले लिया जाए तो संविधान में काफी संशोधन करना पड़ेगा और हो सकता है धार्मिक महिलाएं भी इस आरक्षण की मांग उठाएं। और यह संभव नहीं है और फिर बिल पारित नहीं होगा।''

लखनऊ से सुश्री जरीन ने कहा।

स्रोत : हिन्दुस्तान टाइम्स, जुलाई 1988

6.9 सारांश

इस इकाई में आपने भारत के संदर्भ में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के बारे में अध्ययन किया। सबसे पहले हमने आपको राजनीतिक भागीदारी की संकल्पना और परिभाषा से परिचित कराया है। आपको भारतीय महिलाओं के औपचारिक और अनौपचारिक शक्ति संरचना में शामिल होने के मुद्दे का परिचय कराया गया। आपने यह भी पढ़ा कि किस प्रकार हमारे समाज में पुरुषों का वर्चस्व है और पितृसतात्मक समाज भारतीय महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया से लगातार वंचित रखने का प्रयास कर रहा है। राष्ट्रीय संसद और राज्य की विधान सभाओं में महिलाओं के आरक्षण के मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की गई है। आरक्षण जैसे सकारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस बात पर भी बल दिया गया है कि यदि महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के लिए लगातार संघर्ष करते रहना चाहिए जब तक कि उन्हें समान अधिकार प्राप्त न हो जाए।

6.10 प्रस्तावना

शक्ति: यह वह स्थिति या सामर्थ्य है जिसमें कोई स्त्री/पुरुष दूसरों को प्रभावित कर सके।

विचारधारा: विश्वास, प्रवृत्तियां, मत जो व्यवस्था राजनीतिक दल, समूह परिवार या व्यक्तिगत की मार्गदर्शन और निदेश दे।

मूल अधिकार : राज्य द्वारा अपने नागरिकों को कुछ अधिकारों की गारन्टी देना। इसमें नागरिक स्वतंत्रता जैसे कि विचार व्यक्त करने स्वतंत्रता कानून आदि के समक्ष समानता के अधिकार स्वतंत्रा।

मताधिकार: मत देने का अधिकार

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इंदु अग्निहोत्री, वीना मजुमदार *"चेंजिंग दि टर्मस ऑफ पालिटिकल डिस्कोर्स''* लोक कल्याण बुलेटीन, जुलाई-अक्तूबर 1995

कस्तूरी, लीला तथा वीना मजुमदार 1997, *वूमेन एंड इंडियन नेशनलिज्म*, दिल्ली आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।

इकाई 7 शिक्षा तक पहुंच

रूपरेखा

7.0 लक्ष्य और उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 महिला शिक्षा की स्थिति
  7.2.1 महिला साक्षरता
  7.2.2 शिक्षा और बालिका
7.3 पंचवर्षीय योजनाएं
7.4 अनौपचारिक शिक्षा : एक सफल प्रयोग
7.5 तकनीक और व्यावसायिक शिक्षा
7.6 हस्तक्षेप की भावी रणनीतियां
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य :

- भारत में शिक्षा तक महिलाओं की पहुंच और उसकी प्रकृति का विश्लेषण करना है;
- शिक्षा तक महिलाओं की पर्याप्त पहुंच की कमी के कारणों/कठिनाइयों का अध्ययन करना है; और
- शिक्षा तक उनकी पहुंच में सुधार लाने के लिए अनिवार्य हस्तक्षेपों के बारे में जानना है।

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम महिलाओं की शैक्षिण प्रस्थिति की चर्चा करेंगे। यह हम सब जानते हैं कि जब भारत में शिक्षा की पहुंच की बात आती है तो हमारे सामने बहुत ही धूमिल तस्वीर आती है। सांख्यिकी महिला शिक्षा की मलिन तस्वीर की ओर भी बेले प्रदान करती है।

हमने कुछ महत्वपूर्ण कारणों पर नजर डालने की कोशिश की है जिनकी वजह से महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में इतनी पिछड़ी हुई है। जहां एक तरफ बालिकाओं/महिलाओं की शिक्षा के संबंध में सामाजिक प्रवृत्ति महत्वपूर्ण कारण है वहीं सरकारी नज़रिया और सरकारी पहलें बहुत ही देर लगाने वाली होती है। महिला शिक्षा की इस जटिल समस्या को समझने की भी कोशिश की गई है।

अनौपचारिक शिक्षा के संबंध में हुए प्रयोगों पर भी हम नजर डालेंगे। आखिरी भाग में हम हस्तक्षेप की भावी रणनीतियों की चर्चा करेंगे।

7.2 महिला-शिक्षा की स्थिति

शिक्षा ने हमेशा से ही महिलाओं को शक्तिकरण और स्वाधीनता प्रदान करने जैसे भूमिका प्रदान की है और इसका सभी ने समर्थन भी किया है। लोगों की भलाई में शिक्षा का हमेशा

ही महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है विशेषकर महिलाओं के संबंध में। सार्वजनिक क्षेत्रों जहां कि महिलाएं जीविका कमा सकती है वहां शिक्षित महिलाओं की न केवल ज्यादा पहुंच है बल्कि इसका प्रभाव उसके अपने व्यक्तित्व पर भी पड़ता है। विभिन्न कारणों और प्रभावों के इस जटिल जाल में महिलाओं की प्रस्थिति में शिक्षा निश्चित ही एक बहुत महत्वपूर्ण सूचक हैं।

इस भाग में महिला-साक्षरता दर को नजरअंदाज करने के रवैये पर हम एक सरसरी निगाह डालेंगे और विभिन्न क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर भी नजर डालेंगे। बालिका शिक्षा के आलोचनात्मक क्षेत्र की भी चर्चा की जाएगी।

7.2.1 महिला साक्षरता

शिक्षा को हमेशा से ही विकास के एक अति-महत्वपूर्ण सामाजिक सूचक के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। यूं तो हम नई सहस्त्राब्दि में प्रवेश करने जा रहे हैं, मगर देश की सिर्फ 52.21 प्रतिशत जनसंख्या ही साक्षर कही जा सकती है। इससे यही स्पष्ट संकेत मिलता है कि जनसाधारण को बुनियादी शिक्षा जैसी सुविधाएं सुलभ नहीं हैं। तिस पर महिलाएं तो पुरुषों से अधिक वंचित हैं जो नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जाता है:

तालिका 1 : भारत में साक्षरता की दर: 1991 (प्रतिशत में) (आयु 7+)

	कुल	ग्रामीण	शहरी
कुल	52.21	44.69	73.08
पुरुष	64.13	57.87	81.09
महिला	39.29	30.62	64.05

स्रोत: भारतीय जनगणना, 1991

इस तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में विद्यमान सामाजिक-लिंग पूर्वाग्रहों और भेदभावों की अभिव्यक्ति किस प्रकार बुनियादी सामाजिक सेवाओं में परिलक्षित होती है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

भारत में महिला शैक्षिक स्थिति का स्थानिक वितरण भी समरूप नहीं हैं। महिला साक्षरता-दरों में आंचलिक और ग्रामीण-शहरी भिन्नताओं का विश्लेषण करने पर इसकी अच्छी तरह से पुष्टि हो जाती है (तालिका-2)। राज्यों में अधिकतम साक्षरता दर केरल (इस राज्य में स्त्री-पुंजाति अनुपात भी सबसे अनुकूल है) में पाई जाती है उसके बाद मिजोरम और गोवा का स्थान है। न्यूनतम साक्षरता दर वाले बिहार मुख्य राज्य राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश हैं। इससे स्पष्ट है कि इन राज्यों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति और उनकी शैक्षिक स्थिति के बीच स्पष्ट संबंध हैं। वस्तुत: यही कारण है कि महिलाओं की शैक्षिक स्थिति को उनकी सामाजिक स्थिति का एक अति-संवेदनशील सूचक माना जाता है।

तालिका-2 से महिला साक्षरता में शहरी-ग्रामीण अंतर भी अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाता है। शहर में 64.05 प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं जबकि गांवों की 30.62 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर हैं। केरल ही एकमात्र ऐसा राज्य है जिसमें उच्चतम ग्रामीण साक्षरता (85.12 प्रतिशत) है जो कि राजस्थान की निराशाजनक निम्न साक्षरता दर (11.59 प्रतिशत) के एकदम विपरीत है।

इसलिए इन रुझानों के कारणों की, मौजूदा हस्तक्षेपों और भावी रणनीतियों की गहराई से जांच-पड़ताल करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

तालिका-2: भारत में महिला साक्षरता की दर, 1991

क्रम संख्या	राज्य	कुल	ग्रामीण	शहरी
	भारत	39.29	30.62	64.05
1.	आंध्र प्रदेश	32.72	23.92	56.41
2.	अरुणाचल प्रदेश	29.69	25.31	62.23
3.	ओसाम	43.03	39.19	73.32
4.	बिहार	22.89	17.95	55.94
5.	गोवा	67.09	62.87	73.38
6.	गुजरात	48.64	38.65	67.70
7.	हरियाणा	40.47	32.51	64.06
8.	हिमाचल प्रदेश	52.13	42.79	78.32
9.	कर्नाटक	44.34	34.76	65.74
10.	केरल	86.17	85.12	89.06
11.	मध्य प्रदेश	28.85	19.73	58.92
12.	महाराष्ट्र	52.32	40.96	70.87
13.	मणिपुर	47.60	43.26	58.67
14.	मेघालय	44.85	37.12	77.32
15.	मिज़ोरम	78.60	67.03	91.61
16.	नागालैंड	54.75	50.36	79.10
17.	उड़ीसा	34.68	30.79	61.18
18.	पंजाब	50.41	43.85	66.12
19.	राजस्थान	20.44	11.59	50.24
20.	सिक्किम	46.69	43.98	74.94
21.	तमिलनाडू	51.33	41.84	69.61
22.	त्रिपुरा	49.65	44.33	76.93
23.	उत्तर प्रदेश	25.31	19.02	50.38
24.	प. बंगाल	46.56	38.12	68.25
संघीय क्षेत्र				
1.	अंदमान और निकोबार द्वीपसमूह	65.46	61.99	75.08
2.	चंडीगढ़	72.34	47.83	74.57
3.	दादर और नगर हवेली	26.98	23.30	68.42
4.	दमन और दीयू	59.40	46.70	72.35
5.	दिल्ली	66.90	52.15	68.54
6.	लक्षद्वीप	78.89	68.72	76.11
7.	पांडेचेरी	65.63	53.96	71.98

स्रोत: भारतीय जनगणना, 1991

7.2.2 शिक्षा और बालिका

स्वतंत्रता के बाद से "सभी के लिए शिक्षा" यूं तो एक मूल-मंत्र रहा है, मगर लड़कियों और लड़कों का भेददर्शी नामांकन दरें इस आदर्श लेकिन अप्रभावी भावना को धता बताती है। यह नीचे दी गई तालिका को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है।

तालिका-3: 7-14 आयु-वर्ग में साक्षरता की दर (प्रतिशत), 1991 (%).

आयु (वर्षों में)	साक्षरतादर		
	कुल	पुरुष	महिला
7-14	64.18	71.56	56.13

स्रोत: भारतीय जनगणना, 1991

बालिका की शिक्षा और परिवार की आर्थिक स्थिति दोनों एक दूसरे से सीधे जुड़े हुए हैं। एनएसएस ..... द्वारा महाराष्ट्र से एकत्र किए गए आंकड़ों (1980-81) के अनुसार आर्थिक और सामाजिक रूप से वंचित व उपेक्षित घरों बालिकाओं के नामांकन की दरें न्यूनतम दर से की गई थी। इन घरों की एक तिहाई से भी कम बालिकाएं स्कूल पढ़ने जा रही थीं। अनुसूचित जनजातियों की बालिकाओं की माध्यमिक विद्यालय नामांकन की दर मात्र 19.20 प्रतिशत थी।

चल पड़े रोजगार पर, स्कूल की तरफ नहीं
सौजन्य : प्रो० कपिल कुमार, इग्नू, नई दिल्ली

स्कूल छोड़ने वाले विद्यार्थियों में अधिकांश बालिका होती है। इससे अपनी बेटियों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों (माता-पिता) की बेरुखी के साथ-साथ और सामाजिक सोच के बुनियादी अंतर का भी पता चलता है। अनामांकित (यानी जिन बच्चों का स्कूलों में दाखिला कभी नहीं किया गया) और स्कूल छोड़ने वाले बच्चे अधिकांशत: उन परिवारों के होते हैं जिनकी आमदनी और परिस्थितियां बहुत कम हैं और जो जाति और व्यावसायिक क्रम-परंपरा में जो सबसे निचली श्रेणी में आते हैं। खेतिहर मजदूरों, छोटे किसानों और कारीगरों की बच्चियों के स्कूल जल्दी छोड़ने की संभावनाएं अपेक्षाकृत अधिक होती है। यही स्थिति शहर की मलीन बस्तियों में रहने वाले परिवारों की बालिकाओं की है जो निम्न-स्थिति वाले पेशों या असंगठित क्षेत्र में जीविकोपर्जन कर रहे हैं।

बालिकाओं के स्कूल न जाने या फिर स्कूल छोड़ देने का सबसे बड़ा कारण घर के भीतर और उसके बाहर दोनों जगह बालश्रम की आवश्यकता है। अधिकांश कामकाजी बालिकाएं अर्थव्यवस्था के बुनियादी क्षेत्र (प्राइमरी सेक्टर) में श्रम कर रही हैं, जिसमें वे खेती-बाड़ी और संबद्ध क्रिया-कलापों में लगी हैं। अध्ययनों से यह प्रमाण मिलते हैं कि वर्ष 1971 और 1981 के बीच ग्रामीण इलाकों में महिला बाल श्रम में बड़ा तेज उछाल आया था (बनर्जी, 1989)। इससे यही बात सामने आई है कि जो परिवार जीविकोपार्जन के लिए महिला श्रम पर आश्रित हैं वे उच्च-उत्पादक प्रौद्योगिकी से उपजी श्रम की बढ़ती मांग की पूर्ति करने के लिए अपने वयस्क और बाल महिला सदस्यों को काम पर लगा रहे हैं। मगर वहीं ये परिवार अपने बेटों को स्कूल भेजते हैं।

देश में गैर-कामकाजी बालिकाओं जो स्कूल नहीं जाती की संख्या यद्यपि चार करोड़ है पर इनसे घर के और बाहर के काम में योगदान करने की अपेक्षा की जाती है। पानी लाना, ईंधन लाना, खाना बनाना, घर की साफ-सफाई करना, बर्तन मांजना, कपड़े धोना और अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करना, जैसे तमाम काम ये बालिकाएं ही करती हैं। इसीलिए दिहाड़ी मजदूरों के रूप में लड़कों की अपेक्षा कार्य करने वाले लड़कियों की संख्या बहुत कम है लेकिन वे अपने घर-परिवार के रख-रखाव में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। यही कारण है कि उन्हें शिक्षित बनाने का अवसर देना अधिक महंगा माना जाता है।

श्रम-स्थिति के आधार पर स्कूल जाने वाले बच्चों (7-14 वर्ष) की संख्या (तालिका-4) का विश्लेषण करने से यह बात विशेष रूप से स्पष्ट हो जाती है।

तालिका-4 : स्कूल जाने वाले बच्चों की श्रम स्थिति के अनुसार संख्या, 1991 (%)

श्रमिकों की श्रेणी	यौन-लिंग	कुल	ग्रामीण	शहरी
मुख्य श्रमिक	कुल	100	100	100
	बालक	69	69	70
	बालिका	31	31	30
सीमांत श्रमिक	कुल	100	100	100
	बालक	62	63	53
	बालिका	38	37	47
गैर-श्रमिक	कुल	100	100	100
	बालक	59	61	54
	बालिका	41	39	46

स्रोत : जनगणना 1991

अपने अनुभव से सीखें-1

अपने क्षेत्र में किसी सरकारी स्कूल जाइए और पता लगाइए कि हर कक्षा में दाखिला प्राप्त लड़के-लड़कियों की दर क्या है।

बालिकाओं के शैक्षिक स्तर कम होने का एक अन्य कारक है कि बालिका की शिक्षा से बदले में लाभ कम प्राप्त होता है। लड़के की शिक्षा को परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को

उन्नत करने वाला निवेश माना जाता है। यही नहीं इसे माता-पिता के लिए वृद्धावस्था की सुरक्षा यानी बुढ़ापे के सहारे के रूप में भी देखा जाता है। लेकिन वहीं बालिकाओं की नियति में दूसरे परिवारों में उनका विवाह होना तय है और इसीलिए उनकी शिक्षा से माता-पिता को कोई प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ मिलता नजर नहीं जाता। फिर तरुण लड़कियों को स्कूलों से इसलिएं भी निकाल लिया जाता है कि पुरुष अध्यापकों और विद्यार्थियों को उनके लिए "सामाजिक खतरा" समझा जाता है।

इस प्रकार बालिकाओं को औपचारिक शिक्षा से वंचित रखने में समाजीकरण, सामाजिक-लिंग भूमिकाएं और यौन संबंधी लोकचार ये सभी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

क्या आप जानते हैं ?-1

कुछ खोज इस प्रकार हैं

I साक्षरता दर

1 साक्षरता-स्तर राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में निम्नतर है और केरल में यह उच्च है, उत्तर-पूर्वी राज्यों, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल तथा राजस्थान कुछ ऐसे राज्य हैं जिनमें लिंग-साक्षरता दर में सबसे अधिक अंतर पाया जाता है।

2 आयु के साथ-साथ साक्षरता दर में भी बढ़ोतरी होती है लेकिन लिंग विषमता के मामले में यह सच नहीं है। भूमि आकार समूहों में भी साक्षरता दर यही रूप लेता है, भूमिहीन मज़दूरों (भत्ता उपार्जक) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों में निम्न साक्षरता दर पाई जाती है। उच्च साक्षरता दर और निम्न लिंग विषमता वेतनभोगी वर्ग में है लेकिन महिला साक्षरता मुख्यतः सभी सामाजिक समूहों में कम है।

3 ग्रामीण भारत में लगभग 17 प्रतिशत व्यस्क पुरुष और 9 प्रतिशत महिलाएं मिडिल स्कूल शिक्षा पूरा कर पाते हैं, यानि कि, औसतन सिर्फ 52 लड़कियां 100 लड़कों पर। लिंग विषमता राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में उच्च है तथा ज्यादातर राज्यों में निम्न आय वर्ग में भी अधिक है।

II नामांकन दर

4 आय और भूमि-अधिकार के आकार के साथ-साथ नामांकन दर भी बढ़ती है। वेतन भोगी तथा पेशेवर वर्गों में यह दर उच्च है, और लगभग सभी राज्यों में यह दर भत्ता अर्जित वर्गों में कम है। राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़िसा के मुकाबले पंजाब में नामांकन दर उच्च है। जबकि अनुसूचित जनजातियों में नामांकन दर निम्नतर है (60 प्रतिशत) हिंदुओं में यह दर 78 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश और राजस्थान में लिंग विषमता सबसे ऊंचे है, जबकि साल दर साल पंजाब और हरियाणा में नामांकन दर उच्चतम रही है।

III विच्छेदन दर

5 ग्रामीण - भारत की औसतन विच्छेदन दर 6 प्रतिशत है। तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक और उड़ीसा में यह उच्च है और केरल तथा हिमाचल प्रदेश में यह निम्न है।

6 मौजूदा विचारधारा के विपरीत 6-9 साल के बच्चों में ड्राप आउट (स्कूल जाना बंद

कर देना) या बिच्छेदन दर नगण्य (लगभग 1 प्रतिशत) हैं, यह 6-11 साल के बच्चों में 2.1 प्रतिशत तक बढ़ जाती है तथा 12 साल तक के बच्चों में 13 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

7. उच्च आमदनी समूहों में विच्छेदन दर कम है। भूस्वामित्व, पेशेवर, पुरुषों तथा हिंदुओं संपूर्ण रूप में पूरे देश में विच्छेदन दर एक तरफ़ तो कम हो रही है, किंतु कुछ राज्यों जैसे तमिलनाडु और केरल में इसमें बढ़ने की प्रवृति नजर आ रही है और पश्चिमी बंगाल, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक में यह दर अस्थिर है जो घटती बढ़ती रहती है।

IV. निजी शिक्षा प्राप्ति

8. लगभग 68 प्रतिशत बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते हैं जबकि 22 प्रतिशत सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में पढ़ते हैं। जबकि 11 प्रतिशत लड़के निजी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करते हैं, सिर्फ 8 प्रतिशत लड़कियां ही इन स्कूलों में जा पाती है। निजी स्कूलों में शिक्षा पाने के इच्छुक बच्चों का अनुपात 1986 में 2 प्रतिशत से 1994 में 10 प्रतिशत हो गया है। उत्तर प्रदेश, पंजाब और हरियाणा में यह वृद्धि काफी पुष्ट है। पश्चिम बंगाल में तीन चौथाई से ज्यादा छात्र इन सहायता प्राप्त स्कूलो में जाते हैं।

V. शिक्षा प्राप्ति पर खर्चा

9. कुल घरेलू खर्चा प्रारंभिक शिक्षा पर 378 रु. प्रति छात्र प्रति साल आता है। 1992 में यह संख्या समानत: 464 रु. थी। सरकारी स्कूलों में शिक्षा का खर्चा 300 रु. प्रति छात्र है, 380 रु. प्रति छात्र सहायता प्राप्त स्कूलों में और 735 रु. प्रति छात्र निजी-स्कूलों में है।

10. मौजूदा स्तर की प्रारंभिक शिक्षा भारत में बच्चों को देने पर 236,348 मिलियन खर्चा आता है जो 3.3 प्रतिशत कुल वह के बराबर है। अभी मौजूदा खर्चा GDP का सिर्फ 1.7 प्रतिशत ही है।

स्रोत: इंडिया वूमेन डिपेलपमेंट अपरोच, अ शेरिफ, अबूसेलिह, 1999, ओक्सफोर्ड।

7.3 पंचवर्षीय योजनाएं

पहली पंच वर्षीय योजना से सामाजिक न्याय और नियोजित विकास के साथ वृद्धि-विकास के राष्ट्रीय लक्ष्यों को ठोस स्वरूप मिला। इसमें शिक्षा को संपूर्ण राष्ट्रीय प्रयास एक हिस्से और योजना के लक्ष्यों की पूर्ति के साधन के रूप में माना गया। इसमें महिला शिक्षा के प्रचार में सामने आने वाली समस्याओं का उल्लेख तो अवश्य किया गया था लेकिन इसके लिए आवश्यक विशेष प्रयासों की रूपरेखा नहीं बनाई गई। दूसरी योजना में भी बालिका शिक्षा की समस्याओं को अत्यंत महत्वपूर्ण माना तो जरूर मगर इसका भी ध्यान मुख्यत: शैक्षिक सुविधाओं के वृहत्तर प्रसार पर ही अधिक केन्द्रित रहा।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में 1959 में गठित की गई राष्ट्रीय समिति के सुझावों को शामिल किया गया, इसके फलस्वरूप महिलाओं के लिए बनाई गई योजनाओं और कार्यक्रमों को निश्चित प्रोत्साहन मिला जैसे महिलाओं के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रम, शिशु कल्याण कार्यक्रम, बालसेविका प्रशिक्षण इत्यादि। इस योजना में उन्हें नि:शुल्क पाठ्य पुस्तकों, छात्रवृत्तियों और वर्दियां के रूप में प्रोत्साहन भी दिए गए। आगे की योजनाओं में यह सिलसिला जारी रहा।

छठी पंच वर्षीय योजना महिला शिक्षा के क्षेत्र में एक मील का पत्थर थी, जिसमें भारतीय महिलाओं की स्थिति के अध्ययन के लिए गठित की गई समिति के निष्कर्षों और सुझावों को स्थान मिला। इसमें शिक्षा में वृहत्तर निवेश के विशिष्ट क्षेत्रों को परिभाषित किया गया जैसे इसमें महिला साक्षरता, देहाती लड़कियों के लिए अनौपचारिक प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, सेवाएं प्रदान करने के लिए सहायक समेकित बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) जैसे समाज कल्याण कार्यक्रम चलाए गए जिससे स्कूलों में लड़कियों का नामांकन बढ़े और बच्चों के उत्थान के लिए बाल सहायक सेवाएं प्रदान की जा सकें। इनके अलावा इस योजना के तहत जनजातीय और अनुसूचित जातियों के लिए और बालिका शिक्षण संस्थानों को प्रभावशाली बनाने के लिए विशेष प्रावधान किए गए।

इसके बाद की योजनाओं में भी महिलाओं और बालिकाओं के लिए विशेष योजनाओं के महत्व को दोहराते हुए उनकी औपचारिक शिक्षा को व्यावसायिक यानी रोजगारमूलक प्रशिक्षण से जोड़ने, अनौपचारिक शिक्षा योजनाओं, प्रौढ़ शिक्षा और ऐसे ही अनेक प्रासंगिक विधियों के जरिए उन तक पहुंचने पहुंचाने का प्रयास किया गया। वस्तुतः वर्ष 1999 में भारत सरकार ने सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाली छात्राओं को कई तरह के प्रोत्साहन देने की घोषणा की।

स्वतंत्रता के 50 वर्षों के बाद भी ऐसा कदम यही तथ्य उजागर करता है कि तमाम सरकारी हस्तक्षेप महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों के प्रभुत्व को रोकने में असफल रहे हैं।

जरा सोचिए-2

1) आपके अनुसार अनपढ़ औरतों की भारत में इतनी बड़ी तादाद के क्या मुख्य कारण हैं ?

2) शिक्षा में महिलाओं की पहुंच को बेहतर बनाने के लिए पांच सुझाव दीजिए।

7.4 अनौपचारिक शिक्षा : एक सफल प्रयोग

बच्चों की शिक्षा के लिए बनाया गया अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम साक्षरता को बढ़ाने की दिशा में एक सार्थक पहल है। इस कार्यक्रम से उन बच्चों को अंश-कालिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता है जो परिस्थितिवश "औपचारिक विद्यालय" को छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं। इस तरह इस कार्यक्रम का सबसे अधिक लाभ बालिकाओं को मिल रहा है स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में जिनकी संख्या सबसे अधिक है। वर्ष 1980 से शिक्षा में पिछड़े राज्यों को अपने यहां बालिकाओं को अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करने के लिए विशेष वित्तीय सहायता दी जा रही है। इस कार्यक्रम के अतर्गत 9 से 14 वर्ष के ऐसे बच्चों के लिए कक्षाएं शाम को दो से तीन घंटे के लिए चलाई जाती हैं, जो या तो स्कूल कभी गए ही नहीं, या जिन्होंने स्कूल बीच में छोड़ दिया है। इसमें पाठ्यक्रम लचीला और विद्यार्थियों की जरूरतों के अनुसार होता है।

राजस्थान के तिलोणिया में सक्रिय स्वयंसेवी संगठन सोशल वर्क एंड रिसर्च सेंटर ने अनौपचारिक शिक्षा का सफल प्रयोग किया है। इस स्वयंसेवी संगठन ने अपना "रात्रिकालीन विद्यालय" 1975 में तब शुरू किया था, जब तक भारत सरकार ने इस तरह के विकल्प की आवश्यकता के बारे में सोचा तक नहीं था। ये रात्रिकालीन विद्यालय सिर्फ उन्हीं बच्चों के लिए हैं जो दिन में खेतों में भाग करते हैं, पशुओं को चराने ले जाते हैं, घर के काम काज करते हैं निर्माण कार्य स्थलों या खेतों में मजदूरी करते हैं। ये बच्चे सरकारी या

"औपचारिक विद्यालयों" में पढ़ने नहीं जा पाते हैं। रात्रिकालीन विद्यालय इस श्रेणी के बच्चों और उन बच्चों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करते हैं जिन्होंने स्कूल बीच में छोड़ दिया हो। यहां यह बताने की जरूरत नहीं है कि इन विद्यालयों में 70 से 90 प्रतिशत विद्यार्थी बालिकाएं हैं। पाठ्यक्रम सरल, सरस और ग्रामीण जीवन शैली के लिए प्रासंगिक बनाया गया है।

इनमें बच्चों को ऐसी विधि से पढ़ाया जाता है जो लीक से हटकर है और जिसमें बच्चे स्वयं हिस्सा लेते हैं। इन विद्यालयों का सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इन से पढ़ाई पूरा कर लेने पर अगर विद्यार्थियों को अवसर मिले तो वे सरकारी विद्यालयों में (छठी कक्षा में) प्रवेश पाने की पूरी योग्यता रखते हैं। इन विद्यालयों में विद्यार्थियों की भारी उपस्थिति अपने आप में इनकी सफलता का जीता-जागता प्रमाण है।

इसी तरह सरकार ने 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन भी शुरू किया जिसमें प्रौढ़ निरक्षर लोगों को प्रौढ़ साक्षरता कक्षाओं के जरिए साक्षर बनाने का प्रयास किया गया था। मगर यह कार्यक्रम अपने लक्ष्यों की प्राप्त करनें में असफल रहा। इसे संशोधित कर इसमें महिला शिक्षकों की संख्या बढ़ा दी गई है ताकि
अधिक से अधिक संख्या में महिलाएं इस कार्यक्रम में शामिल हो सकें।

बच्चों के अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का एक बड़ा ही रोचक परिणाम राजस्थान में देखने को मिला है। राजस्थान में इसे शिक्षा कर्मी के नाम से चलाया गया है। इस कार्यक्रम के फलस्वरूप बच्चों को स्कूलों में पहुंचाने वाले प्रौढ़ व्यक्तियों में भी विद्यालय के पाठ्यक्रम में रुचि जगी। ये प्रौढ़ व्यक्ति प्राय: बच्चों के माता-पिता ही होते थे। इस बढ़ती रुचि के चलते ये व्यक्ति भी पाठ्यक्रम में अधिकाधिक भाग लेने लगे। अंतत: इन्होंने भी अनाधिकारिक रूप से साक्षरता अर्जित कर ली है।

7.5 तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा

भारत में शिक्षण संस्थानों का एक त्रि-स्तरीय नेटवर्क विद्यमान है जो तकनीकी और व्यावसायिक या रोजगारमूलक शिक्षा प्रदान करता है। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई) मिडिल या हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त लोगों को हस्तशिल्प का और व्यवसाय-मूलक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। पॉलिटैनिक तकनीशियनों को प्रशिक्षित करते हैं और प्रौद्योगिकी या इंजीनियरिंग संस्थान इंजिनियरों और प्रौद्योगिकविदों को प्रशिक्षण देते हैं। महिलाओं की सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए महिलाओं के लिए पृथक आईटीआई की स्थापना भी की गई है। आईटीआई जैसे रोजगारमूलक प्रशिक्षण संस्थानों की अक्सर यह कह कर आलोचना की जाती है कि ये महिलाओं के लिए ऐसे पाठ्यक्रम चलाते हैं जो उन्हें "महिलाओं के परंपरागत व्यवसायों" की ओर ले जाते हैं (जैसे सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, हेयर ड्रैसिंग यानी केशसज्जा, कैटरिंग यानी पाककला, इत्यादि। इस के प्रतिकार के लिए नोर्वे की विकास एजेंसी 'नोराड' की सहायता से भारत सरकार ने एक अनूठा कार्यक्रम चलाया जिसमें महिलाओं को गैर-पारंपरिक दक्षताओं में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई थी इसमें इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों, उपकरणों के कलपुर्जे जोड़ना; बिजली के सामान की मरम्मत करना, कम्प्यूटर चलाना इत्यादि कार्य सिखाए गए। इस कार्यक्रम को भी उन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ा जो आम तौर पर अन्य सरकारी कार्यक्रमों में आती हैं जैसे खराब योजना और कार्यान्वयन, भ्रष्टाचार इत्यादि। इस लिए कथनी और करनी के अंतर को पाटना जरूरी है ताकि ऐसे तमाम कार्यक्रम सफल और कारगर हो सकें। इस तरह के अनेक कार्यक्रम भी खराब कार्यान्वयन के कारण और महिलाओं को इनकी जानकारी न होने के कारण असफल रहे हैं।

7.6 हस्तक्षेप की भावी रणनीतियां

इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार नेक इरादों के बावजूद देश की जनता को और विशेषकर महिलाओं को बुनियादी शिक्षा प्रदान करने में नाकाम रही है। नारी के जीवन में शिक्षा कितनी महत्वपूर्ण है, इसे दोहराने की जरूरत नहीं है। शिक्षा ही महिलाएं को अन्य संसाधनों तक पहुंचने में सक्षम हो सकती है। यह उनमें जानकारी हासिल करने की क्षमता उत्पन्न करती है जिसमें उनके कानूनी अधिकार और संवैधानिक प्रावधानों से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी शामिल है।

शिक्षा उनके लिए आर्थिक अवसरों के द्वार खोलती है। शिक्षा ही उन्हें बेहतर शारीरिक स्वच्छता, उन्नत पोषण प्रचलनों की ओर ले जाती है और वे अधिक प्रभावशाली ढंग से अपने और परिवार के सदस्यों के लिए चिकित्सा सहायता प्राप्त कर सकती हैं। इससे उनकी राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि होती है जो पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को उपलब्ध आरक्षण के इस युग में विशेष रूप से प्रासंगिक हो गई है। संक्षेप में यह एक तरंग-प्रभाव उत्पन्न कर सकती है, जो देश के विकास के लिए बेहद जरूरी है। इसीलिए यह जरूरी है कि शिक्षा को महिलाओं के लिए अधिक से अधिक सुलभ बनाने के लिए सही और कारगर रणनीतियां अपनाई जाएं।

समाज और उसमें प्रचलित सामाजिक-लिंग मूल्यों में बदलाव लाना भी अनिवार्य है। इस तरह के बुनियादी और निर्णायक बदलावों से ही शिक्षा को महिलाओं के लिए और प्रभावशाली ढंग से सुलभ बना सकते हैं। इस प्रक्रिया को आरंभ किए जाने की जरूरत है मगर यह एक दीर्घकालिक हस्तक्षेप है, जिसमें परिवर्तन का चक्र धीरे-धीरे घूमता है। इस बीच असंख्य महिलाएं शिक्षा से वंचित होती रहेंगी। इसलिए अल्पकालिक हस्तक्षेपों के बारे में सोचना भी महत्वपूर्ण है जिससे महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच में गुणात्मक सुधार आ सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनौपचारिक शिक्षा प्रणालियों व प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाया जाना जरूरी है ताकि शिक्षा को अधिक से अधिक महिलाओं और बालिकाओं तक पहुंचाया जा सके। जैसा कि पीछे की गई चर्चा से स्पष्ट हो जाता है, इस तरह के सरकारी हस्तक्षेपों के पीछे निस्संदेह नेक इरादे रहे हैं, लेकिन कार्यान्वयन में अनेक कमजोरियां रही हैं।

इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सरकार को निम्न उपाय करने चाहिए:

- प्रभावशाली हस्तक्षेप के लिए वह स्थानीय स्वयं सेवी संगठनों के साथ, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, मिलकर काम करे;
- विशेषकर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए शिक्षिकाओं की संख्या बढाई जाए ताकि कक्षाओं में आने वाली महिलाओं के मन से सामाजिक-सांस्कृतिक संकोच दूर हो जाएं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार-मूलक व्यावसायिक प्रशिक्षण व प्रशिक्षणोत्तर कड़ियों को प्रभावशाली बनाए जाने की जरूरत है।
- पंचायतों को सूचना के प्रचार-प्रसार के उपयोगी माध्यम के रूप में अपनाया जाए।
- महिलाओं की वृहत्तर पैमाने पर भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए उनके लिए बेहतर सहायक व्यवस्थाएं जैसे डे केयर सेंटर और शिशु सदन जैसी सुविधाएं जुटाई जाएं और उन्हें मजबूत बनाया जाए।
- अंत में एक कुशल फीडबैक प्रणाली यानी संभरण सूचना प्रणाली स्थापित किए जाने की आवश्यकता है जो कमज़ोरियों का पता लगाने और कार्यक्रमों के आवश्यकता-मूलक, प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने में सहायक हो सके।

इस तरह हमारी अब तक की चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि बहुमुखी, बहुपक्षीय, समेकित प्रयास ही एकमात्र रास्ता है जिसके द्वारा महिलाओं की शिक्षा दिलाई जा सकती है।

क्या आप जानते हैं ?

भारत में प्राथमिक शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था का खर्च

	कुल	ग्रामीण	नगरीय
• अनुमानत: 6-14 साल के बच्चे (1995 मार्च तक) (मिलियन)	205	152	53
अवस्फीति संबंधी कारक			
ग्रामीण: ग्रामीण क्षेत्र में 30 प्रतिशत तक नामांकन न होना			
क्षेत्र: संशोधित एन.सी.ई.आर. 1994 तक			
नगरीय: नगरीय बच्चों के 70 प्रतिशत में से 15 प्रतिशत बच्चे नामांकित नहीं और बाकी 50 प्रतिशत में से 30 प्रतिशत नगरीय बच्चे नामांकित नहीं।			
• स्कूल जाने वाले (मिलियन) संशोधित अनुमानित बच्चों की संख्या	146	106	40
• स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या (अनुमानत)	59	46	13
खर्च			
• प्रति छात्र/वर्ष मरलू खर्चा @ 378 रु	55,188	मिलियन रुपये	
• सार्वजनिक/सामुदायिक तथा निजी क्षेत्र में प्रति छात्र/वर्ष खर्चा @ 840 रु	122,640	मिलियन रुपये	
• @ 1,218 रु प्रति छात्र/वर्ष कुल खर्चा	177,828	मिलियन रुपये	

A) मार्च 1995 में जो बच्चे स्कूल जा रहे हैं उनका कुल खर्चा है 177,828 मिलियन रुपए

B) @ 1,218 रु प्रति छात्र/वर्ष 71,828 मिलियन रुपये की जरूरत बढ़ती है उनके बच्चों को नामांकन करने के लिए जो स्कूल से बाहर पढ़े रहे हैं।

C) कुल सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा देने के लिए खर्चा (a+b) का कुल तथा 249,690 मिलियन रुपए है।

अतिरिक्त

D) अगर मिड-डे-मील (दिन में बच्चों को दिया जाने वाला भोजन) जो प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का अतिरिक्त हिस्सा है, को चालू रखा जाए तो इससे अतिरिक्त 61,500 मि. रुपये का खर्चा आएगा।

E) न्यूनतम मूल आधारिक संरचना के तहत 59 मिलियन अ-नामांकित बच्चों को कमरे से कम लगभग 19,70,000 कक्षाओं या कमरों की जरूरत है जिसके लिए @ 25,000 प्रति कमरे के हिसाब से एक समय की कुल पूंजी का 49,250 मिलियन खर्चा आएगा।

F) सालाना खर्च कम से कम @ 2 प्रतिशत (स्फीति दर में वृद्धि के हिसाब से) जाएगा और अतिरिक्त बच्चों की संख्या में वृद्धि के हिसाब से।

स्रोत: शरीफ, अबूसाहब (1998) इंडिया: ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड

अपने अनुभव से सीखें-2

1) स्लम बस्ती में किसी गरीब घर या देहाती इलाके में किसी अनुसूचित जाति/जनजाति के घर में लड़के या लड़कियां द्वारा किये जाने वाले काम काज के बारे में पूछताछ कीजिए या उनका अवलोकन कीजिए। उनसे मालूम कीजिए कि वे अपनी पढ़ाई पर कितने घंटे लगाते हैं। घरेलू नौकर, स्थानीय दुकानदारों, रिक्शा या ऑटो चालकों जैसे व्यक्तियों के जरिये इसका लिए आप आवश्यक संपर्क बना सकते हैं।

जरा सोचिए

1) अपने घरेलू नौकरों से पूछिए कि

- क्या वे अपने बेटों और बेटियों दोनों को स्कूल भेजते हैं?
- क्या वे अपनी बेटियों की शिक्षा पर बेटों की तरह ही खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं?
- क्या वे महसूस करते हैं कि उनकी बेटियों का शिक्षा का समान अधिकार है? अगर नहीं तो क्यों?

2) अपने मोहल्ले में किसी सरकारी स्कूल में जाइए और प्रत्येक कक्षा में लड़कियों और लड़कों की संख्या का पता लगाइए।

7.7 सारांश

सांख्यिकी से हमें शिक्षा में महिलाओं के पिछड़ेपन के अलावा कुछ और भी पता चलता है। हमने देखा कि पूरे भारत में क्षेत्रीय भिन्नताएं पाई जाती है। कुछ पश्चिमी क्षेत्र, दक्षिण राज्य तथा उत्तर पूर्वी राज्यों में बेहतर तस्वीर सामने आती है राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के मुकाबले जहां महिलाओं के ज्यादा हाशिए पर ही खड़ी हैं। इससे हमें विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों के बारे में भी पता चलता है जो महिला शिक्षा की स्थिति को प्रभावित करती हैं।

हस्तक्षेप के मुख्य बिंदु के रूप में जबकि बालिका शिशु की पहचान की गई थी लेकिन इससे कुछ ज्यादा बदलाव नजर नहीं आता। बालिका शिक्षा में पिछड़ापन सिर्फ सामाजिक नजरिए का परिणाम भर नहीं है जबकि इसकी राह में अन्य संरचनात्मक दबाव बिंदू भी अड़चनें डालते हैं जैसे गरीबी और स्कूल तक पहुंचने में अन्य मुश्किलें (विद्यालय का दूरी पर होना, पहुंच मुमकिन न होना इत्यादि)। हमने पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत सरकारी पहलों पर भी एक सरसरी नजर डाली। महिला शिक्षा पर जोर देने के बावजूद, परिवर्तन नगण्य ही है। महिलाओं की शिक्षा के राह में कुछ नई शुरुआतें आशावादी प्रतीत हुई है, शिक्षा के अनौपचारिक क्षेत्र में तथा वयस्क शिक्षा में। इस क्षेत्र में और खोज करने की जरूरत महसूस की जा रही है। इसके साथ ही हमने कुछ भावी हस्तक्षेप की रणनीतिओं से संबंधित सूत्र भी बताए हैं।

7.8 शब्दावली

नामांकन: बच्चे का स्कूल में रजिस्टर में छात्र के रूप में नाम दर्ज करवाना।

हस्तक्षेप: किसी कार्यवाही के प्रक्रम के बीच में आना और उसमें बदलाव लाना।

अनौपचारिक शिक्षा: निर्धारित शिक्षा की प्रक्रिया से अलग।

स्थानिक वितरण: क्षेत्र, जगह के हिसाब से वितरण।

व्यावसायिक : कौशल या उद्योग से संबंधित।

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मजुमदार, वीणा 1985, एजुकेशन एंड वूमेनस इक्वालिटी थीम पेपर जो एशूकेशन फराम वूमेन्स एक्वालिटी पर आधारित नेशनल सेमिनार के लिए तैयार किया गया, नई दिल्ली।

1985, चेलेंजस आफ एजूकेशन : पोलिसी परस्पेकटिव : मिनिस्टरी आफ एजूकेशन, नई दिल्ली।

संदर्भ

अग्रवाल, बीना (1981) "एग्रीकल्चरल माडर्नाइजेशन एंड थर्ड वर्ल्ड वीमेन", वर्किंग पेपर न. डब्लू.ई.पी 10/डब्लूएफ, आइएलओ जिनीवा

बनर्जी, एन.के. 1989; "ट्रेन्ड इन वीमेन्स एम्प्लायमेंट, 1971-8: सम मैक्रोलेवल ऑब्जर्वेशन्स" *इकॉनमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 16(25)

आर्मस्ट्रांग, पैट और आर्मस्ट्रांग, ह्यू (1990), "योराइज़िंग वीमेन वर्क" नेटवर्क बेसिक्स सिरीज टोरोंटो : ओरोडीना एडीशन।

बोसरप, ईस्टर 1983 "एम्प्लॉयमेंट ऑव वीमेन इन डेवेलपिंग कंट्रीज" टेबाह लियोन (संपा) *पोपुलेशन ग्रोथ एंड इकॉनमिक डेवेलपमेंट इन थर्ड वर्ल्ड*, आईयूएसएसपी बेल्जियम ओरिडिना एडीशंस

डेरस, जीन और सेन, अमर्त्य, (1995) *इंडिया: इकॉनमिक डेवेलपमेंट एंड सोशल ऑपॉर्चुनिटी* दिल्ली : ओ.यू.पी.

डीसकशन पेपर न. 121, इंदिरा गांधी इंस्टीट्यूट ऑव डेवेलपमेंट रिसर्च, मुंबई भारत सरकार (1975) कमेटी आन दि स्टेटस आफ वूमेन, नई दिल्ली।

भारत सरकार (1974) *"टुवार्ड्स इक्वैलिटी": रिपोर्ट ऑव द नेशनल कमेटी ऑन द स्टैटस ऑव वीमेन इन इंडिया*, समाज कल्याण विभाग, शिक्षा विभाग और समाज कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली।

भारत सरकार (1988) *नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वीमेन डेवेलपमेंट* 1980-2000 *रिपोर्ट ऑव द कोर ग्रुप*, महिला और बाल विकास विभाग, नई दिल्ली

भारत सरकार (1988) *"श्रमशक्ति", रिपोर्ट ऑव द नेशनल कमीशन ऑन सेल्फएम्प्लॉइड मेन एंड वीमेन इन द इनफॉर्मल सेक्टर*, नई दिल्ली

मजुमदार, वीणा, 1985 "एजुकेशन एंड वीमेंस इक्वेलिटी," नेशनल सेमिनार ऑन एजुकेशन फॉर वीमेंस इक्वेलिटी, नई दिल्ली, में प्रस्तुत थीम पेपर

ओआरजीआई 1991 प्राइमरी सेंसस एब्स्ट्रैक्ट, खंड II सेंसस ऑव इंडिया, नई दिल्ली

आई.एल.ओ. (1985) वर्ल्ड लेबर रिपोर्ट जेनेवा।

पपोला, टी.एस. और शर्मा, ए.एन. (संपा) (1999) *जेंडर एंड एम्प्लॉयमेंट इन इंडिया* में, इंडियन सोसायटी फॉर लेबर इकॉनमिक्स और इंस्टीट्यूट ऑव इकॉनमिक ग्रोथ, नई दिल्ली।

श्रीनिवासन, पी.वी. (1996), *पॉवर्टी इन इंडिया; रीजनल एस्टीमेट्स*, 1987-88

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) *बर्ल्ड लेबर रिपोर्ट*, जिनेवा

हिरवे, इंदिरा "इकॉनमिक रिफार्म एंड वीमेंस वर्क," विसारिया, प्रवीन "लेवल एंड पैटर्न ऑव फीमेल एम्प्लॉयमेंट", सूर्यनारायण, एस.एस., "गैप्स एंड बायसेज न डाटा रिलेटिंग टू एमलायमेंट ऑव वीमेन," महेन्द्र, देव, एस "स्टेट इंटरवेंशंस एंड वीमेंस एम्प्लॉयमेंट" उन्नी, जीमोल, *"वीमेन वर्कर्स इन एग्रीकल्चर: सम रिसेंट ट्रेंड्ज"*

भारत सरकार 1974, *टुवार्ड्स इक्वेलिटी: रिपोर्ट ऑव द कमेटी ऑन द स्टैटस ऑव वीमेन इन इंडिया* समाज कल्याण विभाग, शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली

1983, *समैरी रिव्यू ऑव ऑल इंडिया वीमेन्स एजुकेशनल ट्रेनिंग कॉनफ्रेन्सेज एंड वर्कशाप्स* अं. श्रम संगठन की परियोजना की एक रिपोर्ट, श्रम मंत्रालय, नई दिल्ली

1985, *चैलेंज ऑव एजुकेशन: ए पॉलिसी पर्सपेक्टिव* शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली

1988, *नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वीमेन डेवलपमेंट:* 1980-2000 महिला और बाल विकास विभाग, नई दिल्ली

1999 सोशियो-*कल्चरल टेबल्स, खंड II सेंसस ऑव इंडिया*, नई दिल्ली

विश्व बैंक, 1991 *जेंडर एंड पॉवर्टी इन इंडिया*, वाशिंगटन डी.सी.

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

भारतीय समाज में महिलाएं : सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ

खंड

3

सामाजिक संस्थाएं, प्रक्रियाएं और महिलाएं

खंड परिचय : सामाजिक संस्थाएं, प्रक्रियाएं और महिलाएं 3

इकाई 8

एक लड़की का बढ़ना 5

इकाई 9

विवाह 18

इकाई 10

वर्ग, जाति, सामुदायिक विचारधारा और स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोण का निर्माण 34

इकाई 11

पुस्तकों और मौखिक परम्परा और जन-संचार में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 48

संदर्भ 62

खंड परिचय : सामाजिक संस्थाएं, प्रक्रियाएं और महिलाएं

जैसा कि आप जानते हैं पिछले दो खंडों में, हमने भारतीय समाज में महिलाओं की सामान्य स्थिति का अंदाजा लगाने की कोशिश की तथा उन सभी सूचकों की भी मदद ली जो हमें महिलाओं की स्थिति तथा उनके विकास के बारे में जानने में मदद करते हैं।

अपने इस खंड में, जो पाठ्यक्रम का तीसरा खंड है, उन सभी विभिन्न संस्थाओं पर नजर डालने की कोशिश की गई है जो सामाजिक लिंग भूमिकाओं को आकार देती है। हमारे समाज की विभिन्न विचाराधाराओं को आकार देने और संबलित करने में समाजीकरण की क्या भूमिका है ? हम उम्मीद करते हैं कि इस खंड को पढ़ने के बाद आपको चीजों को अलग ढंग से देखने में प्रोत्साहन मिलेगा जिसके फलस्वरूप आप "आम लगने वाली" और रोजमर्रा की कई घटनाएं जो स्वाभाविक लगती हैं लेकिन सामाजिक लिंग भेदता से भरपूर है उस पर समीक्षात्मक नजरिया डाल पाएंगे।

इकाई 8 एक बढ़ती हुई लड़की बहुत ही सरल, वक्ता ढंग से लिखा गया है जिससे आप शिशु बालिका के समाजीकरण के दौरान हुए अत्याचार के बारे में ज़ान पाएंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप रोजमर्रा की क्रियाओं को एक वृहद वैचारिक संरचना के अंतर्गत देख पाएंगे।

इकाई 9 विवाह की संस्था के बारे में है जिसमें विवाह संस्था और उसके विभिन्न नियमों और रीति रिवाजों की चर्चा की गई है जो महिलाओं की स्वतंत्रता और रुचियों को संकुचित करती है। हमने न केवल दहेज और वधू धन की विचारधारा और रिवाज पर चर्चा की है बल्कि इससे जुड़ी हिंसा विशेषकर दहेज हिंसा और दहेज मृत्यु की भी चर्चा की है। इसके साथ ही विवाह से जुड़े विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों पर भी आलोचनात्मक नजर डाली है।

अपनी अगली इकाई में हमने उस विचारधारा पर नजर डाली है जो महिलाओं के सामाजिक लिंग का निर्धारण करती है और किस तरह से यह पितृसत्तात्मक विचारधारा विभिन्न स्तरों पर कार्य करती है और वर्ग, जाति तथा समुदाय के परिवेष्ट में किस तरह यह जेंडर भूमिकाएं इन विचारधाराओं के तहत आकार लेती हैं।

इस खंड की आखिरी इकाई में महिलाओं की मौखिक या श्रुति परंपरा, जन संचार और पाठ्य पुस्तकों में छवि या प्रस्तुति के बारे में है। भारतीय नारी की छवि के चित्रण में आवश्यक परिवर्तनों के बारे में भी चर्चा की गई है।

इकाई 8 एक लड़की का बढ़ना

रूपरेखा

8.0 लक्ष्य और उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 एक लड़की का जन्म
8.3 मरने के लिए अभिशप्त
  8.3.1 जन्म लेने से भी रोकना
8.4 बढ़ती उम्र
  8.4.1 वह छः साल की है
  8.4.2 चपाती बनाना और घर की देखभाल करना
  8.4.3 वह थोड़ा बहुत कमा भी सकती है
8.5 यौवन
  8.5.1 अपेक्षाएं
8.6 विवाह की सही उम्र
  8.6.1 कन्यादान
  8.6.2 दहेज
  8.6.3 बच्चे की मांग
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 लक्ष्य और उद्देश्य

हमारे जीवन में और हमारे आस-पास अनेक लड़कियां जन्म लेती हैं और वे धीरे-धीरे बड़ी होती जाती है। परंतु शायद ही हम इस बढ़ने की प्रक्रिया पर गौर करते हैं। इस इकाई में हमने यह देखने का प्रयास किया है किस प्रकार लड़की को जन्म देने से ही उपेक्षा का शिकार बनना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह कि महिलाओं का दमन उनके जन्म लेने के पहले से ही शुरू हो जाता है।

इस इकाई में पढ़ने के बाद आप:

- एक बढ़ती हुई लड़की से जुड़े विभिन्न पक्षों का परीक्षण कर सकेंगे,
- उसके सामाजीकरण में जुड़े विभिन्न संस्थानों और कारकों पर गौर कर सकेंगे,
- एक लड़की के बढ़ने के दौरान उस पर किए जाने वाले अत्याचारों का आलोचनात्मक विश्लेषण कर पाएंगे, और
- एक बृहद सैद्धांतिक ढांचे से लेकर रोजमर्रा के कार्यकलापों की व्याख्या कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

जैसे ही हम कहते हैं कि 'एक लड़की का बढ़ना' वैसे ही हमारे दिमाग में 'एक बढ़ते लड़के' की तस्वीर उभरती है और फिर हम दोनों को एक दूसरे के सामने रखकर देखने का

प्रयत्न करते हैं। और पाते हैं कि दोनों के विकास की प्रक्रिया अलग अलग है। जिसका कारण भिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि और पारिवारिक पृष्ठभूमि हो सकती है परंतु वह कौन सी सामाजिक प्रक्रिया है जो सामाजिक तौर पर लड़के और लड़की के पालन-पोषण में अन्तर करती है। जरा हम सोचें, जरा हम गौर करें कि वह कौन से तत्व हैं जिनके कारण समाज के हर तबके में लड़के और लड़की के बीच भेद किया जाता है ?

चाहे वह समुद्र के तट पर रहने वाली लड़की हो या हिमालय पर, चाहे वह धान के खेत में काम करने वाली लड़की हो या मध्यवर्गीय परिवार की, सबकी नियति लगभग एक जैसी होती है। क्या आपने खेतों में काम करती छोटी लड़कियों को देखा है ? जो खेतों में अपने माता-पिता की सहायता करती हैं। क्या आपने कभी उनके सपने को टटोलने की कोशिश की है ? क्या वे स्कूल जाना चाहती हैं ? क्या वे अन्तरिक्ष में जाना चाहती हैं ? क्या वे पुलिस अधिकारी बनना चाहती हैं ? क्या वे घरेलू काम काज में अपने माता-पिता का हाथ बंटाना चाहती हैं ? क्या वह गीत गाना, नाचना, चित्र बनाना चाहती हैं ? क्या उनकी सोच आधुनिक है या वह पुराने ख्याल की लड़की है ?

ये बहुत सारे संदर्भ हैं और ये संदर्भ अनंत हो सकते हैं जिसमें एक बालिका का विकास धीरे-धीरे होता जाता है। परंतु इन विभिन्नताओं के बावजूद लड़कियों का पालन-पोषण लड़कों से भिन्न है। लड़कियों का बढ़ना और उनका पालन-पोषण देखिए तो आपको महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण का पता चल जाएगा। वस्तुतः लड़कियों का पालन-पोषण इस प्रकार किया जाता है कि बाद में वे समाज में एक लड़की और एक महिला की भूमिका में खरी उतर सकें। समाज में लड़कियों का पालन-पोषण इस प्रकार किया जाता है और उसकी भूमिका इस प्रकार तय की जाती है कि वह एक महिला के रूप में अपनी सार्थकता सिद्ध कर सके।

इस इकाई में हमने एक बढ़ती हुई लड़की की कहानी बताई है। हालांकि इसमें बहुत से पक्ष छूट गए हैं परंतु हमारा उद्देश्य इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करना है। हमने इस इकाई में एक बढ़ती हुई लड़की की जीवन प्रकिया को अंकित करने का प्रयास किया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह महसूस करेंगे कि जो कुछ भी आपने पढ़ा वह आपके आस-पास ही घट रहा है।

जाहिर सी बात है कि हम सभी लड़कियों की जीवन चर्चा नहीं कर पाएंगे परंतु यहां हम कुछ ऐसे अनुभवों की चर्चा कर रहे हैं जो लगभग सभी वर्गों और समाजों में एक लड़की के पैदा होने पर उपस्थित होते हैं।

8.2 एक लड़की का जन्म

आइएं, कहानी की शुरुआत की जाए। एक लड़की का जन्म हुआ।

जब जच्चा (जन्म देने वाली बच्चे की मां) शौर्यगृह में होती है तो सभी लोगों के मन में यह उत्सुकता बनी रहती है कि लड़का हुआ या लड़की। यह उत्सुकता किसी और को नहीं तो कम से कम मां बनने वाली स्त्री के मन में तो यह रहता ही है कि उसके अन्दर पल रहा शिशु लड़का है या लड़की।

लगभग अधिकांश परिवारों में लड़के की चाहत होती है। खासतौर पर जब पहला शिशु होने वाला हो, गांव की दाइयों और शहर में रहने वाली नर्सों से पूछा जाए तो वह बताएगी कि लड़का या लड़की होने पर लोगों के चेहरे के भाव कैसे बदलते हैं। लड़का होते ही सबके चेहरे खुशी से खिल जाते हैं। लड़की के जन्म को उदासीनता से ग्रहण किया जाता है। एक

लड़की के जन्म के लिए अधिकांश मामलों में उसकी मां को ही दोषी ठहराया जाता है।

कई बार पुत्र की आकांक्षा में एक के बाद एक बेटी होती जाती है। लगातार सात लड़कियां हो जाती हैं तो सारा परिवार उसके जान का दुश्मन हो जाता है। यदि इसी के स्थान पर सात लड़के हुए होते तो मामला कुछ और ही होता। मां की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है और उसे सम्मान दिया जाता। वस्तुतः जब कोई किसी को आर्शीवाद देता है तो यही कहता है फूलो-फलो, दूधो नहाओ, पूत्रवति भव, सौ पूत्रों की माता बनो।

चाहे कोई भी धार्मिक समुदाय हो लड़के की चाहत सब में होती है। आपके लड़का हो या लड़की आप यह कह सकते हैं कि हमारे साथ ऐसा नहीं है या हमारे बेटी के साथ ऐसा नहीं है। आप यह भी कह सकते हैं कि आप सिर्फ बेटी चाहते हैं। हम कुछ ऐसे अभिभावक भी पाते है जो बेटी के जन्म के लिए प्रार्थना करते हैं।

लेकिन ज्यादा लोग ऐसे हैं जो बेटी नहीं चाहते हैं। बहुत से ऐसे लोग हैं जो बेटी के जन्म लेने से दुखी हो जाते हैं कुछ लोग तो ऐसे हैं जो बेटी की भ्रूण में ही हत्या कर देते हैं।

8.3 मरने के लिए अभिशप्त

जून 1986 में इंडिया टूडे में 'बॉर्न टू डाई' शीर्षक से एक कहानी प्रकाशित की गई थी जिसमें यह बताया गया था कि तमिलनाडु के मदुराई शहर के आस-पास के जिलों में इस दशक के दौरान 6000 बच्चियों की जन्म लेते ही हत्या कर दी गई थी। अक्तूबर 1988 में इसी पत्रिका में एक खबर छपी थी कि राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष 150 नवजात बच्चियों को मौत की नींद सुला दिया जाता है। बड़े दुख की बात है कि 10,000 जनसंख्या में केवल 50 लड़कियां हैं।

1901 की भारतीय जनगणना रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक 1000 पुरुष की तुलना में 972 महिलाएं थीं जबकि 1981 तक महिलाओं का अनुपात प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में 933 हो गया। और 1991 तक और घटकर 927 रह गया।

ललिता पाणिग्रही ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिश सोशल पॉलिसी ऐंड फीमेल इनफैंटिसाइड इन इंडिया' में एक घटना का जिक्र किया है। यह घटना 1835 की थी। एक अंग्रेज अधिकारी पूर्वी उत्तर प्रदेश में भूमिधरों के एक समूह से बात कर रहा था तब उसने एक भूमिधर को साला कहकर संबोधित किया। तुरंत चारों ओर ठहाका गूंज गया। उनमें से एक ने बताया कि यहां कोई किसी का साला नहीं हो सकता क्योंकि इस गांव में कोई बेटी ही नहीं है। पाणिग्रही के अनुसार इसके दो मुख्य रूप से कारण थे। एक उच्च जाति में दहेज की बढ़ती मांग और दूसरा शादी के लिए अच्छे लड़के की कमी। लड़की अविवाहित रहे यह सोचा भी नही जा सकता था। अविवाहित लड़की की इतनी उपेक्षा की जाती थी कि वह मरने के लिए विवश हो जाती थी।

1870 में शिशु हत्या को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। 20वीं शताब्दी के दौरान शिशु हत्याएं काफी क्षेत्रों में मौजूद थीं और इसके कारण भी कमोबेश यही थे। तमिलनाडु के बेलुकुरूची में एक मां ने कहा कि मैने जो कुछ भी किया ठीक किया। मेरी बेटी को मेरी तरह जीवन भर प्रताणना तो नहीं सहनी पड़ेगी। आजीवन प्रताणना से मुक्त करने के लिए इरूकम्पल पौधे का दूध पिलाकर अपनी बेटी को हमेशा के लिए सुला दिया। बच्ची आठ साल की थी।

8.3.1 जन्म लेने से भी रोकना

बड़े शहरों में और समृद्ध परिवारों में बच्चियों की भ्रूण हत्या कर दी जाती है। 1986 में सरकारी आंकड़े के अनुसार 1978 और 1982 के बीच गर्भपात के जरिए 78,000 बच्चियों की भ्रूण हत्या कर दी गई। जांच के बाद गर्भ में बच्ची होने का पता चलते ही गर्भपात करा लिया जाता है और लड़का होने पर आनन्द का माहौल बनता है।

गर्भ में भ्रूण की असमानता का पता लगाने के लिए यह जांच पद्धति विकसित की गई थी परंतु इसका प्रयोग यह पता लगाने के लिए किया जाने लगा कि गर्भ में पल रहा शिशु लड़का है या लड़की। 1978 से लेकर 1982 के बीच बम्बई की एक महिला संगठन ने पूरे भारत से जांच के लिए आनेवाली 8000 महिलाओं से पूछताछ की। इन 8000 महिलाओं में से 7999 महिलाएं लड़का चाहती थीं।

अधिकांश महिलाओं ने इसका कारण यह बताया कि पुत्र रहित माता एक अभिशाप है। उन्होंने यह भी बताया कि चिता में मुखाग्नि देने के लिए पुत्र का होना जरूरी है।

अप्रैल 1987 में इस जांच पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परंतु अभी भी यह जांच किया जाना जारी है और बच्चियों की भ्रूण हत्या कर दी जा रही है।

चलिए, अब हम उनके बारे में पता करें जिनकी भ्रूण हत्या नहीं की जाती और जिन्हें जन्म लेने की अनुमति दे दी जाती है।

8.4 बढ़ती उम्र

उस बच्ची का जन्म हो चुका है। वह धीरे-धीरे बड़ी हो रही है। पूरी दुनिया में ऐसी लड़कियां जन्म लेती हैं और बड़ी होती हैं। पहाड़ों, खेतों, और झोपड़ियों में ये लड़कियां धीरे-धीरे बड़ी होती हैं। वे अलग-अलग परिवारों, अलग-अलग समुदायों, धर्मों, कबीलों आदि में बढ़ती और पलती हैं। इन सभी अलग-अलग संदर्भों में लड़कियों को व्यवहार के अलग-अलग तौर तरीके बनाए जाते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए। आपने लोगों को यह कहते सुना होगा कि लड़कियों को ठहाके लगाकर नही हंसना चाहिए। उसे एक खास तरीके से कपड़ा पहनना चाहिए। यहां तक कि पुरुषों को भी क्या करना है क्या नहीं करना है बताया जाता है। पर महिलाओं को इन का कड़ाई से पालन करना होता है। आइए, देखें कि रोजमर्रा के जीवन में क्या होता है ?

जब बच्चे छोटे होते हैं तो उन्हें लड़का और लड़की होने का एहसास नहीं होता है परंतु समय आने पर उनसे यह कहा जाता है कि तुम लड़की हो, तुम लड़का हो। केवल लड़का या लड़की होने की वजह से अन्तर नहीं किया जाता बल्कि उनके साथ अलग-अलग व्यवहार भी किया जाता है। जहां लड़की को आज्ञाकारी होना सिखाया जाता है वहीं लड़के को साहसी और निडर बनना सिखाया जाता है। लड़कियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी बात का जवाब न दें आदि।

8.4.1 वह छः साल की है

रोहिणी जब छः साल की थी तो उसे लड़की होने का एहसास हुआ। उसकी मां ने यह घटना सुनाई– "जबतक उसे यह नहीं मालूम था कि वह लड़की है या कम से कम उसे यह नही पता था कि लड़की होने के कारण उसे किसी चीज से वंचित किया जा सकता है।" एक दिन उसे क्रिकेट टीम से निकाल दिया गया और जब वह खेलने के लिए जिद करने लगी तो उसके 9 और 10 साल के दोनों बड़े भाई उसे जबरदस्ती घर ले आए और

मां को सौंपते हुए चिल्लाए -- "इसे हमलोगों के पीछे मत आने दो। अगर यह हमारे साथ आई तो बच्चे हमें अपने साथ नहीं खेलाएंगे।" रोहिणी को बहुत दुख हुआ क्योंकि उसे तेज बॉलिंग करने के अपने हुनर को दिखाने का मौका नहीं दिया गया। लड़कों ने उसे देखते ही अपने साथ खेलाने से मना कर दिया।

रोहिणी कई दिनों तक उदास रही। इसका एक कारण था कि उसके साथ कोई खेलने वाला नहीं था। उसकी मां ने कहा कि "मैं भी दुखी थी क्योंकि मेरी बेटी को ठेस पहुंची थी। लेकिन कोई कर ही क्या सकता था ? उसे अब जिंदगी भर यह तिरस्कार सहना है। अगर उसने बात नहीं मानी तो समाज उसे तिरस्कार कर देगा। हमें तो उसे विवाह के योग्य बनाना है।

रोहिणी एक शहर में धीरे-धीरे बड़ी हो रही थी। वह अपने भाइयों के साथ स्कूल जाती थी परंतु श्यामकली को भी इसका एहसास था कि वह लड़की है और इस बात से वह दुखी थी।

श्यामकली अपनी दादी के साथ
सौजन्य : बी. किरण भई, नई दिल्ली

श्यामकली भी एक छः साल की लड़की है। उसके पिता किसी बड़े बंगले में माली का काम करते हैं और वे उस बंगले के गैराज में रहते हैं। श्यामकली जब तीन साल की थी तो उसकी मां का देहान्त हो गया था। सौभाग्यवश उसकी दादी उसके साथ रहती थी। उसकी दादी घरों में झाड़ू पोंछे का काम करती थी। इधर श्यामकली अपने घर में झाड़ू पौंचा बर्तन करती थी और सब्जी काटती थी। श्यामकली यह सब काम करना नहीं चाहती थी। वह बाहर जाकर बच्चों के साथ खेलना चाहती थी। परंतु यदि किसी दिन वह अपना काम खत्म नहीं करती और बाहर खेलने जाती और उसकी दादी मां देख लेती तो वह गुस्सा होती और उसकी शिकायत उसके पिता से कर देती। उसका पिता उसे पीटता था। वह न तो डांट खाना चाहती थी और न पिटना चाहती थी। इसलिए वह अपना काम करती थी। वह हमेशा सोचती थी कि इन सब कामों के लिए उसके भाइयों को क्यों नहीं डांटा जाता है। वह स्कूल से लौटता है, खाना खाकर सो जाता है और शाम को खेलने चला जाता है।

दादी मां अभी आनेवाली हैं, उसे ढेर सारे काम करने हैं। बर्तन मांज़ने हैं, पानी भरना है, सब्ज़ी काटना है, मसाला पीसना है। उसके पिता कहते हैं कि आज वे मछली लेने जा रहे

श्यामकली बहुत खुश है। उसे मछली का मुड़ा बहुत पसंद है।

पूरा परिवार खाने के लिए बैठता है। श्यामकली भी अपने भाई के बगल में बैठी हुई है। उसके मुंह में पानी आ रहा है। सभी स्वादिष्ट भोजन के इंतजार में हैं। दादी मां कहती हैं

"तू क्या मेहमानों की तरह बैठी है। उठ भाइयों के लिए पीने का पानी ला। जब तेरे भाई और पिता खा लें तब खाने के लिए बैठना।" श्यामकली विरोध करती है। ये लोग तो उससे बड़े हैं। खुद उठकर पानी क्यों नहीं पी लेते। दादी मां डांटती हैं "ज्यादा बड़बड़ मत कर लड़कियां जबान नहीं लड़ातीं" श्यामकली लाचार होकर आज्ञा का पालन करती है और दादी मां के साथ खाना परोसने लगती है। उसकी दादी मां मछली का पूरा मुड़ा उसके भाई और पिता को दे देती है। उन्हें भी यह पसंद है। वह चिल्लाती है। रो रोकर गला फाड़ लेती है "आपने सारी मछली उन्हें दे दी, मेरे लिए मछली नहीं छोड़ी"। दादी मां कहती हैं "तुम मछली का मुड़ा नहीं खा सकती"। श्यामकली रोते हुए पूछती है " परंतु क्यों"। दादी मां कहती हैं "क्योंकि तुम एक लड़की हो"। श्यामकली हार नहीं मानती और पूछती है "क्या लड़की मछली का मुड़ा नहीं खा सकती"। दादी मां कहती हैं "बहुत बड़बड़ करने लगी है। मना किया था बहस न करने के लिए। अगर तुमने अपनी आदत नही सुधारी तो तुम्हारी जिंदगी तबाह हो जाएगी। ससुराल जाकर तुम क्या करोगी ? जैसा हम कहते हैं वैसा करो नहीं तो बहुत पछताओगी।" श्यामकली बहुत दुखी होती है और वह रात का खाना भी नहीं खाती।

इस प्रकार की घटनाएं अक्सर देखने को मिलती हैं। लड़कियों को केवल यह एहसास नहीं कराया जाता कि वह लड़की है बल्कि बार-बार कोसा जाता है कि यदि तुमने हमारी बात नहीं मानी तो तुम्हारी जिंदगी तबाह हो जाएगी। उसे यह महसूस कराया जाता है कि वह लड़की है और उसे हीन भावना से ग्रस्त कर दिया जाता है। उसके भाइयों को सारी सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। उसे प्यार भी मिलता है, खिलौना भी अच्छा मिलता है, भोजन भी अच्छा मिलता है। परंतु लड़कियों को यह सब नहीं मिलता। उन्हें यह महसूस होता है कि संभवत: यह केवल भेदभाव नहीं है बल्कि उन्हें इस सुविधा से वंचित किया जा रहा है। उसे बताया जाता है कि उसकी यही नियति है। उसे बस इतना समझ में आता है कि वह अपनी मनमानी नहीं कर सकती।

रोहिणी और श्यामकली बड़ी हो रही है। वे खाना बनाती हैं और घर का काम करती हैं। अब श्यामकली को रोटी बनानी भी आ गई है। रोहिणी को भी रोटी बनानी आती है। उसके भाई यह सोचते हैं कि रसोईघर में या तो नौकर काम करते हैं या लड़कियां। रोहिणी की मां चैन की सांस लेती है—"वह घर का काम काज करने में कुशल है। उसके पिता इस बात से गुस्सा करते हैं कि उसे छोटी उम्र में ही रसोई में भेज दिया गया। परंतु उसे खाना पकाने में मजा आता है। आप उसे चपातियां बनाते हुए देखेंगी तो हैरानी में पड़ जाएंगी। वह बड़ी तेजी से चपातियां बनाती है।"

8.4.2 चपाती बनाना और घर की देखभाल करना

भारत में 560,000 गांव है। वहां रहने वाली महिलाओं को चपाती बनाने के लिए कई कार्य करने पड़ते हैं। महिलाएं अंधेरे मुंह ही बिस्तर छोड़ देती हैं और पानी लेने चली जाती हैं। भारत में कई गांव ऐसे हैं जहां महिलाओं को पानी लेने के लिए मीलों पैदल चलना पड़ता है। महिलाएं को आटा पीसना पड़ता हैं और फसल काटने में वे अपने-अपने पतियों की सहायता करती हैं। वे इंधन के लिए लकड़ी जुटाती हैं या उपलों का उपयोग करती हैं। उपले बनाने के लिए उसे कई काम करने पड़ते हैं। पहले वे गोबर इकट्ठा करती हैं फिर उसे दीवार पर थापती हैं। उसके सूख जाने पर उसे इकट्ठा करती हैं और तब उसका उपयोग करती हैं।

लड़की जैसे ही सात-आठ वर्ष की होती है वैसे ही वह घरेलू काम काज में मां का हाथ बटाने लगती है। वह अपनी मां की प्रतिछवि होती है। आपने छोटी-छोटी बच्चियों को

नन्हें शिशुओं को गोद में खिलाते हुए देखा होगा, जो खुद अपना ख्याल नहीं रख सकतीं हैं उनके हाथ में छोटे-छोटे बच्चे दे दिए जाते हैं। ऐसा अक्सर गरीब परिवारों में होता है। मध्यवर्गीय समाजों में यह स्थिति नहीं भी हो सकती। परंतु जब भी मां को अतिरिक्त सहायता की जरूरत होती है तो लड़की को ही बुलाया जाता है। वह भी अपने भाइयों के समान स्कूल जाती है, परीक्षा की तैयारी करती है। परंतु जहां भाई खेलता है, घर को कोई काम नहीं करता वहीं दूसरी ओर लड़की की पढ़ाई को बहुत प्राथमिकता नहीं दी जाती। एक लड़की केवल घर में ही काम नहीं करती बल्कि उसे बाल मजदूरों के रूप में कारखानों में भी खटना पड़ता है।

8.4.3 वह थोड़ा बहुत कमा भी सकती है

अब श्यामकली घर का सारा काम कर सकती है। उसकी दादी मां उसे अपने साथ काम पर ले जाने लगी हैं। झाड़ू पोंछा करने में वह उनकी मदद करने लगी है। जब दादी बीमार पड़ जाती हैं तब वह तीनों घरों का काम करती है। दादी मां सोचती हैं अब उसे काम पर लगा देना चाहिए। सब चीजों के दाम बढ़ रहे हैं। श्यामकली के भाई की किताबें भी खरीदनी है। उम्र में बड़ा होने के बावजूद भी वह कोई काम नही करता।

क्या आप जानते हैं ?-1

बड़ी उम्र के लोगों के बेरोजगार होने के बावजूद भारत में बाल मजदूरी तेजी से बढ़ रही है।

1981 की जनसंख्या रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1.4 करोड़ बाल मजदूर कार्यरत थे जिसमें 14 वर्ष से कम आयु के 43 प्रतिशत लड़कियां और 21 प्रतिशत लड़के थे।

शिवकाशी माचिस उद्योग में बाल श्रमिकों में 90 प्रतिशत छोटी उम्र की लड़कियां हैं। कश्मीर में कालीन उद्योग में अलीगढ़ में ताला उद्योग में, जयपुर में आभूषण पालिश करने के कारखाने में, बीड़ी बनाने के कारखानों में अधिकांशत: लड़कियां ही कार्यरत हैं।

लड़कों की तरह लड़कियों के पास बहुत विकल्प नहीं होते। अधिकांशत: उन्हें ऐसी नौकरियां करनी पड़ती है जिसमें अधिक कौशल हासिल नहीं करना होता और उन्हें मजदूरी भी कम दी जाती है।

आपने लड़कों को मिस्त्री की दुकानों में, छोटे कारखानों में और कई अर्ध औद्योगिक इकाइयों में प्रशिक्षु के रूप में काम करते देखा होगा। कई लड़के काफी अच्छा हुनर सीख लेते हैं और बाद में वे छोटी-मोटे धंधे करने लगते हैं। लड़कियां घरों में काम करती हैं या कुटीर उद्योग में काम करती हैं आपने उन्हें ऐसा कोई कार्य करते नहीं देखा होगा जिनमें उन्हें कोई कुशलता प्राप्त होती हो। जैसे ही लड़कियां 9-10 साल की होती है तो उस पर पुरुषों की कुहावई पड़ने की आशंका बढ़ जाती है। इसलिए उसे ज्यादा देर तक घर से बाहर नहीं जाने दिया जाता। जिस लड़की का कोई सहारा नहीं होता वह वेश्यावृत्ति करने पर मजबूर हो जाती है। आपको यह जानकर दुख होगा कि 11-12 साल की लड़कियों को वेश्यावृत्ति करने पर मजबूर हो जाना पड़ता है।

लड़कियों के पास कोई विकल्प नहीं होता। यदि उन्हें गली-गली मारे-मारे नहीं फिरना है और अपना 'चरित्र नहीं बिगाड़ना है' तो उनके पास शादी के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता है। माता-पिता के लिए युवा लड़की एक बोझ है जिसे जल्द से जल्द छुटकारा

पाना होता है। लड़की के रजस्वला होने के पूर्व ही माता-पिता को उसकी शादी की चिंता होने लगती है। रजस्वला होने पर लड़की को और कई प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है और उसकी जिम्मेदारियां और भी बढ़ जाती है।

पेड़ पर चढ़ना लड़कियों के बस का नहीं समझा जाता लेकिन श्यामकली को यह बहुत पसंद है। *सौजन्य* : बी. किरणमई नई दिल्ली।

8.5 यौवन

बढ़ते हुए बच्चों के लिए किशोर काल सबसे उधेड़बुन का समय होता है। इस समय उनमें न केवल शारीरिक बल्कि मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक परिवर्तन भी होते हैं। लड़की के लिए यह एक यातनापूर्ण समय होता है जब वह न जवान होती है और न बच्ची। लड़की जब तक अपने रजस्वला की उम्र तक पहुंचती है तबतक वह बड़ों के जितना ही काम अपने हाथों में ले लेती है। रजस्वला होते ही वह एक वयस्क महिला की भूमिका निभाने लगती है।

8.5.1 अपेक्षाएं

जैसे ही लड़की रजस्वला होती है तो उसके सामने अनेक समस्याएं आ जाती है और उससे लोगों की अपेक्षाएं बढ़ जाती हैं। लोग उससे शालीनता, भद्रता, आज्ञाकारिता, स्त्रीत्व, लज्जा, समर्पण, त्याग आदि सभी मानवीय गुणों की अपेक्षा करने लगते हैं। एक लड़की को आदर्श महिला बनाने के लिए उसे बार-बार उपदेश दिए जाते हैं। जैसे ही लड़की यौवन की ओर बढ़ने लगती है वैसे ही वह पुरुषों की कुदृष्टि का शिकार बनने लगती है। अत: उससे यह अपेक्षा की जाती हैं कि उसका व्यवहार ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह पुरुषों को उत्तेजित करे। इस प्रकार की भावना के कारण लड़कियां हमेशा शारीरिक और यौनात्मक रूप से अपने को असुरक्षित महसूस करती हैं। यह पुरुष को आकर्षित करने का कोई प्रयत्न नहीं करती है लेकिन यदि ऐसा होता है तो उसे समस्याओं का सामना करना पड़ता है और शर्मिंदगी उठानी पड़ती है। संभवत: यह सबसे बड़ी, घातक और मनोवैज्ञानिक बाधा है जिसके कारण लड़कियां सार्वजनिक कार्यों में हाथ बंटाने से कतराती हैं; वैसे भी वहां उनके लिए जगह नहीं के बराबर है।

इन परिस्थितियों में लड़की की शादी कर एक परिवार और उस परिवार की लड़की की इज्जत की रक्षा की जाती है।

क्या आप जानते हैं ? 2

लड़कियों पर तरह-तरह के जुल्म ढाए जाते हैं और उनका यौन शोषण होता है। लड़कियों और बच्चों के साथ बलात्कार की घटनाएं रोज व रोज बढ़ रही हैं। अपहरण और छेड़छाड़ के अलावा लड़कियों के साथ बलात्कार की घटनाएं भी तेजी से बढ़ रही हैं। हालांकि अखिल भारतीय स्तर पर कोई आंकड़ा मौजूद नहीं है परंतु औसतन देश में प्रत्येक वर्ष 4000 बलात्कार की घटनाएं होती हैं।

आकड़ों से यह पता चलता है कि बलात्कार की जाने वाली एक चौथाई लड़कियां 16 वर्ष से कम उम्र की होती हैं। अधिकाश बलात्कार की सूचना नहीं दी जाती क्योंकि इसमें लड़की की ही बदनामी होती है और उसे शर्मिंदगी उठानी पड़ती है। बलात्कार के लिए समाज लड़की को ही दोषी ठहराता है। अत: सामाजिक निंदा से बचने के लिए मुकदमा भी दायर नहीं किया जाता। लगभग 50 से 90 प्रतिशत बलात्कार की सूचना लोगों को नहीं दी जाती।

बलात्कार की रिपोर्ट दर्ज न कराए जाने के कारण स्पष्ट हैं। लोग लड़की को ही बदनाम करना शुरू कर देते हैं और इस दुष्कृत्य के लिए उसे ही दोषी मानते हैं। वह डरकर माता-पिता, दोस्तों और पति को भी कुछ नहीं बताती। यदि बलात्कारी पिता, भाई, देवर, बहनोई या नजदीकी रिश्तेदार हो तो यह बात किसी को न बताने का दबाव बढ़ जाता है। बलात्कार की सूचना दर्ज कराने से कई कानूनी जटिलताएं समक्ष आ जाती हैं। बलात्कार एक ऐसा अपराध है जिसमें सारी शर्मिंदगी, पीड़ा, परेशानी तथा सामाजिक प्रताड़ना लड़की को ही झेलनी पड़ती है और बलात्कारी इसका सामना नहीं करता। (दिवासिया ऐंड दिवासिया, 1991:127)

लड़कियों के सामाजिक जीवन को नियंत्रित कर पितृसत्तात्मक समाज उसकी यौनात्मकता को नियंत्रित करने का प्रयास करता है और उसके शील तथा परिवार के सम्मान की रक्षा करने की कोशिश करता है। लड़की के लिए कुछ सामाजिक नियम तय किए जाते हैं जिसके अनुसार उसे व्यवहार करना होता है।

एक लड़की किसी पराए पुरुष के साथ सामान्य बातचीत नहीं कर सकती। उस पर उसके माता-पिता की कड़ी नजर रहती है और उसे मां, पत्नी और आश्रिता की भूमिका से आगे नहीं निकलने दिया जाता।

8.6 विवाह की सही उम्र

विवाह लड़की के जीवन का एक महत्वपूर्ण क्षण होता है जब उसे ससुराल वालों के हाथों सौंपा जाता है। यदि लड़की खुद शादी करती है तो समाज उसे सहजता से स्वीकार नहीं करता। लोग उसकी निन्दा करते हैं और शक की निगाहों से देखते हैं। लड़की चाहे न चाहे उसे सामाजिक और पारिवारिक दबावों की बीच विवाह करना ही पड़ता है। भारत की विवाह संस्था पितृसत्तात्मक प्रथाओं, विश्वासों, विचारों से निर्मित है। आइए, देखें कि जब एक लड़की का विवाह होता है तो उसे किन सामाजिक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।

8.6.1 कन्यादान

हिन्दू विवाह में कन्या पक्ष हमेशा छोटा होता है। उत्तर भारत में खासकर ऐसा होता है।

जिस प्रकार महिला पुरुष से कमतर होती है उसी प्रकार दूलहन भी दुल्हा के मातहत होती है। दामाद और उसके परिवार वालों का सम्मान किया जाता है। कन्या पक्ष सर झुकाकर वर पक्ष की सभी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। इसमें दहेज की मांग पूरा करना भी शामिल होता है। भारत के उत्तरी, पश्चिमी और मध्य प्रांतों में कन्या पक्ष और वर पक्ष के बीच ज्यादा भेद है। दक्षिण भारत में नजदीकी पारिवारिक रिश्तेदारों में ही शादी होती है। वहां मसेरे भाई/बहन या फूफेरे भाई/बहन के बीच शादी करने का रिवाज है। इसलिए वहां कन्या पक्ष और वर पक्ष के बीच ऐसी कोई असमानता नहीं होती। इसके अलावा वह अचानक किसी अपरिचित माहौल में नहीं चली जाती। वह अपनी मामी या फुफा के घर ही जा रही होती है। उसका पति उसका फुफेरा या ममेरा भाई ही होता है जिसे वह बचपन से ही जानती है। अपने नए घर में लड़की का समाजीकरण अलग-अलग परिस्थितियों में होता है। इसके बावजूद लड़की का समाजीकरण काफी पहले शुरू हो जाता है। उसकी भूमिका और व्यवहार पर आरंभ से ही अंकुश लगाया जाता है कि उसका व्यवहार कैसा होना चाहिए और उसकी भूमिका क्या है ?

कन्या पक्ष को हमेशा यह डर लगा रहता है कि वर पक्ष लड़की को नापसंद न कर दें। इसलिए लड़की से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्ण रूप से समर्पित रहे। जब लड़की अपने पिता के यहां से विदा होती है तो जो बिदाई गीत गाया जाता है वह बड़ा ही हृदयस्पर्शी होता है और यथार्थ को वर्णित करता है:

"बाबुल हम तेरे खूंटे की गैया

जिधर बांधों बंध जाए हंम"

(हे पिता हम तुम्हारी गाय हैं तुम हमें जिस खूंटे से बांधों बंध जाएंगे)

अपने पिता के घर में तो लड़कियों को थोड़ा मान सम्मान प्राप्त होता है पर जैसे ही वह अपने पिता का घर छोड़ती है तो वह पूर्णत: अपने पति और उसके परिवार पर आश्रित हो जाती है। "यह सर्वविदित है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गांव से बाहर शादी की जातीं है। बहुओं को साक्षरता कक्षा में नहीं जाने दिया जाता है जबकि बेटियां उसमें शामिल होती हैं। बेगुसराय समिति के सदस्यों ने देखा कि गांव की लड़कियां तो चुनाव अभियान में हिस्सा ले सकती हैं पर बहुओं को इसकी छूट नहीं थी।" (टूआर्ड्स इक्वालिटि: रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन द स्टेट्स ऑफ वुमैन इन इंडिया, 1974: 65)

हर लड़की को बार-बार उसके आचरण और व्यवहार की याद दिलाई जाती है और उसे बताया जाता है कि वह पराया धन है। उसे अपने ससुराल वालों को खुश रखना हीं उसका मुख्य धर्म है। उसे यह बताया जाता है कि माता-पिता का घर छोड़ने के बाद ससुराल पहुंचने पर ससुराल वाले और पति ही सब कुछ हैं अत: उसे उनकी हर इच्छा का पालन करना चाहिए।

पूर्वी उत्तर प्रदेश की अन्य लड़कियों की तरह रामकली की शादी भी 5 साल की उम्र में हो गई थी। गौना होने तक वह अपने ससुराल नहीं गई। जब उसका गौना हुआ तब रीति रिवाज के अनुसार उसे ससुराल ले जाया गया।

'शामकली के पिता को काफी मात्रा में दहेज इकट्ठा करना पड़ा। गहना, जेवर, मंहगे कपड़े, बर्तन, तकिया, तोसक और अन्य कई चीजें उसे खरीदनी पड़ी और इसके लिए उन्हें कर्ज लेना पड़ा। वर पक्ष की मांग की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने को कर्ज में डुबो लिया। आरंभ में शामकली विवाह नहीं करना चाहती थी व ससुराल नहीं जाना चाहती थी। उससे

बार-बार यह कहा जाता था कि आगे तुम कठिन जीवन बिताना है। जब वह 12 साल की हो गई तो वह धीरे धीरे उन चीजों में रुचि लेने लगी जो उनके पिता उसके दहेज के लिए खरीद रहे थे। जो चीजें उसे पिता ने खरीदी थी वह उसे पसंद नहीं थे। उसे जूतें, साड़ी पसंद नहीं थे। यहां तक कि वह साड़ी पहनना भी नहीं चाहती थी। इससे वह बड़ी-बड़ी दिखती थी। उसे कुछ भी पता नहीं था कि आगे क्या होने वाला है।

8.6.2 दहेज

केवल कुछ समुदायों को छोड़कर जहां दूलहन के लिए पैसे देने पड़ते हैं, लगभग सारे भारत में दहेज देकर लड़कियों की शादी करनी पड़ती है। यह प्रथा बहुत ही दमनात्मक है। चाहे शहर में रहने वाले पढ़े लिखे लोग हों या गांव में रहने वाले अनपढ़ लोग सब लोग इस प्रथा से ग्रस्त हैं। रोज व रोज दहेज के कारण होनेवाली मौतों में वृद्धि हो रही है। दहेज की बढ़ती मांग लड़कियों के मां बाप को चिंता में डुबो देती है। अतः यह माना जाता है कि लड़कियां बोझ और एक प्रकार की जिम्मेदारी हैं। पुत्र पीढ़ी और परिवार के नाम को आगे बढ़ाता है और बूढ़े मां बाप का ख्याल रखता है और बुढ़ापे का सहारा होता है। परंतु लड़की तो पराया धन है। वह तो घर की मेहमान है। इस प्रकार के समीकरण में माता-पिता मानते हैं कि लड़कियों को किसी विशेषाधिकार की जरूरत नहीं होती यहां तक कि उनके साथ-साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता है।

इस प्रकार लड़की को एक बोझ माना जाता है और इस बोझ से मुक्ति पाने के लिए दहेज़ दिया जाता है। लड़की को अपने साथ कुछ लाना चाहिए यह प्रथा हर जगह कायम है। घरेलू काम काज तो उसे आना ही चाहिए यह कोई अतिरिक्त विशेषता नहीं है। अगर लड़की स्वयं कमाती भी है तभी उसे अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। कमाने वाली औरतों को भी दहेज के लिए सताया जाता है। अपने ससुराल में लड़कियों को केवल दहेज के लिए ही नहीं बल्कि अन्य कारणों से भी प्रताड़ित किया जाता है।

8.6.3 बच्चे की मां

ऊपर वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि जन्म से मृत्युपर्यन्त लड़की के साथ भेदभाव बरता जाता है। लड़की या महिला को स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा से वंचित रखा जाता है। उसका बचपन उससे छीन लिया जाता है। आरंभ से ही घर के काम काज में झोंक दिया जाता है। कम उम्र में शादी, कई लड़कियों को बचपन में ही बलात्कार का सामना करना पड़ता है और काफी गर्भधारण करने पड़ते हैं। कई लड़कियां दहेज की चिता पर जला दी जाती हैं। शिशु को जन्म देना महिलाओं का प्रमुख दायित्व माना जाता है।

विवाह होते ही लड़की से यह उम्मीद की जाती है कि वह लड़का पैदा करे। यदि उससे बच्चा खासकर लड़का नहीं होता है तो उसे छोड़ दिया जाता है। लड़का होने की उम्मीद में वे बार-बार मां बनती हैं। उनके पास इस बात का विकल्प नहीं होता कि वे मां बनें या न बने, बच्चा जने या न जने। वे भी मानती हैं कि उनके लड़का न हुआ तो ससुराल में उनकी स्थिति और बुरी हो जाएगी और उनके बूढ़ापे की लाठी का सहारा भी तो चाहिए जो लड़का ही हो सकता है।

समाजीकरण की इस प्रक्रिया में लड़की को रोज दबाया जाता हैं और लड़के की मांग बनी रहती है।

क्या आप जानते हैं

कविता

जब एक लड़की
करती है एक गलती
बड़-बड़ करती है
लड़की हमेशा
गलत होती है।
जब कोई लड़की
कोई गलती बताती है
उसे बेहया कहते हैं
वह अशिष्ट होती है।
वह डरती है
इसलिए चुप रहती है।
करो लड़कियों का सम्मान
लड़किया भी बच्चियां हैं
करो उनके अधिकारों का सम्मान
मेरी बहनो
मैं क्या कहूं तुमसे
कइयों ने
प्रताड़ित किया है मुझे
मेरी मा ने
आंख दिखाई है।
मेरे भाई ने ठोकर मारी है।
मारते-मारते मेरी मा
मुझसे कहती है
उठो और
आंगन बुहारो
पढ़कर क्या करोगी
हम नहीं बनाना चाहते
तुम्हे अफसर।
एक लड़की द्वारा रचित

स्रोत: रियल लाइफ; जनवरी 99,

8.7 सारांश

अब हम थोड़ी देर रूकें और जो कुछ भी हमने कहा है उस पर गौर करें। हम अलग-अलग आयु समूहों पर भी विचार कर सकते हैं। ऐसा हो सकता है कि जो उदाहरण हम दिए हों उस अनुभव से आप न गुजरी हों परंतु निश्चित रूप से इन विचारों और मानसिकता का सामना आपको करना पड़ा होगा।

अपने आस-पास देखिए और खासकर अपने अन्दर झांक कर देखिए। आप अपने आस-पास की लड़कियों के जीवन को गौर से देखिए और उसे विश्लेषित करने का प्रयास कीजिए। आप अपना भी मूल्यांकन कर सकते हैं। आप अपनी बहन की जिंदगी को भी गौर से देख सकती हैं। आपकी मां, दादी, आपकी बेटी या आपकी दोस्त किसी का भी उदाहरण आप ले सकती हैं।

आप यह गौर करके देखिए कि वे किन मान्यताओं और पालन-पोषण के दौरान गुजरी हैं। हाल ही में एक घटना घटी। एक लड़की ने अपनी दादी मां से कहा कि वह साइकिल इसलिए नहीं सीख सकती क्योंकि वह लड़की है। दादीं मां यह सुनकर चकित हो गईं। उन्होंने एक वाक्य कहा जिससे उस लड़की का जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया। उन्होंने कहा कि कोई भी ऐसा काम नहीं है जिसे लड़की नहीं कर सकती।

यह सही है कि लड़की किसी मायने में लड़के से कम नहीं है परंतु अभी भी अधिकांश लोगों का मानना है कि लड़कियां लड़कों से कमतर हैं। इस इकाई में हमने इस प्रकार के उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। इस मान्यता में विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार अन्तर भी है। कुछ लोग और संस्थाएं लड़कियों का जीवन सुधारने का प्रयास कर रहे हैं। परंतु परिवर्तन की रफ्तार बहुत धीमी है और उसका विस्तार भी बहुत कम है। इसलिए हमने एक सामान्य लड़की के पालन-पोषण और विभिन्न परिस्थितियों में उसके बढ़ने की बात की है।

8.8 शब्दावली

आकांक्षा : किसी चीज के प्रति इच्छा रखना

संबलन : सुदृढ़ करना या संबलित करना, नए तत्त्वों या अन्य में बढ़ोतरी करने किसी विशिष्ट व्यवहार को बढ़ावा या सुदृढ़ करने के लिए उस व्यवहार के लिए इनाम देना या हतोत्साहित करने के लिए सज़ा देना।

समाजीकरण : एक प्रकिया जिसके द्वारा बच्चे अपने समाज और अपने संबंधों के बारे में जानते हैं। इसके द्वारा वे समाज के नियमों और शिष्टाचार से भी परिचित होते हैं।

कलंक : जब कोई समाज के नियमों का पालन नहीं करता या खासकर कोई महिला सौहार्दपूर्ण तरीके से व्यवहार नहीं करती तो उसे कलंक लगता है।

8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डिवेसिया, एल ऐंड डिवेसिया, वी 1991, गर्ल चाइल्ड इन इंडिया। आशिष पब्लिशिंग हाउस। नई दिल्ली।

चन्ना, करुणा (सं.) 1985, सोशलाइजेशन एजुकेशन एण्ड वूमेन, नई दिल्ली ओरिएंड, लोगमैन।

इकाई 9 विवाह

रूपरेखा

9.0 लक्ष्य और उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 विवाह एक संस्था : नियम और अनुष्ठान
  9.2.1 एक संस्था के रूप में विवाह
  9.2.2 नियम और विनियम
  9.2.3 वैवाहिक अनुष्ठान और संस्कार
9.3 विवाह में लेन देन : दहेज और स्त्रीधन
  9.3.1 दहेज
  9.3.2 स्त्रीधन
9.4 विवाह के कानूनी पहलू
  9.4.1 विवाह
  9.4.2 तलाक
  9.4.3 संपत्ति का अधिकार
  9.4.4 निर्वाह व्यय और संतान संरक्षता का अधिकार
  9.4.5 लड़कियों की विवाह आयु
9.5 वैवाहिक अपराध
  9.5.1 द्विविवाह
  9.5.2 व्यभिचार
  9.5.3 पत्नी पर अत्याचार
  9.5.4 दहेज विरोधी कानून
  9.5.5 दहेज विरोधी कानूनों का प्रभाव दहेज हत्याएं
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में विवाह संस्था पर चर्चा करते हुए हमने बताया है कि भारतीय समाज में यह संस्था नारी की स्थिति को किस तरह प्रभावित करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- विवाह संस्था और महिलाओं की रुचि और स्वतंत्रता को संकुलित करने वाले विभिन्न नियमों और रीति-रिवाजों के बारे में बता पाएंगे;
- दहेज और स्त्रीधन की प्रथाओं के मूल में स्थित विचारधारा और उनके चलन पर चर्चा कर सकेंगे;
- भारत में विवाह के विभिन्न कानूनी पहलूओं के बारे में बता सकेंगे; और
- विवाह से जुड़े अपराधों या हिंसा विशेषकर दहेज के कारण होने वाली हत्याओं और मौतों पर रोशनी डाल सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

यह इकाई आपको विवाह संस्था से परिचित कराती है क्योंकि भारतीय समाज में नारी की स्थिति को यही निर्धारित और प्रभावित करती है। इसमें हमने विवाह से जुड़े विभिन्न मुद्दों का विश्लेषण किया है जो महिलाओं की स्थिति के अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं। ये इस प्रकार हैं: विवाह के करार और उसके निष्पादन की प्रक्रिया, महिलाओं पर अंकुश और प्रतिबंध लगाने वाले कानून और वैवाहिक अनुष्ठान, यथा दहेज और स्त्रीधन, जैसे रीति-रिवाज, विशेषकर पत्नी और पति के स्वजन-समूहों के बीच विवाह के समय *उपहारों का आदान प्रदान* और लेन-देन, विवाह और उससे जुड़े मामलों से संबंधित कानून जैसे तलाक, निर्वाह-व्यय और उत्तराधिकार, विवाह आयु और वैवाहिक हिंसा।

इस इकाई के भाग 9.2 में हमने एक संस्था के रूप में विवाह की अवधारणा, महिलाओं की रुचि, स्वतंत्रता और उनके निर्णय को सीमित करने वाले कानूनों और अनुष्ठानों का विवेचन किया है। इससे आगे के भाग में हमने दहेज और स्त्रीधन जैसे महत्वपूर्ण वैवाहिक रीति-रिवाजों का विश्लेषण करते हुए बताया है कि ये रीति-रिवाज और इनके साथ चलने वाले भेंटें तथा उपहार किस तरह से न सिर्फ वधू की स्थिति बल्कि कन्या पक्ष के लोगों की स्थिति को भी प्रभावित करते हैं। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के संदर्भ में विवाह के कानूनी पक्षों और महिलाओं के लिए उनके निहितार्थों के बारे में भाग 9.4 में बताया गया है। इसके बाद हमने 9.5 विवाह से संबंधित कुछ अपराधों, विशेषकर दहेज हत्या, के बारे में बताया है जिन्हें कि हम पारिवारिक हिंसा की संज्ञा देते हैं।

9.2 विवाह एक संस्था : नियम और अनुष्ठान

इकाई के इस भाग में, हम एक संस्था के रूप में विवाह की अवधारणा को समझेंगे। यहां हम यह भी जानेंगे कि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को वैवाहिक नियम और रीति-रिवाज किस तरह से प्रभावित करते हैं।

9.2.1 विवाह एक संस्था

एक सामाजिक संस्था के रूप में विवाह एक ऐसा मिलन है जिसका संचालन और नियमन रीति-रिवाजों या कानूनों से होता है। यह "पुरुष और स्त्री के बीच एक ऐसा मिलन है जिसके फलस्वरूप स्त्री से उत्पन्न होने वाले बच्चों को दोनों जनकों की वैध संतान माना जाता है।" विवाह परिवार के लिए कानूनी बुनियाद तैयार करता है, यह नए सामाजिक संबंधों की रचना करता है और परिवार तथा नातेदारी के घेरे में आने वाले सभी लोगों के अधिकारों और उनकी स्थिति को प्रतिष्ठित करता है, उसे परिभाषित करता है। प्रत्येक मानव समाज में विवाह को लेकर अपने नियम और प्रक्रियाएं हैं जिन पर आधारित रीति-रिवाज तथा कर्मकांड समाज में महिलाओं की स्थिति को दर्शाते हैं।

भारतीय समाज मूलत: एक पितृसत्तात्मक समाज है जिसमें विवाह का सीधा सा अर्थ स्त्री का अपने जन्म-समूह से अपने पति के समूह में हस्तांतरण है। इसके साथ ही स्त्री संबंधी तमाम–उसके घरेलू, उत्पादक और जनन सेवाओं पर–अधिकार भी हस्तांतरित हो जाते हैं। भारत के कुछ गिने-चुने मातृवंशीय समुदायों में महिलाओं पर अधिकार उसके पति और उसकी मां के वंश के बीच बंट जाता है। इन समुदायों में स्त्री की स्थिति कमोबेश बेहतर रहती है क्योंकि इनमें विवाह नए संबंध तो स्थापित करता है मगर वह स्त्री को और उसके अधिकारों को पति के स्वजन-समूह को हस्तांतरित नहीं करता है जिससे सामान्य तौर पर उसे प्रतिबंधों और वर्जनाओं का सामना नहीं करना पड़ता।

9.2.2 नियम और विनियम

भारत में सभी जगह विवाह कुछ विशेष नियमों और विनियमों से संचालित होता है और यह एक निश्चित धर्म विधि से संपन्न किया जाता है। वरणात्मक और निर्दिष्ट विवाहों से संबंधित अनेक नियम भी प्रचलित हैं जिनकी वजह से जीवन साथी के चयन संबंधी रुचि, पसंद-नापसंद के अवसर सीमित हो जाते हैं। हिन्दू समाज में ऐसे नियम प्रचलित हैं जिनके अनुसार अंतर्जातीय विवाह, अपने गोत्र, कुल और वंश में तथा कुछ विशेष रक्त संबंधियों से विवाह करना वर्जित हैं। लड़कियों का विवाह कच्ची उम्र में ही कर दिया जाता है जिससे भी उनकी रुचि पर अंकुश लग जाता है। उत्तरी और पश्चिमी भारत में कई मुस्लिम समुदायों में दो भाइयों की संतानों में विवाह को सबसे अधिक पसंद किया जाता है। इन समुदायों में सहोदर भाई बहनों के बच्चों में विवाह और विनिमय (अदला-बदली) विवाह को ज्यादा तरजीह दी जाती है। उधर दक्षिण में कुल-गोत्र से बाहर विवाह करने का नियम है तो वहीं भ्राता-भगिनी और मामा-भांजी विवाह का चलन भी खूब है। भ्राता-भगिनी विवाह में पिता की बहन (बुआ) के बेटे से लड़की के विवाह को अधिक पसंद किया जाता है। मातृवंशीय समुदायों में मामा और भांजी के बीच विवाह पूर्णत: वर्जित है क्योंकि मामा और भांजी एक ही वंश से माने जाते हैं। लगभग सभी जनजातीय समुदायों में जनजातीय अंतर्विवाह और कुल बर्हिविवाह का नियम प्रचलित है मगर वहीं इनमें बहुविवाह और विनियम विवाह की प्रथा भी है।

9.2.3 वैवाहिक अनुष्ठान और संस्कार

वैवाहिक नियमों से उपजे अनुष्ठानों और संस्कारों के वास्तविक व्यवहार से ही समाज में पुरुष और स्त्री की असमान स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। वैवाहिक अनुष्ठान और संस्कार एक सामाजिक प्रणाली में लिंगों (स्त्री-पुरुष) के साथ किए जाने वाले असमान व्यवहार को न सिर्फ प्रतिबिंबित करते हैं बल्कि इसे बारंबार दुहरा कर इस असमान स्थिति को महत्ता और चिर-स्थायित्व प्रदान करते हैं (सीएसडब्लूआई, 1974;63)। हिंदू विवाह की विचारधारा और वैवाहिक अनुष्ठान पुरुष श्रेष्ठता को ही प्रतिष्ठित करते हैं। हिन्दुओं में विवाह धार्मिक रूप से एक पवित्र बंधन है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता है। प्राचीन काल में विवाह मां-बाप और सगे-संबंधियों द्वारा तय किए जाते थे और तलाक और विधवा विवाह का कोई प्रावधान, या अनुमति नहीं थी।

विवाह एक महंगा काम – विशेषकर लड़की के मां-बाप के लिए।
सौजन्य : बी किरणमई, नई दिल्ली

एक हिन्दू पुरुष के लिए गृहस्थ आश्रम में प्रवेश विवाह के बिना संभव नहीं था और इसीलिए समाज के प्रति अपने कर्तव्यों, धर्म का निर्वाह करना उसके लिए सर्वथा अनिवार्य था। विवाह के बिना उसके संतानोत्पत्ति नहीं हो सकती थी और पुत्र के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता था। पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी इसलिए पत्नी के देहांत के बाद उसके लिए पुनर्विवाह करना अनिवार्य था और अगर पत्नी बांझ हो या उसने सिर्फ बेटियों का जन्म दिया हो तो मरणोपरांत मोक्ष प्राप्ति के लिए उसके पुनर्विवाह करना जरूरी था। विधवाएं पुनर्विवाह नहीं कर सकती थीं और उन्हें सच्चरित्र और कामरहित सादा जीवन व्यतीत करना होता था। महिलाओं पर इस तरह के कई प्रतिबंध, वर्जनाएं थोपी गई थीं, उन्हें परिवर्जन से संबंधित नियमों का पालन करना होता था जैसे परदा रखना, नेपथ्य में रहना और एक उचित व शालीन आचार संहिता का पालन करना (कपाडिया, 1955; अध्याय 8)।

हिन्दुओं में विवाह संस्कार में अनुष्ठानों या कर्मकाड़ों का एक पूरा सिलसिला चलता है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कर्मकांड हैं पिता द्वारा वर को बेटी का 'कन्यादान' किया जाना, विवाह होम यानी अग्नि प्रज्जवलित करके विवाह के साक्षी और शुद्धीकर्ता के रूप में अग्निदेव का आह्वान, पाणि ग्रहण संस्कार यानी वर द्वारा वधू का हाथ थामना और अंत में वर-वधू का अग्नि के सात-फेरे लेना यानी 'सप्तपदी'। इसके बाद वधू को वर के घर ले जाया जाता है। हिंदू शास्त्रों में विवाह का अर्थ 'ले जाना' होता है। ईसाई विवाह में वधू को धर्म विधि के अनुसार वर को सौंप दिया जाता है और उससे वचन देने का आह्वान किया जाता है कि वह अपने पति को प्रेम करेगी और उसकी आज्ञा मानेगी। भारत के कई भागों में मुस्लिम वधू को उसका शौहर अपनी बांहों में उठाकर उसे सवारी पर बिठाता है जिसमें उसे अपनी ससुराल जाना होता है।

ये संस्कार और कर्मकांड पुरुष के वर्चस्व को ही प्रदर्शित करते हैं जिसमें स्त्री का दान किया जाता है और दूसरे घर ले जाया जाता है। निम्न जाति के कई हिन्दुओं और जनजातियों में अधिकांश वैवाहिक कर्मकांड बड़े ही साधारण तरीके से कम समय और कम खर्च में किए जाते हैं। इनमें तलाक और पुनर्विवाह का चलन भी है और महिलाओं को विवाह निर्णय की स्वतंत्रता अधिक हासिल है। मगर पिछले कुछेक वर्षों से ये लोग भी ऊंची जातियों के विश्वासों और कर्मकांडों को अपनाने लगे हैं, जिसके पीछे उनका मंतव्य उच्च सामाजिक स्थिति के सूचक इन रीति-रिवाजों को अर्जित करना, उन्हें अपने दैनिक व्यवहार और लोकाचार का हिस्सा बनाना है। इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है महिलाओं पर तमाम तरह के प्रतिबंध थोपना।

मुसलमानों में विवाह का संचालन उनके वैयक्तिक कानूनों (पर्सनल लॉ) से होता है, जिसमें विवाह धार्मिक रूप से पवित्र बंधन नहीं है जिसे कि तोड़ा न जा सके। बल्कि यह एक करार, एक अनुबंध है, जिसकी प्रक्रिया बड़ी सरल है। विवाह एक कानूनी दस्तावेज में दोनों पक्षों के दस्तखत करने के बाद संपन्न होता है और इसे कभी भी तोड़ा जा सकता है। इस्लाम में स्त्री और पुरुष को एक सीमा तक समानता का दर्जा हासिल है कि उसमें विधवा विवाह पर कोई प्रतिबंध नहीं है और उन्हें तलाक लेने की अनुमति भी प्राप्त है। उन्हें संपत्ति का उत्तराधिकारी बनने, मेहर (या विधवादाय) तथा रोजा (उपवास) रखने का अधिकार है। मगर इस्लाम में भी व्यवहार में स्त्री और पुरुष की स्थिति में अनेक विसंगतियां, विषमताएं हैं। इस्लाम में बहुविवाह की अनुमति होने के कारण इसमें पत्नी का दर्जा स्पष्टतः निम्न हो जाता है। फिर औरत को पुरोहित (मुल्ला, मौलवी या इमाम) बनने का अधिकार नहीं है, और न ही उसे इबादत (नमाज पढ़ने-पढ़ाने) की अनुमति है। अपने सम्प्रदाय के औपचारिक धार्मिक संगठन और उसके कानूनी मामलों में मुस्लिम महिलाओं के

लिए कोई जगह नहीं है। उसे काजी जैसे ओहदे पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है। विनम्रता, शालीनता और सचरित्र को कुरान में औरत के लिए महत्वपूर्ण बताया गया हैं और उसे अपने रूप-रंग और आभूषणों का प्रदर्शन करने की मनाही है। यूं तो इस्लाम निकाह में दोनों पक्षों की स्वतंत्र सहमति अनिवार्य मानता है मगर व्यवहार में लड़कियों के मामले में यह सिर्फ एक औपचारिकता भर होती है। विवाह के करार या अनुबंध को खत्म करने का अधिकार पति को ही हासिल है। मेहर यूं तो ब्याहता औरत को तलाक की स्थिति में कुछ आर्थिक सुरक्षा की गारंटी देता है क्योंकि उसे तलाक देने के लिए शौहर स्वच्छंद है। मगर तलाक या विधवा हो जाने पर कई स्त्रियां मेहर का दावा नहीं कर पाती हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जब करार लिखित न हो। हालांकि इस्लाम पत्नी, बेटी, मां, बहन और दादी को संपत्ति में हिस्सा दिए जाने की बात तो करता है लेकिन उसमें भी सामान्य नियम यही है कि वे अपने परिवार के पुरुषों को मिलने वाली संपत्ति से आधी संपत्ति की ही उत्तराधिकारी बन सकती हैं। इस्लाम औरत को इतनी स्वतंत्रता नहीं देता कि वह विवाह के लिए अपने शौहर का चुनाव स्वयं करे, बल्कि उसे यह विशेषाधिकार है कि जिस व्यक्ति से उसका ब्याह रचाया जा रहा है उसके लिए वह सहमत हो। मगर ज्यादातर उसकी सहमति नहीं ली जाती है या फिर यह एक औपचारिकता भर होती है, सब कुछ पहले ही तय कर लिए जाता है (कपाडिया, 1955: अध्याय 9)।

इस चर्चा से स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक विचारधारा और विवाह में भारी व्यावहारिक अंतर है। इस्लामी कानून में स्त्री को अगर लगभग समान दर्जा दिया भी गया है तो वास्तविकता में उससे गैर-बराबरी का व्यवहार किया जाता है। आगे भाग 9.4 में हम विवाह के कुछ कानूनी पहलुओं पर चर्चा करेंगे।

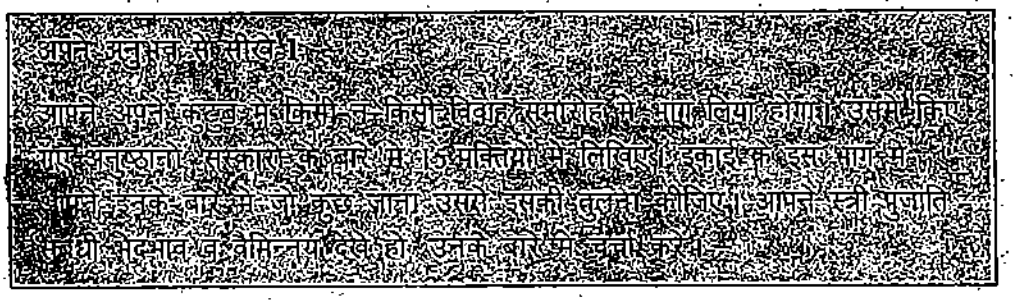

9.3 विवाह में लेन-देन : दहेज और स्त्रीधन

भारत में भेंट और उपहार लगभग प्रत्येक वैवाहिक लेन-देन का एक हिस्सा हैं। अब चूंकि विवाह यहां दो परिवारों के बीच नए संबंध स्थापित करता है, इसलिए वैवाहिक लेन-देन ने दहेज या स्त्रीधन के रूप में संस्थागत स्वरूप पा लिया है।

इकाई के इस भाग में हम विवाह में होने वाले लेन-देन, विशेषकर दहेज और स्त्रीधन पर उनकी स्थिति-संबंधों की रोशनी में अपनी चर्चा केन्द्रित करेंगे जिनमें भेंट और उपहार लिए-दिए जाते हैं और बताएंगे कि ये लेन-देन स्त्री पुंजाति असमानताओं को किस प्रकार प्रदर्शित करते हैं।

9.3.1 दहेज

दहेज का अर्थ धन, जेवरात, वस्त्र, घरेलू सामान इत्यादि का वधू के साथ वर के घर में हस्तांतरण है। दहेज एक पृथक किया गया भुगतान नहीं है बल्कि विवाह, बच्चे के जन्म, त्योहार इत्यादि अवसरों पर समय-समय पर दिए जाने वाले नाना प्रकार के भेंट और उपहार भी शामिल हैं। बहरहाल, इनमें सबसे महत्वपूर्ण और स्पष्ट हिस्सा

और उपहार विवाह के समय ही दिए जाते हैं (सीएसडब्लूआई, 1974:71)।

कुछ विद्वान तर्क देते हैं कि दहेज मरण-पूर्व उत्तराधिकार है, महिलाएं जिसमें अचल संपत्ति की स्वामिनी होती हैं जिस प्रकार पुरुष चल संपत्ति के स्वामी होते हैं। मगर कुछ वर्षों से नारी-अधिकारवादी विद्वान यह तर्क दे रहे हैं कि दहेज को मरण-पूर्व दायभाग या उत्तराधिकार के सरल रूप में देखना गलत है क्योंकि यह संपत्ति के रूप में दहेज के वास्तविक स्वामित्व, नियंत्रण-अधिकार और उसके उपभोग से जुड़े कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को बताने में असमर्थ है। असल में, उनका कहना है कि महिलाएं दहेज में जो पाती हैं उसकी तुलना उस चल संपत्ति से कदापि नहीं की जा सकती है जो पुरुषों के स्वामित्व और नियंत्रण में रहती है। उत्तरी और पश्चिमोत्तर भारत में दहेज का हस्तांतरण वर के नातेदारों को कर दिया जाता है, जिसे वे अपने घनिष्ठ संबंधियों में बांट देते हैं। दहेज से ससुराल में महिला का दर्जा ऊंचा जरूर हो जाता है, क्योंकि इससे पति का परिवार उसे व उसकी मायके को आदर की दृष्टि से देखने लगता है। मगर इससे अपने पति के घर में उसे किसी तरह का अधिकार या स्वतंत्रता नहीं मिल जाती। बल्कि प्राचीन काल की तुलना में अब उसका अपने स्त्रीधन पर नियंत्रण नहीं के बराबर रह गया है।

इसलिए दहेज और उत्तराधिकार को एक दूसरे के तुल्य नहीं माना जा सकता है। मगर हां, इस के कुछ अपवाद अवश्य हैं, जैसे दक्षिण भारत के मातृवंशीय समाजों में दहेज मरण-पूर्व दायभाग के रूप में हुआ करता था। इनमें स्त्री को जमीन सहित काफी मात्रा में संपत्ति दहेज में दी जाती थी, जिससे संकट के समय उनकी स्थिति मजबूत बनी रहती थी और उन्हें सौदाकारी की क्षमता भी बढ़ जाती थी। दहेज के रूप में इस तरह के दायभाग का एक अतिरिक्त प्रत्यक्ष लाभ महिलाओं को यह था कि माता-पिता की मृत्यु से पहले ही उन्हें संपत्ति में हिस्सा प्राप्त हो जाता था। आंध्र प्रदेश और तमिलनाडू की जोतदार जातियों में अपनी बेटियों को उनके विवाह में दहेज में जमीन और जेवर-आभूषण देने का चलन अब भी मौजूद है। इस प्रकार जहां कहीं भी दहेज अचल संपत्ति के रूप में दिया गया हो मगर जहां महिलाओं का इस तरह प्राप्त संपत्ति पर अपना नियंत्रण हो, वहां दहेज ने निश्चित ही संकट में महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ किया होगा। विशेषकर दायभाग या उत्तराधिकार की अनुपस्थिति में जैसा कि दक्षिणी भारत के कई समुदायों और मणिपुर के मैती समुदाय में प्रचलित है (सीएसडब्लूआई, 1974; 72)।

वैवाहिक संबंध का एक महत्वपूर्ण पहलू जो कि दहेज संस्था की व्यापकता को विशेषकर उत्तरी भारत के हिन्दुओं में, स्पष्ट करता है, वह है कन्यादान करने वालों और कन्या दान पाने वालों की स्थिति में देखी जाने वाली असमानता। जिस तरह से नारी का स्थान पुरुष से और वधू का स्थान वर से नीचे माना जाता है ठीक उसी प्रकार कन्या पक्ष का स्थान वर-पक्ष से नीचे रहता है। दोनों के बीच के अंतर को उपहार देने का एकतरफा सिलसिला काफी कठोर बना देता है। दामाद, उसके माता-पिता और संबंधियों को लड़की के माता-पिता से विभिन्न अवसरों पर उपहार लेने का अधिकार है, लेकिन दूसरी ओर लड़की के माता-पिता अपने दामाद के घर के भोजन को हाथ तक नहीं लगा सकते। यह उत्तरी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में और उन समुदायों में अधिक प्रचलित है जिनकी महिलाएं घर से बाहर काम करने नहीं जातीं। उत्तरी भारत के जाटों और राजपूतों, गुजरात के अनावली ब्राह्मणों और पाटीदारों, कान्यकुब्ज और सरयूपारीण ब्राह्मणों में इस प्रथा का चलन अधिकार है। चूंकि वधू और कन्या पक्ष का दर्जा नीचे होता है, इसलिए ससुराल में वधू से व्यवहार इस पर निर्भर करता है कि विवाह के समय वह कितना दहेज लाती है और उसके बाद उसके मायके से उपहारों का सिलसिला किस तरह चलता है (वही: 65)।

दहेज का चलन अब दक्षिण भारत में, मुसलमानों में व गरीबों में तथा देश की निम्न जातियों और जनजातीय समुदायों में फैलने लगा है। मुसलमानों में हालांकि विवाह के समय मेहर तय करने का चलन है, जिसे बाद में किसी भी समय लेकिन तलाक के समय निश्चित ही देना होता है। लेकिन पत्नी विरले ही अपने पति से मेहर की मांग कर पाती है। तलाक के बाद महिलाओं को बिना मेहर या निर्वाह व्यय दिए दीन-हीन स्थिति में त्याग दिया जाता है। मुस्लिम समुदाय में दहेज का चलन पहले से ही मौजूद है और निकाह के दौरान कई रीतियां ऐसी हैं जो वर और उसके परिवार को नकद धन और अन्य सामान देने के अवसर प्रदान करती हैं। केरल के कट्टर ईसाइयों, मंगलूर तथा गोवा के कैथोलिकों में भी दहेज का चलन है। बल्कि इनमें दोनों पक्षों की ओर से विवाह का खर्च कन्या पक्ष को ही उठाना पड़ता है।

इस तरह दहेज से स्त्री को कोई बड़ा दर्जा, संपत्ति या सुरक्षा नहीं मिलती। उल्टे यह लड़की और उसके माता-पिता के लिए बड़ी कठिनाइयां पैदा करता है क्योंकि कि हरेक व्यक्ति की आर्थिक पृष्ठभूमि भिन्न होती है। दहेज समाज में असमानता को बढ़ाता है और स्त्री के घरेलू कार्यों को अनुत्पादक दिखाता है। शिक्षा का जनमानस पर कोई प्रभाव पड़ता नहीं दिखाई देता जैसा कि शहरी क्षेत्रों और दिल्ली जैसे महानगरों में दहेज के कारण होने वाली बढ़ती मौतों से स्पष्ट हो जाता है। इकाई के भाग 9.5 में हमने दहेज के इस अभिशाप के बारे में बताया है।

9.3.2 स्त्रीधन

स्त्रीधन एक प्रकार का वैवाहिक भुगतान है जिसमें वर पक्ष की ओर से वधू को कीमती सामान (जैसे जेवरात, वस्त इत्यादि) दिए जाते हैं। यह प्रथा भारत की अधिकांश जनजातियों में प्रचलित हैं, जिनकी संख्या लगभग 7 करोड़ है। इसके अलावा यह कुछ जाति समूहों में भी प्रचलित है। स्त्रीधन का स्वरूप और उसकी राशि अलग-अलग अंचलों, जनजातियों और जातियों में अलग-अलग होती है। कुछ सिर्फ नकद भुगतान करते है तो कुछ कीमती सामान इत्यादि के रूप में। छोटा नागपुर के ओरांव लोग वधू के संबंधियों के लिए वस्त्र स्वीकार करते हैं, तो हो और मुंडा जनजातियों में पालतू पशु लेने का चलन है। अरुणाचल प्रदेश में वधू-मूल्य के रूप में मिथुन नामक पशुधन दिया जाता है। आओ नागे लोग धान की टोकरियां और एक देसी कृपाण भेंट में देते हैं। उड़ीसा के भूमिया कुछ नकदी, 5-6 साड़ियां और तीन बकरियां दुल्हन के परिवार को देते हैं (सीएसडब्लूआई, 1974:69)।

इन समुदायों में महिलाओं की स्थिति बेहतर समझी जाती है क्योंकि वे महिलाओं के आर्थिक योगदान का महत्व समझते हैं। कोई भी पुरुष अपनी पत्नी से बुरा व्यवहार नहीं कर सकता या उसे घर से निकाल नहीं सकता क्योंकि उसे अपनी पत्नी से जो भी मुकावजा मिलेगा उससे कहीं ज्यादा धन उसे नई पत्नी लाने के लिए वधू-मूल्य के रूप में चुकाना पड़ेगा। कभी-कभी पुरुषों को अपनी भावी दुल्हन के घर में वधू-मूल्य को कम या माफ कराने के लिए काम करना पड़ता है। कई जनजातियों में स्त्रीधन की भरपाई या क्षतिपूर्ति के लिए विनिमय (अदला-बदली) विवाह करने का प्रचलन है। मध्य प्रदेश की गोंड जनजाति में इस प्रथा को "दूध लौटावा" कहा जाता है। इस लिए स्त्रीधन प्रथा कभी-कभी पुरुषों के लिए बड़ा ही महंगा साबित होता है। मगर स्त्रीधन के लेन-देन के मूल में पत्नी को खरीद लेने की धारणा काम करती है, जिसमें पुरुष स्त्रियों से वस्तुओं का या स्त्री पर अधिकार का परस्पर आदान-प्रदान कर लेते हैं। इस प्रकार के लेन-देनों में महिलाओं को कुछ कहने का कोई विशेष अधिकार नहीं होता और व्यक्तिगत रूप से उन्हें इससे कोई लाभ भी होता दिखाई नहीं पड़ता। इस तरह से स्त्री के घरेलू, यौन और प्रजननात्मक सेवाओं पर पुरुषों का अधिकार स्थापित हो जाता है।

स्त्रीधन में कीमती वस्तुओं के साथ-साथ स्त्रियों के जो अधिकार पुरुष को हस्तांतरित हो जाते हैं उनमें अक्सर बच्चों पर अधिकार का हस्तांतरण भी शामिल होता है। बच्चों की सामाजिक मान्यता का मुद्दा विशेषकर तब बड़ा ही नाजुक मोड़ ले लेता है जब पति-पत्नी में तलाक हो जाए। जिन समुदायों मे स्त्रीधन की प्रथा है उनमें ऐसी स्थिति में प्राय: पिता को ही संतान पर अधिकार रहता है। स्त्रीधन लौटाने पर ही स्त्री दूसरे पति अपनी संतान का अधिकार दे सकती है। वह किसी भी अन्य पुरुष के साथ रह सकती है या विवाह रचा सकती है। लेकिन उसके पहले पति के पशु जब तक उस स्त्री के कुल में हैं तब तक उसकी संतान पर पहले पति का ही अधिकार रहेगा। स्त्रीधन से वैध बने विवाह को स्त्रीधन लौटाकर ही तोड़ा जा सकता है। कई जनजातीय समाजों में दूसरे पति को ग्राम पंचायत द्वारा निर्धारित मुआवजे की राशि का भुगतान पहले पति को करना पड़ता है तभी दूसरे विवाह को वैधता मिलती है। स्त्रीधन प्रथा के मूल में निहित पत्नी को "खरीदने" की धारणा कुछ समय से अधिक मुखर होती जा रही है। स्त्रीधन में प्राप्त धन के बूते धनी बनने वाले कई जनजातीय पुरुष तो दो या तीन बार विवाह रचाते हैं। कुछ गैर-जनजातीय पुरुष भी अब स्त्रीधन देकर जनजातीय लड़कियों से विवाह करने लगे हैं। गरीबी के कारण इन लड़कियों के मां-बाप अपनी बेटियों को गैर-जनजाति के लोगों से ब्याहने से परहेज नहीं करते। ऐसे परिवारों और स्त्रीधन की समूची प्रथा की प्रतिष्ठा इन समाजों में घटती जा रही है। बल्कि इनमें दहेज एक अधिक प्रतिष्ठाजनक वैवाहिक लेन-देन के रूप में उभर रहा है क्योंकि जनजातियों में सिर्फ कुछ लोग ही दहेज देने की सामर्थ्य रखते हैं। इस प्रकार दोनों प्रथाओं में एक ओर स्त्रीधन है जिस के मूल में यह धारणा काम करती है कि स्त्री दूसरों की संपत्ति है, तो दूसरी ओर दहेज है, जो कि लड़की के मां-बाप पर भारी आर्थिक बोझ डालता है और जिसने समाज में दहेज हत्या जैसी बुराइयों को जन्म दिया है। भारतीय समाज में नारी की स्थिति को उन्नत करने के लिए दहेज और स्त्रीधन दोनों प्रथाओं को समाप्त किए जाने की आवश्यकता है।

जरा सोचिए – 1

1) दहेज का क्या अर्थ है?

2) दहेज क्या मरण-पूर्व का दायभाग या उत्तराधिकार है?

3) स्त्रीधन दहेज से किस तरह भिन्न है? महिलाओं की स्थिति के लिए ये दोनों किस तरह जिम्मेदार हैं? अपना उत्तर 12 पंक्तियों में दीजिए।

9.4 विवाह में कानूनी पहलू

इकाई के इस भाग में हम विवाह और विवाह से जुड़े मामलों जैसे तलाक, संपत्ति और निर्वाह-व्यय (गुजारा-खर्च) आदि के कानूनी पहलुओं पर चर्चा करेंगे। यह देखने में आता है कि एक ओर कानून में ही कई कमजोरियां, कमियां हैं लेकिन दूसरी ओर जहां कहीं भी कानून नारी के पक्ष में जाता है तो वहां उसका पालन निष्ठा से नहीं किया जाता है।

9.4.1 विवाह

भारत में अनेक धर्म प्रचलित हैं और प्रत्येक धर्म के अलग नियम और परंपराएं हैं जो विवाह और वैवाहिक संबंधों का संचालन करते हैं। इन्हीं नियमों को हम वैयक्तिक कानून (पर्सनल लॉ) की संज्ञा देते हैं। इन कानूनों पर भारत के बहुसंख्य लोग चलते हैं, जिनमें विवाह, तलाक और संपत्ति अधिकार के संदर्भ में असमान सामाजिक-लिंग संबंध देखने में

आते हैं। आज की परिस्थितियों में इनमें से कुछ कानून अप्रासंगिक और पुराने हो गए हैं, मगर इन्हें दस्तूर माना जा रहा है जिसमें नारी-जाति के हितों की उपेक्षा हो रही है। इनमें से कुछ सम्प्रदाय तो इन कानूनों की अपनी मनमानी व्याख्या और तर्क देते हैं, जिनके विरोध में अधिकांश निर्धन और अनपढ़ महिलाओं के पास न तो कुछ कहने का साहस होता है और न ही कुछ कर पाती है। विभिन्न धार्मिक संप्रदायों द्वारा व्यवहार में लाए जाने वाले कुछ कानूनों के बारे में हम यहां बता रहे हैं।

इकाई में पीछे भाग 9.2 में हमने पारंपरिक हिन्दू विवाह की मुख्य विशेषताओं के बारे में बताया था। अब हम विवाह संस्था को संचालित करने वाले सदियों पुराने रीति-रीवाजों और नियमों में आए कुछ महत्वपूर्ण बदलावों के बारे में यहां बताएंगे। उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश शासकों ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए सती प्रथा को समाप्त करने वाले कानून बनाए और विधवा विवाह को कानूनन वैधता प्रदान की। स्वतंत्रता-कालीन भारत में हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 पास किया गया जो सबसे महत्वपूर्ण कानून है। इस कानून में परिभाषित हिंदुओं में बौद्ध, जैन, सिख और उनके विभिन्न पंथ शामिल हैं। इस अधिनियम के अनुसार न्यूनतम विवाह आयु लड़कों के लिए 21 वर्ष और लड़कियों के लिए 18 वर्ष है इसमें बहुविवाह पर प्रतिबंध हैं, तलाक और संबंध विच्छेद का प्रावधान है और गोत्र में तथा अंतर्जातीय विवाह मान्य हैं।

मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियों के अपने वैवाहिक कानून हैं। भारतीय मुस्लिम समुदाय के विवाह संस्था में मुस्लिम विवाह व विवाह विच्छेद अधिनियम के पारित होने के अलावा और कोई बदलाव नहीं आया है। मुसलमान अपने वैयक्तिक कानूनों पर चलते हैं जिनमें अलग-अलग जगह में भिन्नता हो सकती है। जैसा कि हमने पीछे बताया है, इनमें विवाह की विधि, प्रक्रिया बड़ी ही सरल है। ईसाइयों पर भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम लागू होता हैं, जिसमें अंतर्धार्मिक विवाह की अनुमति है, लड़के और लड़की के लिए विवाह आयु तय है। चर्च में पादरी विवाह संपन्न कराता है। मगर इसके लिए पादरी का होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि इस कानून के अंतर्गत एक मैरिज रजिस्ट्रार या सक्षम अधिकारी विवाह संपन्न करा सकता है। इसी प्रकार पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936, के अनुसार संचालित होता है। इसमें विवाह पारसी संस्कारों, विधियों के अनुसार संपन्न कराया जाता है और उस का पंजीकरण कराया जाता है। इस कानून में द्विविवाह पर प्रतिबंध है, इसमें लड़के और लड़की के लिए समान विवाह आयु तय है और वर्जित संबंधों की कोटियां है। (एनपीपीडब्लू, 1988:139-40)।

भिन्न समुदायों के सदस्यों पर अलग-अलग लागू होने वाले इन कानूनों के अलावा कोई भी लड़का या लड़की भले वे किसी भी धर्म या जाति के हों, विशेष विवाह अधिनियम 1954 के अंतर्गत अपना "विवाह संपन्न" करा सकते हैं। इस कानून के तहत सिविल मैरिज के लिए किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान या पारंपरिक रीतियां अनिवार्य नहीं है, बल्कि इसमें विवाह का पंजीकरण किया जाता है। इसमें लड़के और लड़की की विवाह आयु तय है, द्विविवाह निषिद्ध है और कुछ विशेष घनिष्ठ संबंधियों के बीच विवाह पर प्रतिबंध है (बशर्ते जिस संप्रदाय के भावी वर और वधू हों, उसमें इस तरह के विवाहों की अनुमति हो)।

विशेष विवाह अधिनियम 1954 युवा युगलों को विवाह करने या अपना जीवन साथी चुनने का निर्णय स्वयं करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। मगर विवाह ज्यादातर मां-बाप द्वारा तय किए जाते हैं और अपने-अपने वैयक्तिक कानूनों के अनुसार संपन्न कराए जाते हैं। इन वैयक्तिक कानूनों के क्या-क्या परिणाम, प्रभाव हैं उसके बारे में हम इकाई में पीछे भाग 9.2 में बता चुके हैं। हिन्दू विवाह अधिनियम (1995) के कारण हिन्दू पारंपरिक रीति-रिवाजों में

आए बदलावों के चलते कम से कम बहुविवाह प्रथा पर रोक लगी है और अंतर्जातीय विवाह की स्वतंत्रता मिल गई है, जिसका लाभ स्त्रियों को निश्चय ही हुआ है। मगर हिन्दुओं में भी विवाह ज्यादातर माता-पिता और सगे-संबंधियों द्वारा पारंपरिक वैवाहिक नियमों के अनुसार इस अधिनियम में निर्दिष्ट आयु से बेहद कम आयु में तय किए जाते हैं। द्विविवाह और बहुविवाह अब भी होते हैं मगर ऐसे मामले अक्सर प्रकाश में नही आते। विवाह कानूनों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए गए हैं और जो भी परिवर्तन हुए हैं व्यवहार में उन पर अमल नहीं किया जाता है।

9.4.2 तलाक

पीछे हमने बताया है कि हिन्दुओं में पहले तलाक की अनुमति नहीं थी। मगर हिन्दु विवाह अधिनियम 1955 ने इसका प्रावधान किया। इस कानून के अंतर्गत पति और पत्नी के लिए तलाक का आधार समान है। इसके अलावा वें आपसी सहमति से भी तलाक ले सकते हैं। मगर व्यवहार में एक महिला विरले ही तलाक लेती है क्योंकि तलाकशुदा औरत से सामाजिक कलंक जुड़ जाता है। इसके विपरीत पुरुषों को इस तरह का कलंक ढोना नहीं पड़ता। जिन हिन्दू जनजातीय समुदायों में तलाक और पुनर्विवाह होते हैं उनमें भी उनके पारंपरिक कानून ही चलते हैं।

मुसलमानों में बीवी को तलाक सुनाने का पति का अधिकार मुस्लिम विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम 1939 के पारित हो जाने के बावजूद भी कायम रखा गया है। जिसमें पति अपनी पत्नी को आसानी से तलाक दे सकता है। मगर स्त्री स्वयं तलाक नहीं ले सकती है इसके लिए उसे अपने पति से मांग करनी पड़ती है। अपने शौहर से मुक्ति पाने के लिए उसे मेहर का अपना दावा छोड़ना पड़ता है और साथ में शौहर को भी इसके लिए राजी होना चाहिए। पति अगर तलाक देने के लिए सहमत नहीं हो तो उस स्थिति में उसे कानून का सहारा लेकर जटिल और कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। इस तरह वह तलाक तो ले लेती है मगर वह निर्वाह व्यय (गुजारे के लिए खर्च) का दावा नहीं कर सकती। मुसलमानों में तलाक को आम तौर पर अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है और कुरान के तहत यह अंतिम उपाया है। मगर मुस्लिम शौहर अपनी इच्छा से अपनी पत्नियों को छोड़ देते हैं या उन्हें तलाक दे देते हैं। इसके चलते कई मुस्लिम निर्धन शिक्षित महिलाओं को बिना किसी दोष के परित्यक्ताओं का जीवन वह भी बिना किस गुजारे खर्च के व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है।

जिस प्रकार मुस्लिम व्यक्ति अपनी पत्नी को एक तरफा तलाक कह सकता है, उसी प्रकार ईसाई व्यक्ति व्यभिचार का आरोप लगाकर अपनी पत्नी से तलाक ले सकता है। मगर एक ईसाई स्त्री को अपने पति से तलाक लेने के लिए पति पर कौटुंबिक व्यभिचार, द्विविवाह, बलात्कार या अप्राकृतिक यौनाचार के दोष को सिद्ध करना होता है। मुस्लिम और ईसाई वैयक्तिक कानूनों में आपसी सहमति से तलाक लेने-देने का कोई प्रावधान नहीं है। एक नए संशोधन से पारसी विवाह और तलाक अधिनियम को हिन्दू वैवाहिक कानून से मिलता-जुलता रूप दे दिया गया है (एनपीपीडब्लू, 1988:140)।

विशेष विवाह अधिनियम 1954 में सभी धार्मिक संप्रदायों के लोगों के लिए तलाक के समान प्रावधान हैं।

9.4.3 संपत्ति का अधिकार

जहां तक संपत्ति पर अधिकार की बात है, न तो धर्म पर आधारित कोई वैयक्तिक कानून और न ही पंथ निरपेक्ष कानून महिलाओं को संपत्ति पर बराबर का अधिकार देते हैं। हिन्दू

दायप्राप्ति अधिनियम 1956 अपने पिता की संपत्ति में महिलाओं को भी बराबर का अधिकार देता है। उसे संपत्ति के पूर्ण स्वामित्व और उसे अपनी इच्छा के अनुसार बेचने का अधिकार प्राप्त है। संशोधित हिन्दू कानून यूं तो स्त्री को कई अधिकार देता है लेकिन वह सहसमांशिता का सदस्य नहीं बन सकती है। फिर व्यवहार में गिनी-चुनी महिलाएं ही अपने पिता की संपत्ति में अपना हिस्सा मांगने का साहस दिखा पाती हैं।

इस्लाम ने पत्नी, बेटी, मां, बहन और दादी को संपत्ति में अंश देने का चलन तो आरंभ किया, मगर उसे अपने परिवार के पुरुष से आधा अंश ही अपने पिता की संपत्ति में मिलता है। वह बराबर की हिस्सेदार या उत्तराधिकारी नहीं होती। पारसी स्त्रियों को इसी तरह संपत्ति में अधिकार तो होता है मगर अपने भाइयों के बराबर नहीं। बल्कि पारसी स्त्री को भी अपने पिता की संपत्ति में अपने भाई से आधा हिस्सा ही मिलता है। सीरियाई ईसाइयों में स्त्रियों को पैतृक संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता था मगर भारतीय दायप्राप्ति अधिनियम 1956 के लागू हो जाने के बाद अब पैतृक संपत्ति में उन्हें भी बराबर का अधिकार है।

घर-परिवार में नारी के श्रम उसके आर्थिक योगदान को न तो वैयक्तिक कानून कोई महत्व, सम्मान देते हैं और न ही नागरिक कानून। इसीलिए तलाक होने पर उन्हें संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता है। वह किसी भी तरह की आर्थिक-सामाजिक सुरक्षा के बिना त्याग दी जाती है और वह अक्सर स्त्रीधन से भी वंचित कर दी जाती है। अस्सी के दशक में भारत के सर्वोच्च न्यायलय ने अपने एक ऐतिहासिक फैसले में यह व्यवस्था दी कि स्त्रीधन ब्याहता स्त्री की निजी संपत्ति है जिसे पति और सास-ससुर की सुरक्षा में सिर्फ अमानत के बतौर रखा गया माना जाना चाहिए और जब कभी वह ब्याहता इसकी मांग करे उसे स्त्रीधन लौटा दिया जाए (एनपीपीडब्लू, 1988:141-42)।

9.4.4 निर्वाह-व्यय और संतान संरक्षणता का अधिकार

पति-पत्नी में न्यायिक या अदालती संबंध विच्छेद से पहले या उसके बाद पति का यह कानूनी दायित्व है कि वह पत्नी के गुजारे के लिए उसे खर्च दे। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 तथा हिन्दू दत्तक ग्रहण और निर्वाह-व्यय अधिनियम 1956 की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत इसके लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। निर्वाह-व्यय के प्रावधान पारसी विवाह और तलाक अधिनियम 1936 और भारतीय तलाक अधिनियम 1869 में भी दिए गए हैं। मुस्लिम महिला (तलाक संबंधी अधिकार रक्षा) अधिनियम 1986 में मुस्लिम महिलाओं के निर्वाह-व्यय संबंधित प्रावधान किए गए हैं (एनपीपी डब्ल्यू, 1988 :142)।

हिन्दू नाबालिग और संरक्षणता अधिनियम 1956 के अनुसार लड़कों और अविवाहित लड़कियों का प्राकृतिक संरक्षक पहले पिता और उसके पश्चात मां होगी। हालांकि इस अधिनियम के अंतर्गत मां को अपनी संतान पर प्राचीन हिन्दु कानूनों से कहीं ज्यादा अधिकार हासिल है, मगर पिता के अधिकार को ही इसमें अधिक महत्ता दी गई है। मुसलमानों में तलाक होने पर बच्चों पर पिता का ही अधिकार रहता है। लड़के को मां अपने संरक्षण में सात वर्ष और लड़की को ग्यारह वर्ष की आयु तक ही रख सकती है जिसके बाद उन्हें पिता के संरक्षण में भेज दिया जाता हैं। इसका यही अर्थ निकाला जा सकता है कि मां का दायित्व बच्चों का भरण-पोषण करना, उन्हें कपड़े पहनाना और शिक्षा देने तक सीमित है और बच्चे इतने सयाने हो जाएं कि अपनी देखरेख स्वयं कर सकें और धनोपार्जन के योग्य हो जाएं तो इसके बाद वे पति की संपत्ति बन जाते हैं। बच्चा गोद लेने के मामले में हिन्दू दत्तक ग्रहण अधिनियम पति और पत्नी दोनों को बराबर का अधिकार देता है और पत्नी की सहमति के बिना पति बच्चा गोद नहीं ले सकता है। मगर अन्य समुदायों के स्त्री-पुरुष को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है (एनपीपीडब्ल्यू, 1988:141)।

कानून भारतीय नारी की बेहतर स्थिति का सूचक है। सभी वैयक्तिक कानूनों में कुछ ऐसी विशेषताएं समान रूप से विद्यमान हैं जिनमें स्त्रियों और पुरुषों में असमानताओं, भेदभाव दिखाई पड़ते हैं। सभी वैयक्तिक कानूनों के तहत हर स्थिति में परिवार का मुख्या पुरुष ही है, वंश क्रम पुरुष वंश परंपरा पर चलता है, निवास प्राय: पतिस्थानिक होता है, बच्चों का प्राकृतिक संरक्षक पिता ही है, तलाक देने का विशेषाधिकार भी पुरुष को ही प्राप्त है और किसी भी वैयक्तिक कानून में महिलाओं को संपत्ति में समान अधिकार प्राप्त नहीं है।

ऐसी स्थिति में इस बात का महत्व और भी बढ़ जाता है कि ऐसा वातावरण बनाया जाए जिससे हम समान नागरिक कानून की दिशा में आगे बढ़ें, भारतीय संविधान भी यही निर्देश देता है। इससे न सिर्फ सामाजिक-लिंग न्याय प्राप्त होगा बल्कि सभी पंथों के लोगों में समता सुनिश्चित की जा सकेगी। मगर कुछ समुदाय इस मुद्दे के प्रति बड़े संवेदनशील हैं, वे अपने वैयक्तिक कानूनों में अनिवार्य बदलाव ला सकते हैं जिससे सामाजिक-लिंग समानता सुनिश्चित हो सके। इसके अलावा कई जनजातीय समुदायों और राष्ट्रीयताओं के पारंपरिक कानूनों को वर्तमान स्थिति के अनुसार संहिताबद्ध किए जाने की आवश्कता है क्योंकि इनका दुरुपयोग महिलाओं के खिलाफ किया जा रहा है।

9.4.5 लड़कियों की विवाह-आयु

भारत में लड़कियों की विवाह-आयु दूसरे देशों की तुलना में काफी कम है। लड़की की कम विवाह आयु के पीछे विवाह के समय स्त्री के कौमार्य और आजीवन उसकी पवित्रता की धारणा काम करती है। हिन्दुओं में कन्यादान की प्रथा, जिन जातियों में तलाक और पुनर्विवाह का चलन है उनमें पहले और दूसरे विवाह के बीच स्पष्ट विभेद, छद्म विवाह, जैसे केरल की नायर जाति में 'ताली' की प्रथा जिसमें लड़की का विवाह किसी पेड़ से संपन्न कर दिया जाता है, और परिवर्जन और प्रथवास के लिए परदा प्रथा, ये सभी इसका प्रतिबिम्ब है कि लड़कियों की विवाह कम आयु में कर दिया जाता है। कमसिन उम्र से ही घरेलू दायित्वों और मातृत्व का निर्वाह करने के अलावा विवाह आयु कम होने के चलते अनुलोम विवाह होते थे, जिसमें वधू और वर की आयु में बड़ा भारी अंतर रहता था। इसमें वैधव्य की स्थिति पैदा होने की संभावना हो जाती थी। जिसमें इन महिलाओं को घोर कष्टों में जीवन बिताना पड़ता था। जिन समुदायों में देवर के साथ विधवा भाभी की प्रथा देवर-अधिकार या (लेवरेट) प्रचलित है उनमें महिलाओं को इस प्रकार के संबंधों के लिए बाध्य किया जाता था।

हमने जिन कानूनों की चर्चा की है उनमें लड़कों और लड़कियों की विवाह आयु निर्दिष्ट की गई है। मगर ये कानून अभावी नहीं है, जिसके कारण भारत में निर्दिष्ट आयु से कम आयु में विवाह और बाल-विवाह आम तौर पर प्रचलित हैं। कुछ समय से शिक्षा, जागरूकता और रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने से लड़की की विवाह आयु में भी वृद्धि होने लगी है। यानी लड़कियों का विवाह अब कुछ देर से किया जा रहा है। उदाहरण के लिए इस सदी के आरंभ में लड़कियों की विवाह आयु लगभग 13 वर्ष, स्वतंत्रता के समय 15 वर्ष थी लेकिन 1981 में 18.3 वर्ष और 1992 में 19.5 वर्ष हो गई। यह वास्तव में एक सकारात्मक परिवर्तन है।

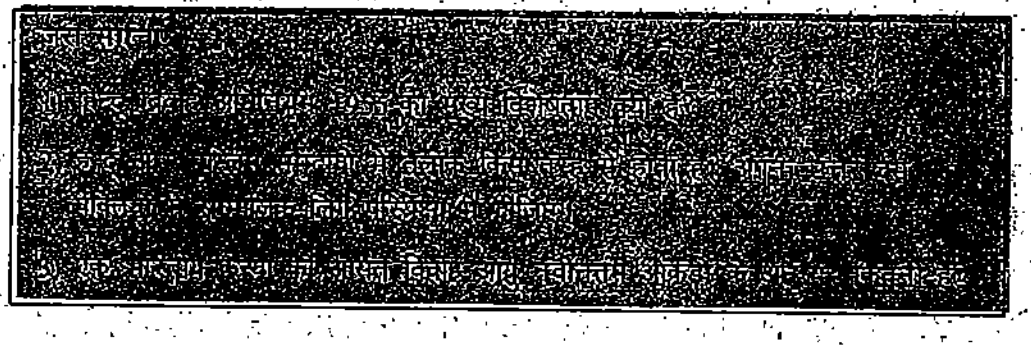

9.5 वैवाहिक अपराध

महिलाओं के प्रति अपराध एक ऐसा महत्वपूर्ण सामाजिक अभिशाप है जिससे उन्हें मजबूरन दबा कर रखा जाता है। इसे अब महिलाओं के प्रति हिंसा की संज्ञा दी जाने लगी है। अस्सी के उत्तरार्ध में जाकर महिलाओं के प्रति हिंसा के खिलाफ लिखे जा रहे लेख, शोध और तत्संबंधी कारवाई पूरे विश्व में बहस और संवाद का मुद्दा बन गए हैं। भारत में चूंकि विवाह व्यक्तियों के बीच का संबंध-संपर्क है और यह विरले ही मामलों में एक पुरुष और स्त्री के बीच निजी संबंध होता है, इसलिए पत्नी का उत्पीड़न यहां एक अलग स्वरूप, अलग रंग लिए रहता है। पत्नी पर अत्याचार या उसके उत्पीड़न को अक्सर परिवार से व्यापक सहमति मिलती है, जिसके अनेक अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हैं। यह कई रूपों में दिखाई देता है जैसे दिन में कई घंटे शारीरिक श्रम करना, भोजन से वंचित रखा जाना, रोगों की अनदेखी, पति की गाली-गलौज या शारीरिक हिंसा (मारपीट) जिसमें कभी-कभी परिवार के अन्य सदस्य भी बराबर हिस्सा लेते हैं। विवाह से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण अपराध इस प्रकार हैं: द्विविवाह, व्यभिचार, पति या उसके संबंधियों का पत्नी के साथ हिंसक व्यवहार या अत्याचार और दहेज हत्या। भारत में कभी-कभी सभी वैवाहिक हिंसाओं को 'दहेज' और 'दहेज हिंसा' की श्रेणी में रखने की प्रवृत्ति देखी जाती है। मगर इनके अलावा भी कई तरह की घरेलू और वैवाहिक हिंसाएं होती हैं।

इकाई के इस भाग में हम विवाहित जीवन से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण अपराधों के बारे में बताएंगे।

9.5.1 द्विविवाह

कोई व्यक्ति अगर पहले विवाह के जारी रहते दूसरा विवाह रचा ले तो इसे द्विविवाह कहते हैं। पुरुष कई बार दूसरा विवाह रचा लेते हैं और पहले विवाह को अमान्य करार देते हैं। कई मामलों में पहली पत्नी दूसरे विवाह को चुनौती नहीं देती, तो कई ऐसे मामले भी देखने में आते हैं कि आदमी अपना धर्म बदलकर दोनों पत्नियों से अपना संबंध कानूनन बनाए रखता है। ऐसी स्थिति में पहली पत्नी और कभी-कभी दोनों पत्नियों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

9.5.2 व्यभिचार

कानूनन व्यभिचार किसी विवाहित स्त्री के साथ उसके पति की सहमति या मिलीभगत के बिना यौन संसर्ग करना है। इसलिए अविवाहित, स्त्री, विधवा या किसी विवाहित स्त्री के साथ उसके पति की सहमति से यौन संबंध बनाना कानून की नजर में व्यभिचार या नाजायज संबंध नहीं है। कुछ स्थितियों में आदमी जीविकोपार्जन के लिए अपनी पत्नी को अन्य व्यक्तियों से यौन संबंध बनाने के लिए विवश करता है यानी उससे पेशा करवाता है। मगर कानून की दृष्टि में यह व्यभिचार नहीं है। इसी प्रकार पत्नी की इच्छा के विरुद्ध यौन संसर्ग करना बलात्कार या अपराध की श्रेणी में नहीं आता है जैसा कि कुछ पश्चिमी देशों में होता है। भारत में विवाह पुरुष को अपनी पत्नी को अपनी इच्छा के अनुसार मगर उसकी इच्छा के विरुद्ध कैसा ही व्यवहार करने की खुली छूट देता है।

व्यभिचार को स्त्री के पति के विरुद्ध तो एक अपराध माना जाता है मगर स्त्री के विरुद्ध नहीं। इसलिए अभियोजन (मुकदमा) सिर्फ पुरुष ही चला सकता है। इसका सीधा सा मतलब है कि एक महिला अपने व्यभिचारी, दुश्चरित्र पति के विरुद्ध मुकदमा दायर नहीं कर सकती है मगर वहीं उसका बैरी पति किसी अन्य पुरुष के साथ नाजायज संबंधों का उस पर झूठा

आरोप लगाकर उसे अदालत के कटघरे में खड़ा कर सकता है। व्यभिचार के मामले में कानून पत्नी के संरक्षण और नियंत्रण के पति के अधिकार की रक्षा तो करता है मगर वह स्त्री की उससे रक्षा नहीं करता।

9.5.3 पत्नी पर अत्याचार

इस तरह कोई व्यवहार जो किसी स्त्री को आत्महत्या करने के लिए विवश करने, उसे शारीरिक चोट पहुंचाने या उसके जीवन या स्वास्थ्य को खतरे में डालने के लिए किया जाए या किसी भी गैरकानूनी मांग, संपति या कीमती प्रतिभूति की पूर्ति करने के लिए किसी महिला का उत्पीड़न किया जाए, उसे सताया, क्रूर व्यवहार या अत्याचार की श्रेणी में आता है। स्त्री के मायके या ससुराल में उसके प्रति बरती जाने वाली हर हिंसा को पहले अपराध नहीं माना जाता था। संसद ने 1983 में भारतीय दंड विधान अधिनियम को संशोधित किया। भारतीय दंड संहिता में अब विवाहित जीवन से जुड़ा अपराध भी शामिल हो गया है: यह है पति या उसके संबंधियों द्वारा पत्नी के साथ क्रूर व्यवहार या अत्याचार। इसका उद्देश्य ऐसे पतियों और उनके संबंधियों को दंड देना है जो विवाह के बाद अधिक दहेज और संपत्ति के लिए ब्याहता स्त्रियों को सताते हैं। औरतों के इस तरह के उत्पीड़न का अंत तभी होता है जब वह आत्महत्या कर लेती है या जलाकर मार डाली जाती हैं। दहेज कानून और दहेज हत्याओं से जुड़े मुद्दों के बारे में हम आगे के भाग में चर्चा करेंगे।

पत्नी के साथ किए जाने वाले अत्याचार की परिभाषा बड़ी व्यापक है। कई बार अत्याचार के प्रत्यक्ष साक्ष्य जुटा पाना लगभग असंभव हो जाता है। फिर इस कानून के प्रावधान दहेज की मांग से जुड़े अत्याचार से संबंध रखते हैं, जबकि पत्नी को अपने परिवार में असीमित हिंसा झेलनी पड़ती है जैसे मारपीट और यौन हिंसा।

9.5.4 दहेज विरोधी कानून

दहेज निरोधक अधिनियम 1961 दहेज हत्या या पत्नी को जला डालने जैसी बुराई से लड़ने के लिए पारित हुआ था। यह अधिनियम दहेज की परिभाषा ऐसी संपत्ति या कीमती प्रतिभूति के रूप में करता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को दोनों पक्षों में विवाह के संबंध में विवाह से पहले या बाद में दिया गया हो या देने का करार हो। अधिनियम कहता है कि जो व्यक्ति दहेज लेता या दहेज के लेन-देन को बढ़ावा देता है उसे छः महीने तक का कारावास या 5000 रुपये तक के जुर्माने या दोनों का दंड दिया जा सकता है। कोई व्यक्ति अगर दुल्हन के मां-बाप, अभिभावक से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दहेज की मांग करता है तो उसे भी इसी तरह दंडित किया जा सकता है। अधिनियम कहता है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा लिया गया दहेज वह वधू उसके वारिसों (संतान) के लाभ, उनके कल्याण के लिए खर्च करेगा। दहेज में प्राप्त संपत्ति एक वर्ष के भीतर स्त्री के नाम हस्तांतरित की जानी चाहिए अन्यथा संबंधित व्यक्ति को दंडित किया जाएगा।

दहेज निरोधक अधिनियम 1961 के प्रावधानों को और कठोर बनाने तथा इस कानून को अप्रभावी बनाने वाली इसमें मौजूद कमियों को दूर करने के लिए इसमें पहले 1984 में और फिर 1986 में पुनः संशोधन किया गया। शिकायत दर्ज करने की अवधि की सीमा को लिपिबद्ध किया गया। न्यायालयों को अपनी जानकारी या किसी भी मान्यता प्राप्त जनकल्याण संगठन की शिकायत पर कानूनी कारवाई करने का अधिकार है। दहेज को अब एक गैर-जमानती अपराध बना दिया गया है और भारतीय दंड संहिता में 'दहेज हत्या' की एक नई धारा जोड़ दी गई है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम को संशोधित किया गया है जिसके अन्तर्गत जिस किसी भी मामले में दहेज की मांग की जाती है और विवाह के सात

वर्षों के भीतर वधू की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में हो जाती है, तो ऐसे मामले में पति और उसके परिवारवालों को होगा। इस कानून के अंतर्गत दहेज निरोधक अधिकारियों और सलाहकार समितियों की नियुक्ति का प्रावधान भी किया गया है। विवाह के लिए लेन-देन की पेशकश करते विज्ञापन देना भी अब दंडनीय अपराध है (एनपीपीडब्ल्यू, 1988:138-139)।

9.5.5 दहेज-विरोधी कानूनों का प्रभाव : दहेज हत्याएं

दहेज मृत्यु और दहेज हत्या जैसे शब्दों का प्रयोग सत्तर दशक के उत्तरार्ध से आरंभ हुआ, जब खोज-बीन से यह रहस्योद्घाटन हुआ कि विवाहित स्त्रियों की मृत्यु असल में हत्याएं या प्रेरित आत्महत्याएं थीं, बल्कि इससे पहले उन्हें दहेज को लेकर पति और ससुरालियों द्वारा मानसिक और शारीरिक यंत्रणाएं दी जा रही थीं, जो उनकी मृत्यु या आत्महत्या, का कारण (जेठमलानी, 1995;80)। दहेज निरोधक (संशोधन) अधिनियम (1986) ने एक नई धारा इस कानून में जोड़ी जो दहेज मृत्यु को ऐसे कृत्य के रूप में परिभाषित करता है जिसके कारण विवाह के सात वर्षों के भीतर एक विवाहित स्त्री की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में हो और यह प्रमाणित हो कि मृत्यु से पहले दहेज की मांग को लेकर उसके पति और उसके संबंधियों ने उसे यंत्रणा दी थी। भारतीय साक्ष्य अधिनियम में 1983 में हुए संशोधन में एक ब्याहता स्त्री को आत्महत्या के लिए उसे विवश बनाने वाले कारणों को पूर्वधारणा को भी मानकर चलने का प्रावधान किया गया। न्यायालय अब कानूनन दहेज मृत्यु की पूर्वधारणा लेकर चल सकते हैं अगर यह प्रमाणित हो जाए कि अभियुक्त ने मृतक स्त्री को दहेज के लिए सताया था। यह पहलू अपने आप में महत्वपूर्ण है क्योंकि अच्छी तरह से यह प्रमाणित हो जाने पर कि मृतक स्त्री को मरने से पहले यातनाभरी स्थितियों से गुजरना पड़ा था, यह हत्या की श्रेणी में आता है (जेठमलानी, 1955:79-93)।

दहेज निरोधक कानूनों में तरह-तरह के संशोधनों के बावजूद दहेज हत्याओं और मौतों का भयावह सिलसिला थम नहीं पाया है। लोग न सिर्फ दहेज की आशा और मांग करते हैं बल्कि उसे बेहिचक बड़े आडंबर से प्रदर्शित भी करते हैं। शहरी, शिक्षित और संभ्रांत लोगों में दहेज ने तो नए आयाम प्राप्त कर लिए हैं। सभी जातियों, वर्गों और समुदायों में यह सर्व-व्यापी हो गया है। अखिल भारतीय आंकड़े बताते हैं कि 1987 में दहेज मृत्यु के 1912 मामले दर्ज हुए थे जिनकी संख्या बढ़कर 5157 हो गई थी जो 169.7 प्रतिशत की अप्रत्याशित वृद्धि है। इसी प्रकार पूर्वोत्तर को छोड़कर शेष सभी राज्यों में दहेज हत्याओं के मामलों में भारी वृद्धि हुई है। राजधानी दिल्ली में 1987 में दहेज मृत्यु के कुल 79 मामले दर्ज हुए थे लेकिन 1991 में इनकी संख्या 133 हो गई जो 68.4 प्रतिशत की वृद्धि थी। वर्ष 1994 में इसके 135 मामले दर्ज हुए थे इन वर्षों में दहेज हत्या के मामले न बढ़ने का श्रेय पुलिस और प्रशासन के विशेष प्रयासों को जाता है जो उन्होंने दहेज मृत्यु की घटनाओं को रोकने के लिए किए थे। उधर बिहार, हरियाणा, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में दहेज मृत्यु के मामलों में बहुत अधिक वृद्धि हुई है (जेठमलानी, 1995: 152-156)।

दहेज हत्याओं और मृत्यु के कई मामले तो दर्ज ही नहीं हो पाते हैं और यह भी हो सकता है कि इनके संख्या में वृद्धि इन मामलों को दर्ज होने से होती दिखाई दे। मगर आंकड़े बताते हैं कि तमाम उपायों के बावजूद भी दहेज मृत्यु जगह-जगह हो रही है। कभी नारी की स्थिति को ऊंचा उठाने वाली और विवाह के समय उसे 'स्त्रीधन' का अधिकार देने वाली सदियों पुरानी इस प्रथा का ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण पतन हुआ है। सरकार, वकीलों, शिक्षाविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और स्वयं सेवी संगठनों के मिले-जुले, संगठित प्रयासों से ही इस सामाजिक अभिशाप से मुक्ति पाई जा सकती है।

अभ्यास से सीखिए-2

राष्ट्रीय समाचारपत्रों में दहेज के कारण हानि वाली मौतों के समाचार नियमित रूप से छपते हैं। किसी एक मामले को चुनिए और उस ध्यान से पढ़िए। अब दहेज निरोधक कानून और उसमें किए गए विभिन्न संशोधनों के प्रकाश में यह बताइए कि क्या पति और ससुरालियों के विरुद्ध दहेज हत्या का मामला बनता है या नहीं। बीस पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

9.6 सारांश

इस इकाई में हमने भारतीय समाज में नारी की स्थिति के संबंध में विवाह संस्था का विवेचन किया। इसमें हमने यह समझाया कि किस प्रकार विभिन्न विवाह नियम, रीति-रिवाज, अनुष्ठान और संस्कार महिलाओं पर अनेक किस्म के अंकुश और वर्जनाएं थोपते हैं। दहेज और स्त्रीधन के बारे में कई तरह के तर्क रखते हुए हमने कहा कि इन रीति-रिवाजों को समाप्त किए जाने की आवश्यकता है। विवाह के कानूनी पहलुओं पर चर्चा करते हुए यह दिखाया कि व्यवहार में कानून में महिलाओं और पुरुषों की स्थिति में किस तरह की विसंगतियां हैं। विवाह से संबंधित अपराधों की चर्चा करते हुए दहेज हिंसा के बारे में विशेष रूप से बताया गया।

9.7 शब्दावली

भ्राता भगिनी विवाह: लड़की का अपने पिता की बहन (बुआ) या मां के भाई (मामा) के बेटे से विवाह।

विनिमय विवाह- : ऐसा विवाह जिसमें एक लड़की जिस समूह में ब्याही जाती है उसके बदले में उस समूह से दूसरी लड़की ब्याह कर लाई जाती है।

देवर अधिकार (लेवरेट): मृतक पति के भाई यानी देवर से विधवा स्त्री के विवाह की प्रथा। यह हरियाणा और पंजाब में प्रचलित है।

मेहर : मुस्लिम निकाह (विवाह) के समय तय की जाने वाली धनराशि जो संबंध विच्छेद पर उसे उसके शौहर (पति) को देना होता है। यह पत्नी को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है।

पितृवंशीय : एक समुदाय या समाज जिसमें वंशक्रम पुरुष वंश के जरिए आगे बढ़ता है।

बहुविवाह-प्रथा : किसी व्यक्ति का एक से अधिक स्त्रियों से विवाह। पहले यह प्रथा बहुत प्रचलित थी।

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सीएसडब्लूसी, 1974, *टुवर्ड्स इक्वैलिटी: रिपोर्ट ऑव द कमेटी ऑन द स्टैटस ऑव वीमेन इन इंडिया*, शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली (पृ. 62-75)

कपाडिया, के एम. (1955): *मैरिज एंड फैमली इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, अध्याय 8 और 9

इकाई 10 वर्ग, जाति, सामुदायिक विचारधारा और स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोण का निर्माण

रूपरेखा

10.0 लक्ष्य और उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 सामाजिक अवधारणा की पुनर्जांच
  10.2.1 वर्ग और जाति/समुदाय
  10.2.2 स्त्री-पुरुष
  10.2.3 विचारधारा
10.3 महिलाओं की छवि और स्थिति के निर्धारणकर्ता
  10.3.1 धर्म
  10.3.2 विवाह
  10.3.3 परिवार
10.4 कामकाज में महिलाओं की भूमिका
10.5 सामाजिक भूमिकाओं का आत्मसातीकरण
10.6 समाजीकरण और विचारधाराएं : नई प्रवृत्तियां
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम पितृसत्तात्मक समाज में व्याप्त दृष्टिकोणों और विचारधाराओं के संबंध में विभिन्न जातियों, वर्गों और समुदायों में स्त्री-पुरुष की भूमिकाओं पर विचार करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जाति, वर्ग, समुदाय की अवधारणाओं और विचारधाराओं की व्याख्या कर सकेंगे,
- स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोणों के निर्माण और महिलाओं पर इसके पड़ने वाले प्रभाव का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे, और
- अपने आसपास के माहौल और समाजीकरण के आधार पर इस इकाई का परीक्षण कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

महिलाएं समाज की अभिन्न और महत्वपूर्ण अंग हैं। महिलाओं का केवल एक शारीरिक अस्तित्व ही नहीं है बल्कि उनकी एक सामाजिक सांस्कृतिक भूमिका भी है। महिलाओं की सामाजिक हैसियत और भूमिका न केवल स्त्री-पुरुष दृष्टिकोण पर निर्भर करती है बल्कि समाज में मौजूद रीति रिवाज, जीवन, मूल्य, विश्वास, आस्था, परम्परा भी महिलाओं की भूमिका को निर्धारित करते हैं। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक वर्ग के रूप में हर जाति, वर्ग, प्रजाति में महिलाओं का एक अलग स्वरूप होता है। हालांकि यह स्वरूप एक

जैसा नहीं होता, इनमें पर्याप्त विभिन्नता होती है इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति अलग होती है और ग्रामीण तथा शहरी महिलाओं का स्वरूप भी अलग होता है। इसके बावजूद प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक माहौल में महिलाएं दलित समूह होती हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी समाज में चली आ रही परम्पराओं, रीति रिवाजों, मूल्यों आदि से समाज के प्रत्येक व्यक्ति का संस्कार और दृष्टिकोण निर्मित होता है। समाज के एक सदस्य का दूसरे सदस्य के प्रति दृष्टिकोण इस प्रकार निर्मित होता है। इसके अलावा प्रत्येक समाज की संरचनात्मक व्यवस्था में महिलाओं का स्थान निम्न होता है। आर्थिक रूप से उनका शोषण किया जाता है और भेदभाव बरता जाता है, सामाजिक रूप से उन्हें दबाकर रखा जाता है और राजनैतिक दृष्टि से वे समाज में एक शक्तिहीन समूह होती हैं। इस संरचनात्मक व्यवस्था के तहत स्त्री-पुरुष की भूमिका की बंधी-बंधाई परम्परा को समझने से पहले समाजशास्त्र की कुछ प्रमुख अवधारणाओं जैसे स्त्री-पुरुष (जेन्डर), जाति, वर्ग, समुदाय और विचारधारा पर संक्षेप में विचार करेंगे। परम्परागत तथा समकालीन समाज में महिलाओं की स्थिति समझने के लिए इन अवधारणाओं का परीक्षण किया गया है। यहां इस बात पर बल दिया गया है और विश्लेषण किया गया है कि महिलाएं खुद को किस प्रकार समाज में खड़ा करती हैं और महिलाओं की भूमिका को प्रभावित करने में परम्परागत भूमिकाओं की क्या अपेक्षाएं हैं।

10.2 सामाजिक अवधारणा की पुनर्जांच

इस भाग में हम जाति, वर्ग, समुदाय, स्त्री-पुरुष (जेंडर) और विचारधारा पर विचार करेंगे ताकि हम यह बेहतर ढंग से समझ सकें कि कैसे समाज को यह इकाइयां जेंडर के स्थापित रूप को मजबूत करने में मदद करती हैं और पितृसत्तात्मक विचारधारा को सुदृढ़ करती हैं।

10.2.1 वर्ग और जाति/समुदाय

कई विद्वान जाति और वर्ग को एक दूसरे से विपरीत मानते हैं। उनका मानना है कि जाति और वर्ग सामाजिक स्तरीकरण के अलग-अलग रूप हैं। वर्ग व्यवस्था में विभाजित इकाइयां व्यक्ति होता है जबकि जाति व्यवस्था में समूह होता है। इसलिए परिवर्तन जाति से वर्ग की ओर (हायराकी) में स्तरीकरण की ओर बंद से खुले की ओर पदानुक्रम सुव्यवस्था (और्गेनिक) से खंडीकृत व्यवस्था (सैगमैंटरी सिस्टम) व्यवस्था की ओर होता है। वास्तव में जाति और वर्ग दोनों ही यथार्थ और अनुभूतिमूलक (इम्पीरिकल) है और दोनों परस्पर सम्बद्ध और पदानुक्रम आधारित होते हैं। दोनों एक दूसरे में समाहित होते हैं।

कैथलिन गो ने सामाजिक निर्माण के रूप में उत्पादन के तरीकों का विश्लेषण करते हुए जाति और वर्ग का संबंध स्पष्ट किया था। उन्होंने बताया था कि एक ओर जाति, परिवार, कुल और विवाह तथा दूसरी ओर उत्पादन की शक्तियों और उत्पादक संबंधों का आपस में संबंध होता है। भारत में जाति और कुल पर विचार करने के लिए वर्ग संबंधों को आधार बनाया गया। यहां तक कि कुछ विद्वानों ने वर्ण और जजमानी व्यवस्था को वर्ग संबंधों और उत्पादन के तरीकों के आधार पर व्याख्या की। अतएव कहा जा सकता है कि वर्ग में जाति और जाति में वर्ग अन्तर्निहित होता है।

आन्द्रे बेते ने अपनी पुस्तक "सिक्स एस्से इन कम्पेरेटिव सोसियलॉजी" में जाति-वर्ग के संबंध और कामकाजी महिलाओं की हैसियत से इसके संबंध पर प्रकाश डाला है। उन्होंने किसान परिवारों में महिलाओं की स्थिति स्पष्ट की है और पूछते हैं कि हमें उन परिवारों को किस रूप में देखना चाहिए जो पुरुषों को खेत में काम करने की इजाजत देते हैं परंतु महिलाओं को वह काम करने की अनुमति नहीं होती।' उच्च जाति के परिवारों में यह प्रथा ज्यादा प्रचलित है। यहां तक कि कुछ मध्यवर्गीय और निम्न जाति के लोगों ने भी जिनकी

आर्थिक स्थिति ठीक हो गई है ग्रामीण समुदाय में अपनी सामाजिक स्थिति बढ़ाने के लिए यही मानदंड अपनाया है। महिलाएं अगर काम करें तो परिवार की स्थिति अलग होती है और किसी खास परिवार की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति से भी यह निर्धारित होता है। बेते ने शारीरिक मजदूरी के संबंध में भी महिलाओं की हैसियत में होनेवाले परिवर्तनों की प्रक्रिया पर भी टिप्पणी की है। वे कहते हैं कि "सबसे पहले महिलाओं को परिवार की खेती से अलग किया जाता है। अन्ततः पुरुष खेत में काम करना बंद कर देते हैं या उनकी भूमिका बदल जाती है और वे खेतिहर से पर्यवेक्षक बन जाते हैं।"

अतः महिलाओं को खेत में काम न करने देना गांव में उच्च हैसियत का प्रतीक माना जाता है। उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि यदि कोई महिला घर से बाहर निकलकर काम करती है तो उसकी प्रतिष्ठा घटती है। गांव में लड़कियों का घरेलू काम काजों में निपुण होना स्वाभाविक माना जाता है। बड़ी होकर घर से बाहर काम करना वे सोच भी नहीं सकती हैं। बुर्जुग महिलाएं अक्सर अपने घर की लड़कियों को सलाह देते रहती हैं कि अच्छा खाना बनाओ और घर की देखभाल करो। यह विचारधारात्मक मानसिकता और समाजीकरण की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। दक्षिण भारत के मुसौली गांव का अध्ययन करने के दौरान वंजा धुवराजन ने यह पाया कि विभिन्न जातियों में काम करने का ढंग और जीवन शैली अलग है। लेकिन पतिव्रता की अवधारणा सभी जातियों में उपलब्ध है जिसमें पुरुष महिला को नियंत्रण में रखते हैं।

10.2.2 स्त्री-पुरुष

स्त्री-पुरुष के बीच भेद करते समय हमारा ध्यान आमतौर पर शारीरिक और प्रजनन क्षमता पर ही आधारित होता है। परंतु स्त्री-पुरुष का अन्तर या उनकी भूमिकाएं केवल सामाजिक ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक भी हैं। दूसरे शब्दों में इसके लिए 'सेक्स' और 'जेन्डर' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। सेक्स का संबंध जहां शरीर से है वहीं जेन्डर का संबंध समाज में इसकी भूमिका से है। एक महिला केवल एक जीव नहीं होती बल्कि समाज में उसकी भूमिका होती है और उसे कुछ कायदे कानूनों का पालन करना होता है। अतः सभी महिलाएं शारीरिक दृष्टि से स्त्री हैं परंतु समाजों और परिवारों के अनुसार उनकी भूमिकाएं (जेन्डर) अलग-अलग होती हैं।

मुसौली में एक लोकप्रिय धारणा यह है कि पुरुष और स्त्री समाज के अलग-अलग परंतु प्रमुख स्तंभ हैं और उनके मिलने से ही सृष्टि की गाड़ी आगे बढ़ती है। पुरुष सिद्धांत, चेतना (विज्ञान) का प्रतीक है जबकि स्त्री सिद्धांत, ऊर्जा (शक्ति) का प्रतीक है। पुरुषों को अनुष्ठानिक तौर पर शुद्ध, शारीरिक तौर पर शक्तिमान और भावनात्मक दृष्टि से परिपक्व माना जाति है, जबकि दूसरी ओर महिलाओं को अनुष्ठानिक तौर पर अशुद्ध, शारीरिक तौर पर कमजोर और कम दृढ़ इच्छा शक्तिवाला माना जाता है।

शिक्षाविद कृष्ण कुमार (1986) ने 'पुरुषों के पालन-पोषण' पर अपने अनुभव प्रकट किए हैं जिसे नृशास्त्री लीला दुबे (1988) और मनोविश्लेषक सुधीर कक्कर (1983) ने भारत में पुरुषों और स्त्रियों के समाजीकरण संबंधी अपने अध्ययन में पुष्ट किया है। स्कूल से सीधे चुपचाप सिर झुकाकर जाती लड़कियों के समूह को देखकर कुमार को यह विश्वास हो गया कि 'लड़कियां व्यक्ति नहीं हैं'। लड़के कहीं भी जा सकते हैं, किसी भी दोस्त के यहां कभी भी जा सकते हैं। कहीं भी अपना समय व्यतीत कर सकते हैं। साइकिल चला सकते हैं, दुनिया को अपने नजर से देख सकते हैं। मध्यवर्ग में अधिकांश लड़कियों को यह सुख उपलब्ध नहीं है। दूसरी ओर गांव में जन्मी लड़कियों के आने जाने पर इतना प्रतिबंध नहीं है क्योंकि उन्हें अपनी रोजी रोटी कमानी पड़ती है, घर के काम काज में मदद करनी पड़ती है, दूर से पानी और अन्य जरूरी वस्तुएं ढोकर लाना पड़ता है।

शहर में रहने वाली मध्यवर्ग की लड़कियों को शाम को घर से बाहर जाने की अनुमति आमतौर पर नहीं मिलती। कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि बोर्ड की परीक्षाओं को लड़कियों के बेहतर करने का यह भी एक कारण है। यह गौर करने की बात है कि बोर्ड की परीक्षा में हमेशा लड़कियाँ लड़कों को पीछे छोड़ देती हैं। समाज की बंधी बंधाई परम्पराओं से ग्रस्त संस्कारों में यह मान लिया गया है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक स्वतंत्रता और आत्मअभिव्यक्ति का अधिकार है। लड़कियों से अपेक्षाएं ज्यादा की जाती हैं लेकिन उनके अधिकार कम हैं। इस प्रवृत्ति में परिवर्तन आ रहा है परंतु दुर्भाग्यवश यह परिवर्तन केवल मध्यवर्ग और उच्चवर्ग में ही आ रहा है।

10.2.3 विचारधारा

विचारधारा एक ऐसी अवधारणा है जिस पर समाजशास्त्रीय सम्मेलनों में काफी वाद विवाद होता है और इस पर अलग-अलग दृष्टिकोण व्यक्त किए जाते हैं। विचारधारा में कुछ विचार, प्रथाएं, विश्वास, दृष्टिकोण और मत होते हैं। इसे कुल मिलाकर हम संस्कार भी कह सकते हैं जिसका निर्माण एक विशेष सांस्कृतिक संबंध में होता है। हम यहां यह विश्लेषित करने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रकार शक्तिशाली और भेदभावपूर्ण पितृसत्तात्मक समाज में विचारधाराओं को न्यायोचित ठहराया जाता है और पुरुषों के हित में किस प्रकार इसे ढाल दिया जाता है।

केवल इतना ही कह देना पर्याप्त नहीं है कि कोई समाज पुरुष और महिलाओं से मिलकर बनता है। यहां यह भी देखना जरूरी है कि स्त्री-पुरुष के बीच संबंध कैसा है ? उनकी भूमिकाएं क्या हैं ? और एक दूसरे से अपेक्षाएं क्या हैं ? ये भूमिकाएं और अपेक्षाएं हर समाज में एक जैसी होती हैं। स्त्री-पुरुष से जुड़ी धारणाएं स्त्री-पुरुष को अलग-अलग खानों में खड़ा कर देती हैं। इस प्रकार की धारणाओं के निर्माण में कई कारक काम करते हैं जिन्हें हम अपने परिवार में देख सकते हैं।

सबसे पहले बच्चे समाज में होनेवाली गतिविधियों से ही स्त्री-पुरुष और लड़का तथा लड़की के भेदभाव को जानते और समझते हैं। लड़की की शादी हो जाने पर वह दूसरे के घर में चली जाती है पर लड़का दूसरे के घर में नहीं जाता। इसका असर बच्चे के मस्तिष्क में पड़ता है और उसके मन में भी यह भावना घर कर जाती है कि लड़की को दूसरे के घर जाना हैं और लड़के को नहीं। इसके अलावा परिवार में पुरुषों का ही निर्णय अन्तिम होता है और उनकी पत्नियों का निर्णय बहुत मुखर और स्पष्ट नहीं होता। घर का सारा काम काज मां; दादी या दूसरी महिलाएं करती हैं। यहां तक कि शहरों में काम करने वाली महिलाओं को भी घर का सारा काम करना पड़ता है और इसमें पुरुषों का कोई सहयोग नहीं मिलता जिससे उनपर दोहरा बोझ पड़ जाता है। अभी भी यह सोच कायम है कि घर का काम करना महिलाओं की ज़िम्मेदारी है।

आज के इस समाज और पारिवारिक बनावट में सीता और सावित्री तथा मनु के सामाजिक नियम अप्रसांगिक हो गए हैं और उनका कोई महत्व नहीं है। परंतु पुराने संस्कृत ग्रंथों के अलावा बाद के संस्कृत और देशी लेखन तथा मौखिक परम्पराओं ने हिन्दू महिलाओं के लिए सुनिश्चित भूमिका निर्धारित की। आज भी समाज इसी तरह सोचता है। महिलाओं के बारे में एक खास दृष्टिकोण बन गया है कि उन्हें यह करना है यह नहीं, उनका आचरण ऐसा होना चाहिए ऐसा नहीं।

10.3 महिलाओं की छवि और स्थिति में निर्धारणकर्त्ता

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का निर्धारण करने वाले अनेक तत्व हैं जिनका उल्लेख हम नीचे करने जा रहे हैं। हम इन्हें दो प्रमुख वर्गों में विभाजित कर सकते हैं: संरचनात्मक कारक और सामाजिक-आर्थिक कारक।

संरचनात्मक कारक के अन्तर्गत परिवार, जाति, विवाह और समुदाय जैसे सामाजिक संरचना को शामिल किया जाएगा। यहां यह बता देना जरूरी है कि विभिन्न सामाजिक संरचनाएं और उनसे जुड़ी विचारधाराएं अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग रूप में कार्यरत होती हैं।

10.3.1 धर्म

हालांकि सिद्धांतत: कुछ धर्म महिलाओं को पुरुषों के बराबर मानते हैं परंतु अधिकांश धार्मिक ग्रंथों में महिलाओं को दोयम स्थान दिया गया है। महिलाओं की भूमिका को मां और पत्नी की भूमिकाओं में बांधकर धर्म ने उन्हें घर के अन्दर कैद करने की कोशिश की है। सभी धर्मों में पूत्रवती मां और कौमार्य को सम्मान दिया गया है। निष्ठावान और समर्पित पत्नी पर भी विशेष बल दिया गया है। हिन्दू परम्परा में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि किसी भी परिस्थिति में पत्नी को पति के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और सभी प्रकार के कष्ट सहकर पति की रक्षा करने वाली पत्नी ही आदर्श पत्नी होती है।

'हिन्दू धर्म में हमारे सामने सीता, सावित्री, अहिल्या, गंधारी आदि के चरित्र मौजूद हैं। पुराणों में यह कहा गया है कि वचन, कर्म और धर्म से पति की सेवा करने वाली स्त्री को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उसके पति को भी स्वर्ग प्राप्त होता है। पत्नी का पति के बिना कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए विधवा को अपने पति के साथ चिता में जलकर भस्म (सती) हो जाना चाहिए।'' (टुवार्ड्स इक्वालिटी: रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमैन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1974 :41)

कुरान में अपेक्षाकृत महिला और पुरुषों को बराबर का दर्जा दिया गया है। कुरान में महिलाओं की बेहतरी के लिए कई उपाय सुझाए गए हैं। परंतु कुरान और शरियत की विभिन्न व्याख्याएं कर यहां भी महिलाओं को दोयम दर्जा दे दिया गया है और उन पर अत्याचार किया जाता है। उदाहरण के लिए कुरान में इस बात पर बल दिया गया है कि महिलाओं को शालीन, भद्र और शील स्वभाव का होनी चाहिए और उन्हें आभूषण प्रदर्शित नहीं करने चाहिए। इस नुस्खे के तहत महिलाओं को बुरका पहनना पड़ा।

इसाई धर्म में हौवा को मनुष्य के पतन का कारण माना गया। यह भी कहा गया कि उसका जन्म आदम की पसली से हुआ था। इस प्रकार हौवा का स्थान नीचे हो गया। इसके बावजूद ईसाई धर्म में समतावाद पर बल दिया जाता है। इसलिए हम देखते हैं कि इसाई धर्म में महिलाओं की स्थिति अन्य धर्मों की महिलाओं से बेहतर है। ये कुछ सामान्य बातें हैं। व्यवहार में हम इनमें कई प्रकार के अन्तर पाते हैं। प्रत्येक धर्म में आर्थिक स्थिति, समुदाय क्षेत्र, प्रचलित प्रथाओं, परिवार की परम्पराओं आदि के परिणामस्वरूप इनमें काफी अन्तर होता है। इसलिए हमें कहीं भी एक प्रकार के मुसलमान, हिन्दू या इसाई धर्म के लोग नहीं मिलेंगे। फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि इन विविधताओं के बावजूद धर्म ग्रंथ और धर्म से जुड़ी प्रथाएं सम्पूर्ण समाजीकरण को प्रभावित करती हैं और महिलाओं की भूमिका तय करती है।

10.3.2 विवाह

भारतीय लड़कियों की जिन्दगी में विवाह को एक महत्वपूर्ण घटना माना जाता है और

विवाह के पूर्व लड़की को इसी उद्देश्य से प्रशिक्षित किया जाता है। सांस्कृतिक और विचारधारात्मक स्तर पर विवाह और मातृत्व को इतनी महानता प्रदान की जाती है कि एक लड़की के लिए विवाह ही अन्तिम लक्ष्य होता है। लड़की को जहां 'पराया धन' माना जाता है वहीं 'लड़का बुढ़ापे' का सहारा होता है। विवाह के बाद लड़की अपनी नई जिंदगी शुरू करती है। ससुराल उसका अपना घर होता है।

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों द्वारा नियम बनाए जाते हैं और वही महिला के भाग्य का निर्धारण करते हैं। विवाह की उम्र, विवाह की पद्धति, दहेज प्रथा, तलाक, विधवा का परित्याग और पुनर्विवाह जैसे प्रमुख मुद्दों का निर्धारण पुरुष ही करता है। महिलाओं की प्रतिष्ठा का निर्धारण करने के लिए यही मापदंड अपनाए जाते हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में लड़की परतंत्र होती है। विवाह के पहले वह माता-पिता की सम्पत्ति होती है। जवानी में पति के अधीन होती है और बुढ़ापे में बेटा उस पर हुक्म चलाता है। विवाह के बाद वह अपने नैहर से ससुराल आ जाती है और अपने पति के संबंधियों के साथ रहने लगती है। पितृसत्तात्मक समाज में जहां पुरुष प्रधान होता है वहां लड़की के शील को नियंत्रित करने के अनेक तरीके अपनाए जाते हैं और अनेक सिद्धांतों का सहारा लिया जाता है। महिलाओं से त्याग, तपस्या, शील, लज्जा, शालीनता आदि कई गुणों की अपेक्षा की जाती है। निम्न जाति और वर्गों की महिलाओं से इस प्रकार की अपेक्षाएं कम की जाती हैं क्योंकि उन्हें घर से बाहर निकलकर काम करना पड़ता है। हालांकि देखने में आया है कि इन वर्गों के संस्कृतिकरण के कारण ये समुदाय भी उच्च जाति के रीति रिवाजों की नकल करने लगे हैं। इसका सबसे पहला प्रहार महिला की स्वतंत्रता पर हुआ है। लड़कियों की शादी कम उम्र में कर दी जाती है क्योंकि यदि वह पराए मर्द के साथ बातचीत करती है या सम्पर्क रखती है तो उसके चरित्र पर बट्टा लगने का अंदेशा रहता है। राजस्थान, बिहार और उत्तर प्रदेश के अलावा देश के अन्य भागों में भी बाल विवाह की प्रथा अभी भी कायम है।

विवाह के बाद एक महिला अपने पति का अंग या अर्धांगिनी बन जाती है और उसकी पहचान समाप्त हो जाती है। पूरी दुनिया में श्रीमती और श्री लगाकर उसके आगे पति का नाम लिख दिया जाता है। महिलाओं को कई प्रकार के रीति रिवाजों का पालन करना पड़ता है। जैसे कि पति के खाने के बाद खाना पड़ता है, उसके पीछे चलना पड़ता है और कभी-कभी अपने पति के सामने बैठने की इजाजत नहीं होती। वंजा थुवराजन ने मुसौली गांव में एक बड़ी ही अजीब सी घटना देखी। दक्षिण भारत के इस गांव में पत्नी अपने पति को बहुवचन में पुकारती है जैसे अवरू (वे)। जबकि पति अपने पत्नी को नीनू (तुम) या अवलूआ (वह)। पत्नी अपने पति का नाम नहीं ले सकती। यदि बाजार से कुछ मंगवाना है तो वह सीधे अपने पति से कुछ नहीं कहेगी जैसे – उप्पु बेकागिट्ठु (नमक की जरूरत है) या औषधि बेकागिट्ठु (दवा की जरूरत है)। पति को यह बताया जाता है कि घर में किस चीज की जरूरत है और पति यह निर्णय लेता है कि उसे क्या लाना है और उसे क्या करना है (1989, पृष्ठ 41)। वाइजर ने भी कम उम्र की महिलाओं के अपनेपति के साथ और परिवार के बुजुर्गों के साथ व्यवहार में यही बातें पाई है।

गांव की हिन्दू लड़कियां अपने गांव में घूंघट नहीं निकालतीं। गांव की बहुओं की अपेक्षा उन्हें घूमने-फिरने की आजादी होती है। एक नई नवेली दुलहन पर बहुत प्रतिबंध लगाए जाते हैं। परंतु जैसे-जैसे उसकी उम्र ढलती है प्रतिबंध हल्के पड़ते जाते हैं।

पहले हिन्दुओं की ऊंची जाति में विधवा विवाह और तलाक के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था। दूसरी ओर निम्न जाति और मुसलमान विधवाओं को पुनर्विवाह करने की अनुमति थी और तलाक भी प्रचलित था। धीरे-धीरे शहर में रहने वाले उच्च जाति के हिन्दुओं में भी यह प्रवृत्ति पनपने लगी।

10.3.3 परिवार

बचपन में जहां लड़कियां (खासकर शहरों में) 'बार्बी गर्ल्स' या गुड़िया से खेलती हैं वहीं लड़के इस खेल को खेलने में शर्म महसूस करते हैं। गुड़ियों का खेल लड़कियों के लिए सुरक्षित माना जाता है। जैसे-जैसे लड़के बड़े होते जाते हैं वैसे-वैसे उनकी भूमिकाएं तय होती जाती हैं और वे अलग-अलग ढंग से लोगों से व्यवहार करना शुरू कर देते हैं। समाजीकरण की इस प्रक्रिया में लड़कियों और लड़कों का व्यवहार अलग-अलग हो जाता है। एक संस्था के रूप में एक परिवार से ही इस प्रथा की शुरुआत हो जाती है।

गुड़िया के साथ खेलती हुई लड़की, एक आम दृश्य !

सौजन्य : देवल के सिंहराय, नई दिल्ली।

लड़कियों को आरंभ में ही घर का काम काज सिखाया जाता है और वह कम उम्र से ही अपनी मां का हाथ बंटाने लगती है और अपने छोटे भाई बहनों की देखभाल करने लगती है। बड़ों की सहायता न करने या घर का काम काज न करने पर उसे डांट सुननी पड़ती है। डोरेन जैकोबसन ने क्षेत्रीय स्तर पर कुछ विभिन्नताएं भी देखीं। उत्तरी और मध्य भारत में महिलाओं को अमूल्य निधि माना जाता है क्योंकि वे अपने माता-पिता के पास कम समय तक रहती हैं। छोटी लड़कियों को देवी का अवतार माना जाता है परंतु योद्धा राजपूतों और राजस्थान के ठाकुरों तथा गांगेय क्षेत्रों में बालिकाओं की हत्या की प्रथा पाई जाती थी और आज भी कई स्थानों पर लड़कों के समान लड़कियों से व्यवहार नहीं किया जाता। अधिकांश उत्तरी और मध्य भारत के हिस्सों में पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों की संख्या कम है। उत्तरी भारत में निम्नलिखित कारणों से लड़कों की कामना की जाती है:

1) वे अपने माता-पिता का आर्थिक सहारा होते हैं,
2) वंश चलने का आश्वासन होता है, और
3) लड़की के घर वाले लड़की का विवाह अपने से ऊंची हैसियत वाले के घर करना चाहते हैं जिसके कारण लड़की वालों को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

शहरों में लड़कियों का जन्म लेना कोई अपमान और आपदा की बात नहीं मानी जाती। परंतु अभी भी लड़कों के जन्म पर ज्यादा खुशी मनाई जाती है। लड़की के बाद अगर लड़का हो तो परिवार पूर्ण माना जाता है। लड़के के बिना परिवार अधूरा माना जाता है। अगर पहली संतान लड़का हो तो मां बाप अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं। लड़के की चाहत में भ्रूण जांच प्रथा का दुरुपयोग किया जाता रहा है और लड़कियों के भ्रूण को गर्भपात द्वारा गिराया जाता रहा है। 1985 में ग्रेटर बम्बई का अध्ययन किया गया जिसमें पता चला

कि इस वर्ष 40,000 स्त्री भ्रूणों की हत्या की गई है। इसी प्रकार तमिलनाडु के कल्लई जाति में एक अध्ययन किया गया जिससे यह पता चला कि दहेज से बचने के लिए गरीब परिवार अपने बेटियों की हत्या कर देते हैं।

गांव में लड़के और लड़कियां जाति प्रथा और खान-पान संबंधी समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरते हैं। बच्चों को यह सिखाया जाता है कि निम्न जाति के बच्चों के साथ न खेलें। धीरे-धीरे उनके मन में यह बात घर कर जाती है कि निम्न जाति के व्यक्ति द्वारा भोजन और पानी छू लेने से वह दूषित हो जाता है। परंतु शहरों में लोग बराबर ढाबों, रेस्तरां, होटल आदि में जाते हैं जहां लोग खाने से पहले यह नहीं पूछते कि किस जाति के लोगों ने भोजन बनाया है।

मुसलमानों में किशोरियां पर्दा रखती हैं और कुंवारी लड़कियां भी घर में ही कैद रहती हैं। पर्दा प्रथा को उच्च हैसियत और सम्मान की बात मानी जाती है परंतु हिन्दू में अविवाहित लड़कियां पर्दा नहीं करतीं। शहरों में भी महिलाएं अपना सिर नहीं ढकतीं।

उत्तरी और मध्य भारत में पुरुषों और महिलाओं का विभाजन स्पष्ट होता है। शहरों और गांवों में किशोरियां और किशोर एक दूसरे से अलग-अलग रहना सीख लेते हैं। यहां तक कि शहरों में रहने वाले माता-पिता भी किसी लड़की के लड़के मित्र को सहज रूप में स्वीकार नहीं करते। लड़की केवल अपने परिवार के सदस्यों से ही संबंध रख सकती है। दक्षिण भारत में चचेरे, ममेरे, फुफेरे भाई, बहनों के बीच शादी होती है अत: इनके बीच मेल जोल को प्रोत्साहित किया जाता है क्योंकि उन्हीं में से कोई उनका पति भी हो सकता है। दक्षिण भारत में पर्दा प्रथा नहीं है इसलिए महिलाओं और पुरुषों में उत्तर भारत की अपेक्षा अलगाव कम है।

जाति वर्ग और समुदाय पर आधारित हमारी सामाजिक संरचना में विद्यमान असमानता का महिलाओं के कामकाज पर असर पड़ता है। आइए, देखें कि किस प्रकार विचारधाराएं महिलाओं के काम काज करने के ढंग को प्रभावित करती हैं।

जरा सोचिए—II

क्या आपके अनुसार उत्तर प्रदेश के मुसलमान और केरल के मुसलमान में कोई अन्तर है? और यदि अन्तर है तो इस अन्तर का क्या कारण है?

उदाहरण देकर यह स्पष्ट कीजिए कि लड़का और लड़किया के पालन पोषण में किस प्रकार का अन्तर होता है। संक्षेप में बताइए कि आर्थिक हैसियत किस हद तक समाज में महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करता है।

10.4 कामकाज में महिलाओं की भूमिका

अलग-अलग वर्ग जातियों और समुदायों में महिलाओं के लिए उपयुक्त काम काज की अवधारणाएं अलग-अलग हैं। उदाहरण के लिए शिक्षण और नर्सिंग का काम महिलाओं के लिए उपयुक्त माना जाता है। इसी प्रकार खेती में बोआई, कटाई आदि का काम महिलाओं के ही जिम्मे रहता है। विभिन्न वर्गों में महिलाओं को प्राप्त शिक्षा, प्रशिक्षण, संसाधनों और कुशलता से सभी महिलाओं के काम का निर्धारण होता है।

गांव में उच्च जाति की महिलाएं घर से बाहर काम नहीं करतीं क्योंकि काम न करना उच्च हैसियत और प्रतिष्ठा का मानदंड माना जाता है। कुछ काम जाति आधारित भी हैं

जैसे – कुम्हार, जुलाहा, चर्मकार आदि। इनमें भी स्त्री-पुरुष के लिए काम का अलग-अलग विभाजन है।

अधिकांश अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से वंचित हैं। भारतीय संविधान ने उनके लिए विशेष प्रावधान बनाए हैं। शैक्षिक संस्थाओं और नौकरियों में उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था है। इसके बावजूद उनमें से अधिकांश लोग इन प्रावधानों का लाभ नही उठा पाते। इनमें महिलाओं का समूह सबसे ज्यादा वंचित है। स्कूल जाने वाले लड़कों की संख्या लड़कियों की तुलना में ज्यादा है। इसका कारण सामाजिक आर्थिक होने के साथ-साथ आस-पास का माहौल भी उसके लिए उत्तरदायी है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की अधिकांश महिलाएं मजदूर हैं।

क्षेत्रीय विभिन्नताओं के कारण भी भारत में महिलाओं के काम काज करने का ढंग अलग रहा है। दक्षिण, उत्तर-पूर्व और मध्य जनजातीय क्षेत्रों की महिलाएं उत्तर-पूर्व महिलाओं की अपेक्षा अधिक काम करती हैं। गेहूं उत्पादक क्षेत्रों की अपेक्षा चावल उत्पादक क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं की संख्या अधिक है। इसका कारण आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों हैं।

परिवारों की मानसिकता और सोच से भी महिलाओं के काम करने के ढंग और प्रकृति का निर्धारण होता है। उदाहरण के लिए खेती में महिलाएं हल नहीं चलाती परंतु वे रोपन और कटाई करती हैं। इलेक्ट्रोनिक उद्योगों में महिलाओं को मुख्य रूप से समान जुटाने के काम में लगाया गया है। इसी प्रकार सेवा क्षेत्रों में महिलाएं शिक्षण, नर्सिंग और कार्यालय में नौकरी करती हैं।

दिल्ली के एक पब्लिक स्कूल में अभिभावकों से पूछताछ की गई उससे यह बात सामने आई कि 25% माता-पिता बेटे और बेटी में कोई भेदभाव नहीं रखते। दूसरी ओर बाजार से अंडा और ब्रेड लाना, कुत्ते को घूमाने के लिए बाहर ले जाना लड़कों का काम माना जाता है। इस प्रकार केवल 11% अभिभावक ही लड़कों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे रसोईघर में मदद करेंगे जबकि 58% अभिभावकों ने यह माना कि यह लड़कियों का काम है (पार्थ सारथी, 1988)।

महिलाएं चाहे किसी भी वर्ग की हों उनके काम काज के संदर्भ में यह धारणा बनी हुई है कि उनकी नौकरी उनकी मां और पत्नी की भूमिका को प्रभावित न करती है। यहां तक कि टी.वी में दिखाए जाने वाले सीरियल विज्ञापन में भी महिलाओं को अपनी नौकरी औ काम काज के बीच संतुलन स्थापित करते हुए दिखाया जाता है। महिलाओं की इस प्रकार की छवि दिखाकर उनपर दोहरे काम का बोझ लाद दिया जाता है और वे घर या बाहर कहीं भी काम करने से चूकती हैं तो उन्हें ग्लानि होती है। महिलाओं के पास पुरुषों से चाहे जितना भी काम क्यों न रहे उन्होंने यह स्वीकार कर लिया है कि घर की देखभाल और बच्चों की देखरेख उनका ही काम है। यह धारणा पितृसत्तात्मक समाज में बहुत जटिल हो जाती है जहां पुरुष ही उसका नियामक होता है।

परम्परागत रूप से भारतीय महिलाएं किसी दबाव या मजबूरी के तहत ही घर से बाहर काम करती हैं। शहर और गांव में कामकाजी महिलाएं अपनी गरीबी को दूर रखने के लिए काम करती हैं। निम्न वर्ग की महिलाएं दूसरों के खेतों में काम करती हैं। वे घरेलू नौकर के रूप में भी काम करती हैं। इस प्रकार उन्हें इधर-उधर जाने और घूमने की ज्यादा आजादी है।

महिलाओं के काम काज को नियंत्रित करने वाले रीति रिवाज, मूल्य, दृष्टिकोण और सोच स्थाई नहीं होते और समाज तथा स्थान के अनुसार बदलते रहते हैं। परंतु पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं के काम काज पर इसका ज्यादा नियंत्रण होता है। उदाहरण के लिए कृषि में हुए

विकास से कई कृषि विकसित क्षेत्रों में ग्रामीणों की जीवन शैली में काफी परिवर्तन आया है। इससे कई जातियों में काम के प्रति नजरिया और दृष्टिकोण बदल गया है। इसके कारण अब इन जाति की महिलाएं खेतों में काम नहीं करतीं। इसी प्रकार संस्कृतिकरण की प्रक्रिया और सामाजिक पदानुक्रम में ऊपर चले जाने के बाद परिवार की महिलाएं खेतों में या घर के बाहर काम नहीं करतीं। मूल्य, रीति रिवाज और दृष्टिकोण के अलावा मौजूदा रीति रिवाज भी महिलाओं के काम काज को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए पर्दा प्रथा से महिलाओं की स्वतंत्रता और काम करने के ढंग पर असर पड़ता है।

परिवार में पुरुषों और महिलाओं के काम का स्पष्ट विभाजन रहता है। केवल परिवार के ढांचे से ही कार्य का विभाजन निर्धारित नहीं होता बल्कि बाहर के परिवेश संचार माध्यमों और काम की प्रवृत्ति भी महिलाओं के काम काज को प्रभावित करती है।

10.5 सामाजिक भूमिकाओं का आत्मसातीकरण

मूल्य, संस्थाएं, रीति रिवाज, दृष्टिकोण, कायदे कानून, पारिवारिक मान्यताएं, समाजीकरण की प्रक्रिया, यौन आधारित कार्य का विभाजन और आत्म निर्धारण महिलाओं की छवि और स्थिति को निर्धारित करने वाले प्रमुख सामाजिक और सांस्कृतिक कारक हैं। महिलाएं अपने बारे में क्या सोचती हैं ? यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उनका समाजीकरण कैसे हुआ है ? समाजीकरण की प्रक्रिया मूल्य आधारित होती है क्योंकि इसमें समाज अपने नए सदस्यों को अपने कायदे कानूनों और मानदंडों के अनुसार ढालता है। स्त्री-पुरुष आधारित समाजीकरण भी मूल्य आधारित होता है जहां बचपन से ही स्त्रियों के लिए खास आदर्श तय कर दिए जाते हैं ताकि वह जीवन भर विनम्र, आश्रित, अमूर्त और निष्क्रिय बनी रहें। सामाजिक सीढ़ियां, आदर्श, कायदे कानून, रीति रिवाज, मान्यताएं, परम्परा आदि इस प्रकार के समाजीकरण को सैद्धांतिक आधार भूमि प्रदान करती है।

पानी, चारी एवं जलावन लाते हुए ये भी तो काम है पर फिर भी कमाऊ कहलाने की अधिकारी नहीं।

सौजन्य : सी० डब्लू०डी०एस० और देबल के. सिंहराय, नई दिल्ली

भारत में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का दर्जा नीचा समझा जाता है। पुरुषों को रोटी कमाने वाला समझा जाता है। अर्थात पुरुष बाहर का काम करें और महिलाएं घर का काम करें। लीला गुलाटी ने केरला में 5 कामकाजी महिलाओं के जीवन का अध्ययन किया (1981) और यह निष्कर्ष निकाला कि प्रमुख कमाई करने के बावजूद परिवार में सामाजिक पदानुक्रम में उनकी हैसियत नहीं बदली थी। पूरे क्षेत्र में महिलाओं की निर्भरता और कम क्षमतावान होने की बात फैली हुई थी जबकि पुरुष अपनी पत्नियों पर ही आश्रित थे। नरसापुर (आंध्रप्रदेश) में महिलाएं सामान बनाती हैं और पुरुष उन्हें बाजार में बेचने के लिए ले जाते हैं। महिलाएं यह बताती हैं कि यदि वे काम न करें तो उनके पति भी बेरोजगार हो जाएंगे। वे उत्पादन करती हैं, श्रम करती हैं परंतु इसका कोई श्रेय उन्हें नहीं मिलता। हालांकि महिलाएं यह जानती हैं कि उनका यह काम घर के काम से बिलकुल अलग है। यह काम आनन्द और मौज मनाने के लिए नहीं किया जाता। इसके बावजूद वे अपनी भूमिकाओं को बहुत महत्व नहीं दे पातीं।

शहरी क्षेत्रों में कामकाजी वर्ग और खासकर पुरुषों के लिए कई प्रकार की नौकरियां उपलब्ध होती हैं। लीला कस्तुरी (1999) ने यह अध्ययन करके बताया है कि जब तमिलनाडु के बेरोजगार बुनकर दिल्ली आए तो उनकी महिलाओं को घरेलू नौकरों की नौकरी मिली जबकि पुरुषों ने मिस्त्री, ड्राइवर या रसोइए का काम करना शुरू किया। अपने घर से दूर निकलने के बाद जीवन शैली में परिवर्तन आ जाता है और परिवार को चलाने के लिए अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। जिन पुरुषों के पास घर का काम करने का विकल्प था उन्होंने राजधानी में अपने पसंद की नौरियां ढूंढनी शुरू की। महिलाएं भी विकल्पों की खोज करने लगीं। महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों का भी यह मानना है कि महिलाओं का काम और उनकी आयं अनुपूरक होती है। एक अध्ययन के दौरान झाड़ू लगाने वाली एक महिला ने बताया कि केवल वही अपने घर में काम करती है। उसका पति बेरोजगार है फिर भी वह उसे पीटता है। पति मालिक होते हैं और पत्नी से सेवा करवाना, पैर दबवाना अपना अधिकार समझते हैं। गोविन्द केलकर ने अपने अध्ययन के दौरान (1981) पाया कि पंजाब में हरित क्रांति के क्षेत्रों में पूरे दिन काम करने के बाद महिलाओं को यह सेवा भी करनी पड़ती है। यदि कोई महिला बहस करती है या खाना बनाने में आनाकानी करती है तो इसे परिवार अवमानना मानता है और अपराध के लिए उसे सजा भी दी जाती है, मारा पीटा भी जाता है।

इसी प्रकार डोरेन जैकोबसन ने उत्तरी और मध्य भारत की महिलाओं का अध्ययन करके बताया है कि 'वस्तुत: महिलाएं अपने पिता, भाई और पति के नियंत्रण में होती हैं और उन पर आश्रित होती हैं। एक बार मैने सुक्कीबाई से बात की जो दिनभर सड़कों पर झाड़ू लगाती रहती थी। मैने उससे पूछा कि तुम्हारे शराबी पति के साथ तुम्हारे संबंध कैसे हैं ? उसने बताया कि जब वह छोटी थी तभी उसकी शादी इसके साथ हो गई थी। इसके बाद उसने तीन और शादियां की। ये सभी महिलाएं पखाना धोती थीं, टोकरी बुनती थीं और अपनी सारी आमदनी अपने निकम्मे पति को दे देती थीं जिसमें से वह अधिकांश पैसे की शराब पी जाता था। सुक्कीबाई बताती हैं कि अगर वह अपने पति की अनुमति के बिना सस्ती चूड़ियां भी खरीद लेती है तो उसकी पिटाई की जाती है। 'फिर तुम उसके साथ रहती क्यों हो ?' मैंने उससे पुछा। उसने जवाब दिया 'फिर मैं कहां जाउंगी'। उसने बड़े आश्चर्य से मेरी तरफ देखा। उच्च जाति की महिलाओं से भी बातचीत करने पर भी यही विचार सामने आया। खेत में काम करने वाली एक परम्परागत महिला से मैंने पूछा तो उसने बताया 'मुझे अपने पति का कहना मानना पड़ता है। अन्यथा मैं जाउंगी कहां। वह मेरा अन्नदाता है' (पृष्ठ 85)। इस प्रकार पुरुष पैसा कमा कर लाता है इसलिए वह अन्नदाता है। यह बात महिलाओं को बचपन से ही सिखाई जाती है और इसे उनके दिमाग में कूट-कूट कर भर दिया जाता है।

इसके अलावा महिलाओं की गतिविधियों पर सांस्कृतिक प्रतिबंध भी होते हैं और आमतौर पर महिलाएं भी अपने काम को पुरुषों की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण मानती हैं। दिल्ली के एक समुदाय का अध्ययन कर मालारिका कारलेकर (1987) ने बताया कि उस समुदाय में पति अपने परम्परागत रोजगार के लिए घर से बाहर निकलते हैं और महिलाएं घर संभालती हैं। महिलाओं के मन में यह बात घर कर गई है कि पुरुषों को बेहतर जीवन जीने का अधिकार है। वे अपने बारे में कम ही सोचा करती हैं। महिलाएं घर के अन्दर रहती हैं और घर का काम काज करती हैं। कई जातियों में यह प्रतिबंध काफी कड़ा है और कमाने के लिए पुरुष ही घर से बाहर निकलते हैं। इस माहौल में आठ वर्ष तक पहुंचते-पहुंचते अधिकांश लड़कियां घर का काम करने लगती हैं और खाना पकाने लगती हैं। लड़के घर के काम काज में न के बराबर हिस्सा लेते हैं। लड़कों को घर से बाहर खेलने और लड़कियों को घर में काम करते अक्सर देखा जाता है।

पर्दा प्रथा एक तरह से पुरुष के वर्चस्व का प्रतीक है। परंतु यह भारत में उच्च हैसियत का भी प्रतीक है। उच्च जाति की हिन्दू और मूसलमान महिलाएं यथासंभव घर में ही रहती हैं। गांव में खेत में काम करने और पानी लाने के लिए नौकर रखे जाते हैं जो उस परिवार की अच्छी आर्थिक हैसियत की ओर इशारा करते हैं। उसके बावजूद पर्दा प्रथा से महिलाओं के आने जाने पर प्रतिबंध लगता है और वे पुरुषों के नियंत्रण में रहती हैं।

इसी के साथ-साथ परिवार के रहन-सहन और विचार महिलाओं की स्थिति, लड़कियों और महिलाओं पर पुरुषों के नियंत्रण, परिवार की प्रतिष्ठा, महिलाओं के काम करने को दिया जाने वाला महत्व, परिवार के संसाधनों पर लड़की का अधिकार (स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा) और पुरुष वर्चस्व की संरचना, समर्थन और संघर्ष पर निर्भर करते हैं।

बचपन से ही लड़की जो कुछ अपने परिवार में देखती है उसे ही अपनाती है। परम्परा से लड़कियों का समाजीकरण आरंभ से ही होता है और उनकी एक खास भूमिका तय हो जाती है। इससे न केवल परिवार के काम काज पर असर होता है बल्कि इससे परिवार में तथा स्थान का निर्धारण हो जाता है। उनकी भूमिका तथा परिवार के माहौल के अनुसार ही लड़कियों के संस्कार बनते हैं और वे उसी के अनुसार सोचने विचारने लगती हैं।

इसके अलावा महिलाएं परिवार के दृष्टिकोण को आत्मसात कर लेती हैं और उसे अपना दृष्टिकोण बना लेती है। इसके साथ-साथ उनकी शिक्षा, अर्जन और परिवार की हैसियत तथा परिवार में उनके आर्थिक योगदान का भी असर उनके दृष्टिकोण पर पड़ता है। शहरों में ऊंचे पद पर काम करनेवाली मध्यवर्गीय महिलाएं या कारखानों या खेतों में काम करनेवाली महिलाओं की हैसियत में काफी फर्क होता है। स्पष्टतः महिलाएं अपने जीवन यापन के लिए कार्य कर रही हैं या सामाजिक गतिशीलता के लिए, इसके आधार पर उनकी विचारधारा में अंतर आ जाता हैं। गरीब परिवार में उनके सामने कोई विकल्प नहीं होता। उन्हें जीवन यापन करने के लिए काम करना होता है।

10.6 समाजीकरण और विचारधाराएं : नई प्रवृत्तियां

कामकाजी महिलाएं और शिक्षित लड़कियां अब सर्व समर्पित परंपरागत पत्नी की भूमिका को छोड़कर पति के कंधे से कंधा मिलाकर कार्यकर रही हैं और परिवार संचालन में उनका अधिकार पति के समान है। परंतु अभी भी विवाह-शादी माता-पिता या परिवार के बुर्जुग व्यक्ति ही तय करते हैं। अब समाज 'लव मैरिज' भी स्वीकार करने लगा है और विवाह की उम्र भी अब बढ़ने लगी है। हिन्दी सिनेमा में भी पहले प्यार होता है और फिर वर पक्ष और कन्या पक्ष दोनों मिलकर लड़का लड़की की शादी कर देते हैं। 'हम आपके हैं कौन'

और 'दिलवाले दुलहनिया ले जाएंगे' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

अब पति या पत्नी के चुनाव में शिक्षा मानदंड के रूप में काम करने लगा है। अब शहर में रहने वाले परिवार अपनी लड़कियों को पढ़ाने लिखाने और उनकी अच्छी नौकरी करने पर गर्व महसूस करने लगे हैं।

अब समाचार पत्रों में शादी-विवाह के विज्ञापन निकलने लगे हैं। परम्परागत जन्मपत्री के स्थान पर कम्प्यूटर पर इसका निर्माण होने लगा है। परंतु इन विज्ञापनों में अभी भी परम्परागत मानदंड प्रतिबिंबित होते हैं। अधिकांश अखबारों में जाति, धर्म आदि के आधार पर विवाह के विज्ञापन निकाले जाते हैं।

इधर हाल के अध्ययनों से पता चला है कि अब शहरों में, घर के कामों में पति अपनी पत्नी की मदद करने लगे हैं। इससे श्रम विभाजन का आधार बदला है। हालांकि अभी पुरुष ज्यादातर बच्चों की देखभाल में ही मदद करते हैं। इसके अलावा बाकी सारा काम महिलाएं ही करती हैं। हालांकि आज की महिलाएं ज्यादा आजाद हैं। उनका आत्मविश्वास बढ़ा है और वे अपनी आकांक्षाओं और जरूरतों के प्रति ज्यादा मुखर हुई हैं। पिछले कुछ दशकों में आधुनिकीकरण के कारण जातिगत आधार कमजोर हुआ है और यह ज्यादातर व्यक्तिगत पहलू हो गया है। औद्योगीकरण और बढ़ते शहरीकरण के कारण जातिगत अनुष्ठान सार्वजनिक न रहकर व्यक्तिगत हो गए हैं। लोगों का रहन-सहन, खान-पान जाति या धर्म से प्रभावित न होकर कार्य स्थल और पेशे से प्रभावित होने लगा है। शहर में रहने वाला व्यक्ति जब किसी रेस्तरां में खाना खाने जाता है तब खाना परोसने वाले की जाति नहीं पूछता। अब एक ब्राह्मण भी एक जूते के कारखाने में काम करने लगा है। इसी प्रकार शहर की विभिन्न कम्पनियों में विभिन्न जातियों और प्रदेशों की महिलाएं शाम को इकट्ठा होकर करवाचौथ का व्रत करती हैं।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए नौकरियों में आरक्षण है और इसके तहत वे दूसरे लोगों से प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। परंतु इसमें लड़कियों को सबसे पहले ज्यादा नुकसान है। शहरी झुग्गी झोपड़ियों में कई अध्ययन किए गए जिससे पता चलता है कि लड़कियां स्कूल नहीं जातीं। दिल्ली में रहने वाले उत्तर भारत के एक बाल्मिकी जाति का अध्ययन किया गया और यह पाया गया कि वे अपनी लड़कियों से घर का काम करवाते हैं और उनके विवाह में ज्यादा रुचि लेते हैं। इस ओर उनका ध्यान कम जाता है कि उनको स्कूल भी भेजना चाहिए। परंतु सरकार ने इधर कुछ योजनाएं शुरू की है जैसे दोपहर के भोजन की व्यवस्था, प्राथमिक विद्यालय के साथ शिशु गृह, बालवाड़ी स्थापित करना। इससे प्रेरित होकर लोग लड़कियों को स्कूल भेजने लगे हैं।

महिलाओं को दासता से मुक्त करने के लिए भारतीय संविधान में कई कानून और अधिनियम पारित किए गए हैं। परंतु अभी भी इन अधिनियम और कानूनों में कमी है और इसमें स्त्री-पुरुष पूर्वाग्रह स्पष्ट रूप से परिचालित होता है।

दूसरी ओर परम्परागत कायदे कानूनों और रीति रिवाजों का नाम लेकर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव बढ़ता जाता है। बहुत सी महिलाएं अपने इस प्रकार के कानूनों और अधिनियमों से परिचित भी नहीं हैं। इसलिए इस बात की जरूरत है कि महिलाओं को उनके अधिकारों, कानूनी प्रावधानों और मुफ्त कानूनी सलाह की जानकारी दी जाए।

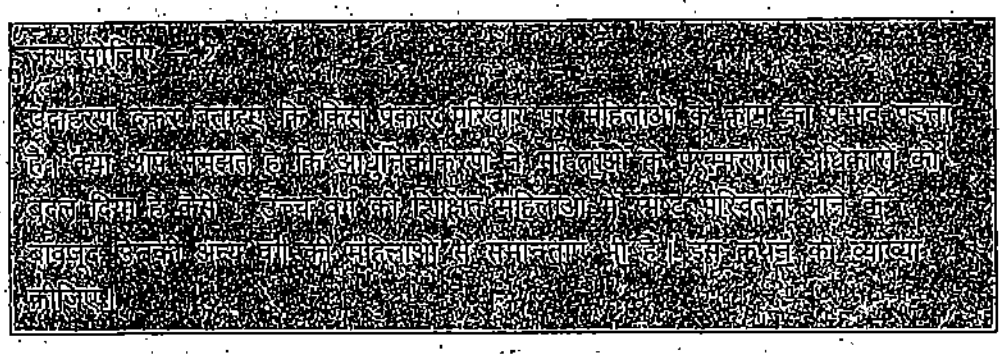

10.7 सारांश

इस इकाई में हमने उन विचारधाराओं को स्पष्ट किया है जिससे समाज में महिलाओं की भूमिका तय होती है। यह पुरुष प्रधान विचारधारा कई स्तरों पर काम करती है और इसका स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोण और विचारधारा पर असर पड़ता है। विभिन्न समुदायों और समूहों में महिलाओं की भूमिका का निर्धारण अलग-अलग रूपों और स्तरों पर होता है। हमने जाती, वर्ग और विचारधारा के संदर्भों में इन पुरुष प्रधान या पितृसत्तात्मक विचारधाराओं और उनके कार्यान्वयन पर नजर डाली। हमने देखा कि कैसे इन विभिन्न संदर्भों में महिलाओं की भूमिका बदल जाती है। अंत में हमने स्त्री-पुरुष संबंधी दृष्टिकोण और महिलाओं की भूमिका में आए परिवर्तन पर भी चर्चा की।

10.8 शब्दावली

स्त्री-पुरुष (जेंडर) : मानव स्त्री या पुरुष या नर या मादा में विभाजित है। शारीरिक आकार के कारण दोनों में अंतर है। सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उनकी भूमिका तय होती है।

स्त्री-पुरुष भूमिका : लड़के और लड़कियों को दी जानेवाली भूमिकाओं और बाद में पुरुषों और महिलाओं से की जाने वाली अपेक्षाओं की प्रक्रिया।

समाजीकरण : यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके जरिए बच्चे अपनी भूमिका, हैसियत और आकाक्षांओं का निर्माण करते हैं। परिवार, स्कूल और समाज की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

विचारधारा : वे मान्यताएं, दृष्टिकोण विचार जो एक व्यवस्था, राजनीतिक दल, समूह, परिवार या व्यक्ति को निर्देशित करती है।

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1974, टूवर्ड्स इक्वालिटी: रिपोर्ट आफ द कमिटी ऑन द स्टेटस ऑफ वुमैन इन इंडिया। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ एडुकेशन ऐंड सोशल वेल्फेयर।

शाह, अ.म. और बी.एस. बावीसकर और ई.अ.रामास्वामी (सं) 1996, सोशल सटक्चर एंड चैंज : वूमेन इन इंडियन सोसाइटी, नई दिल्ली : ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी।

इकाई 11 पुस्तकों, मौखिक परम्परा और जन-संचार में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

रूपरेखा

11.0 लक्ष्य और उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 श्रुति मौखिक परंपरा
  11.2.1 लोक कथाएं
  11.2.2 लोक गीत
  11.2.3 कहावतें/सूक्तियां
  11.2.4 श्रुति/मौखिक परंपरा में नारी की छवि
11.3 जन-संचार माध्यम
  11.3.1 जन-संचार माध्यमों की भूमिका
  11.3.2 छवि की रचयिता के रूप मे जन-संचार माध्यम
  11.3.3 जन-संचार माध्यमों में भारतीय नारी की छवि
  11.3.4 उदाहरण
  11.3.5 बढ़ती चिंता
11.4 पाठ्य-पुस्तकें
  11.4.1 पाठ्य-पुस्तकों में पूर्वाग्रह
  11.4.2 उदाहरण
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 लक्ष्य और उद्देश्य

भारतीय श्रुति-परंपरा, जन-संचार माध्यमों तथा पाठ्य-पुस्तकों में नारी का चित्रण किस प्रकार किया गया है और किया जा रहा है यही इस इकाई का विषय है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अपने अचंल में प्रचलित लोक कथाओं, लोकगीतों और कहावतों के जरिए हमारी श्रुति परंपरा में चित्रित भारतीय नारी की छवि का वर्णन कर सकेंगे;
- गृह निर्वाहकों (होम मेकर), द्वितीयक भूमिकाओं में नारी और कामुक प्रतीकों (सेक्स सिंबल) के रूप में नारी की जन-संचार माध्यमों में चित्रित इन भिन्न छवियों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- पाठ्य-पुस्तकों में भारतीय नारी के चित्रण को पहचान सकेंगे; और
- भारतीय नारी की छवि के चित्रण में आवश्यक परिवर्तनों के बारे में बता सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

श्रुति-परंपरा, जन-संचार माध्यमों और पाठ्य-पुस्तकों में भारतीय नारी के चित्रण के बारे में जब भी हम चर्चा करते हैं तो असल में हम भारतीय नारी की छवि के प्ररूपों के बारे में

बात कर रहे होते हैं जो हमारे सामने दर्शाए जाते हैं। अब प्रश्न यह है कि भारतीय नारी की आदर्श छवि क्या है?

भारतीय नारी की आदर्श छवि को जानने के लिए क्या हमें हिंदू मिथक-शास्त्र की ओर जाना होगा? अगर हम मिथकों की ओर जाते हैं, तो हमारे सामने भारतीय नारी की परस्पर-विरोधी छवियां उभरती हैं। भारतीय नारी का रूप क्या द्रौपदी है, जिसने भरी सभा में अपने पांचों पतियों से चुनौती भरे लहजे में प्रश्न किया था कि उसे द्युत-क्रीड़ा में हारने का अधिकार उन्हें कहां से मिल गया जब वे स्वयं कौरवों के दास बन चुके थे? क्या वह सीता है जो बिना कोई प्रश्न किए अपनी पवित्रता की बारंबार परीक्षा देकर अपना अपमान सहन कर लेती है? क्या वह सावित्री है जो तमाम विरोधों, आपत्तियों के बावजूद अपने प्रिय व्यक्ति से विवाह करती है और अपनी कुशाग्र बुद्धि और हाजिरबावी से यमराज से उसके लिए जीवन का वरदान पा लेती है? क्या वह मशहूर गणितज्ञ भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती है, जिसके नाम पर पिता ने अपनी गणितीय कृति का नाम रखा था? क्या वह भक्त प्रहलाद की मां है जो अपनी संतान की हत्या पर उतारू अपने पति को रोकने में असमर्थ है? इस तरह के हम अनगिनत उदाहरण दे सकते हैं मगर भारतीय नारी की सच्ची छवि से हम तब भी कोसों दूर रहेंगे।

एक और समकालीन तस्वीर नारी की परस्पर-विरोधी छवियां प्रस्तुत करती है। ये परस्पर-विरोधी छवियां सिर्फ शहरी-ग्रामीण अंतर या शैक्षिक विभेदों का ही परिणाम नहीं है। शहरी इलाकों में अनेक व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रसिद्धि या सफलता पाने वाली सैकड़ों महिलाओं के साथ-साथ हमारे सामने उन महिलाओं के कुछेक उदाहरण भी हैं, जिन्होंने सर्व-महिला पंचायतें बनाकर अपने समुदायों के सभी मामले हमने हाथों में ले लिए हैं। मगर इसके साथ ही पढ़े लिखे घरों में आज तक "दहेज की मौतें" भी खूब होती हैं जिनमें ये अभागी महिलाएं यही बयान देकर मर जाती हैं कि "यह एक दुर्घटना थी।"

भारतीय नारी की छवि अमूमन उसके परिवार के अन्य सदस्यों से उसके संबंध के रूप में मिलती है: वह या तो किसी की बेटी, पत्नी या किसी की मां है। परंपरागत रूप से एक ऐसे स्वतंत्र प्राणी के रूप में उसके साथ कभी कोई व्यवहार नहीं किया जाता कि उसकी एक व्यक्ति के रूप में स्वतंत्र पहचान हो, स्वतंत्र अस्तित्व हो।

यहां तक कि उसे बचपन से ही घोट-घोट कर पिलाया जाने वाला पतिव्रता का आदर्श उससे यही अपेक्षा करता है कि वह पति की सेवा को ही अपने जीवन का परम कर्तव्य और उद्देश्य मानकर चले। सीता, अहिल्या, द्रौपदी, तारा और मंदोदरी के उदाहरण देकर सभी हिन्दू कन्याओं को नारीत्व के जिन आदर्शों में ढाला जाता है उसकी सबसे उल्लेखनीय विशेषता पतिव्रता का धर्म है। इसका अर्थ है अपने पति के कल्याण, उसके सुख के प्रति उनका समर्पण और अपने पति की प्रकट और अप्रकट इच्छाओं का निसंकोच पालन। इस प्रकार पत्नी को उसकी अधीनस्थ, परिचारिका की भूमिका में बचपन से ही शिक्षित-दीक्षित कर दिया जाता है। भारतीय मानस में नारी की छवि एक ऐसे मूक, सहनशील और आत्म-बलिदानी व्यक्ति के रूप में अंकित है जो अपने पति, अपनी संतान और परिवार के अन्य सदस्यों के कल्याण, उनके सुख को अपने से अधिक महत्व देती है।

इस इकाई में आगे हम पहले श्रुति-परंपरा में चित्रित नारी की छवि पर चर्चा करेंगे जिसके बाद जन संचार माध्यमों और पाठ्य पुस्तकों में चित्रित छवि पर आएंगे।

11.2 श्रुति/मौखिक-परंपरा

श्रुति-परंपरा के जरिए ही किसी देश या अंचल की किंवदंतियां, कथाओं और जन साधारण के जीवन को संचालित करने वाले रीति-रिवाजों और विश्वासों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पहुंचाया जाता है। ये अलिखित उत्पाद ही देश या उसके अंचल के मानस को प्रतिबिंबित करते हैं। सो श्रुति परंपरा में हमारे लोक गीत, कथाएं, किंवदंतियां, कहावतें इत्यादि आती हैं।

भारत में श्रुति परंपरा नारी का चित्रण कई तरह से करती है। इकाई के आने वाले भागों में हमने महाराष्ट्र की श्रुति-परंपरा के उत्पादों का विश्लेषण किया है जो नारी की छवियों को दर्शाते हैं और इस अंचल के जन मानस का हिस्सा हैं।

11.2.1 लोक कथाएं

कहानी सुनने-सुनाने का प्रचलन भारत की श्रुति मौखिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। महाराष्ट्र के हिन्दुओं में कथाओं का एक ऐसा रूप कहाणी प्रचलित है जिसका शाब्दिक अर्थ कहानी है। मगर यहां कहाणी का एक बिल्कुल ही विशिष्ट अर्थ है। कहाणी एक कहानी है, जो माताएं और सासें अपनी बेटियों और बहुओं को सुनाती हैं जिसमें वे देवताओं से विशेष वरदान प्राप्त करने के लिए रखे जाने वाले व्रतों की महिमा का बखान करती हैं। ये व्रत सामान्यतया किसी विशेष दिन किसी विशेष देवता की पूजा-अर्चना के रूप में किए जाते हैं।

इन व्रतों के माध्यम से प्राय: पुत्र का वरदान, पति का प्रेम, पति के दीर्घायु, संतान के जीवन, संतानहीनता से बचने, पति और ससुरालियों की आर्थिक समृद्धि, ससुरालियों द्वारा अंगीकार किए जाने, वैधव्य से बचने की मनोकामनाएं की जाती हैं।

स्त्री के स्वतंत्र स्वभाव को निश्चय ही पसंद नहीं किया जाता है। ऐसी ही एक काहणी में जब एक बेटी अपने पिता के इस प्रश्न "तुम्हारी नियति का विधाता कौन है?" के उत्तर में कहती है? "मैं हूं" तो पिता क्रुद्ध हो जाता है। पिता ने अपनी अन्य छ: बेटियों के लिए धनाढ्य वर तो ढूंढे जिन्होंने उत्तर में अपनी नियति का स्वामी अपने पिता को ही बताया था, मगर इस स्वाभिमानी बेटी का विवाह यह पिता एक गरीब व्यक्ति से कर देता है जो कई क़िस्म के रोगों से पीड़ित है और मरणासन्न स्थिति में है। इस प्रकार इस बेटी को इस परीक्षा में खरा उतरने का एक अवसर दिया जाता है कि वह किस तरह अपनी नियति की स्वामिनी हो सकती है। निश्चय ही उसे अपने स्वतंत्र स्वभाव की सजा के रूप में पति की मृत्यु मिलती है। देवी मां पार्वती की सलाह पर वह अपनी मौसी से एक पुण्य ऋण लेती है जो उसकी मौसी ने एक विशेष व्रत धारण करके कमाया था और उसका पति पुन: जीवित हो उठता है। ये सभी कहाणियां यही दर्शाती हैं कि जो स्त्रियां पूरी कर्तव्यनिष्ठा से विभिन्न व्रतों को पालन करती हैं उन्हें वांछित फल प्राप्त होते हैं। किसी भी कहाणी में पुरुष को देवताओं से वरदान पाने के लिए व्रत रखते नहीं दिखाया जाता है। जब पुरुषों की पत्नियां और माताएं ऐसे व्रतों की सभी कष्टसाध्य शर्तों का पालन करती हों तो उसका लाभ तो उन्हें मिलना लाजमी ही है।

11.2.2 लोक गीत

लोकगीत एक गीत काव्य है जिसे गाया जाता है। इसकी उत्पत्ति अतीत में अनपढ़ लोगों के बीच अनाम होती है और लंबे समय तक जनसाधारण की स्मृति में ये जीवित रहते हैं। कई पीढ़ियां गुजर जाने के बाद ही इन्हें लिपिबद्ध किया जाता है।

इकाई के इस भाग में हम महिलाओं द्वारा रचे गए लोक गीतों के बारे में बताएंगे क्योंकि

इनमें जीवन के विभिन्न चरणों में महिलाओं द्वारा अनुभव किए जाने वाले सुखों और दुःखों, कष्टों और आनंदों की उन्हीं की जुबानी, उन्हीं के बोलों में अभिव्यक्ति होती है।

महाराष्ट्र में एक ऐसा ही लोक गीत ओवी प्रचलित है। इस दोहे या द्विपदी गीत की रचना महिलाओं ने ही की हैं जो इसे तड़के सुबह चक्की में आटा पीसते समय, बच्चे को सुलाते समय, तीज-त्योहारों और फुरसत के क्षणों में झूला झूलते समय गाती हैं, गुनगुनाती हैं।

महिलाओं ने विशेष अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों की भी रचना की है। ये गीत उनके अपने जीवन की कठोर वास्तविकताओं की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति हैं। ये गीत महिलाओं की आत्म-छवि और समाज द्वारा उनके लिए रची गई छवि का चित्रण भी करते हैं।

देश के अन्य भागों की तरह महाराष्ट्र में भी ये गीत विशेष त्योहारों में गाए जाते हैं जैसे नागपंचमी में जिसमें पहले गर्भ के सातवें महीने में नाग देवता की पूजा की जाती है या जैसे विवाह इत्यादि के शुभ अवसरों पर।

दोहों और गीतों की विषय वस्तु समान होती हैं: विवाह के समय बेटी को नसीहतें, मायके से मोह, सास का दुर्व्यवहार, संतान का कल्याण, बांझपन या संतानहीनता के दुःख, महिलाओं के बीच अपनापन, पति से संबंध, अंतिम कामना इत्यादि।

महाराष्ट्र के लोक गीतों के कुछ उदाहरणों को जानना यहां उत्तम होगा। इससे आपको दूसरे अंचलों के लोक गीतों में निहित इसी तरह की या भिन्न या अतिरिक्त थीमों के बारे में जानकारी जुटाने में सहायता मिलेगी।

क) बेटी को नसीहत

इन लोकगीतों में एम विषय वस्तु को अक्सर बार-बार दोहराया जाता है–यह है संबंधियों, विशेषकर मां, का विवाह के समय बेटी को "एक आदर्श पत्नी" की सभी जिम्मेदारियों को निष्ठा से निर्वाह करने नसीहत देना।

मां अपनी बेटियों को नसीहत देती है, "अपने पति का हमेशा आदर करो। अगर वह नाराज है तो उसके पास मुस्कराते हुए जाओ। तुम्हारा स्थान हमेशा उसके नीचे है, तुम्हें उसके चरण छूने चाहिए और देखो कि वह हमेशा शांत रहे।" बेटी को यह भी सलाह जाती है कि वह पति को देवता माने। पति अगर निकृष्ट व्यक्ति है तो भी पत्नी को पूरे आदरभाव से उसकी सेवा करनी चाहिए।

मां बेटी को अजनबियों से दूर रहने के लिए भी सावधान करती है (ताकि वह अवांछित, अनुचित संबंधों से बचे)। इसी गीत के अगले द्विपद में हम बेटी को इस सीख का पालन सावधानी से करता पाते हैं। वह एक अजनबी घुड़सवार को अपने मार्ग से हट जाने के लिए कहती है। वह जानती है कि अजनबियों से बात करने से उसका पति क्रुद्ध हो जाएगा। सो वह अजनबी को चेतावनी देती हैं। "मेरे पति वीर हैं। वे जंगल में शेरनी के दांत गिन सकते हैं। इसलिए बेहतर यही होगा कि तुम अपना रास्ता नाप लो।"

ख) मायके का मोह

अनेक ओवी और लोकगीत मायके से विवाहित लड़की के मोह-का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण करते हैं। वह बड़ी ही व्यग्रता से अपने भाई की प्रतीक्षा करती है कि वह उसे आकर ले जाए। वह जानती है कि जब भी उसे अपनी मां से मिलने की इच्छा होती है वह स्वयं मायके नहीं जा सकती।

इन ओवी और गीतों में पिता के प्रति भी लड़की के मोह को दर्शाया गया है। मगर वहीं

इनमें बताया जाता है कि पिता को अपनी बेटी का विवाह होने से पहले ही यह ज्ञात है कि एक न एक दिन उसे अपने बाप का घर छोड़कर जाना ही होगा। बेटी पराये घर का धन है, वह यह अच्छी तरह से जानता है। इसलिए वह बेटी से अनुरोध करता है कि वह मां-बाप से ज्यादा मोह न करे। बाप भी नहीं चाहता है कि वह स्वयं उससे अधिक मोह रखें (अन्यथा बेटी से बिछोह बड़ा ही दु:खदायी होगा)।

बहन और भाई का नाता बड़ा ही कोमल, नाजुक माना जाता है और इसे ओवी और गीतों में नाना प्रकार से दिखाया गया है। एक गीत में अपने भाई को बहन "संदूक में बंद सोने" की संज्ञा देती है "जिसकी चाबी उसकी पत्नी के पास है।" इस गीत का भावार्थ यही है कि उन दोनों का नाता भाभी की अनुमति से ही आगे चल सकता है। एक अन्य गीत में बहन अपने भाई को वह वचन याद दिलाती है जो उसकी मां ने मरते समय दिया था कि वह अपनी बहन को हमेशा प्रेम करेगा, उसकी सहायता और रक्षा करेगा।

ग) सास का दुर्व्यवहार

इन दोहों और गीतों की एक मुख्य विषय वस्तु सास का दुर्व्यवहार है जिसे लड़की को बिना किसी शिकायत, बिना किसी विरोध के सहना होता है।

ऐसे ही एक गीत में भाई अपनी बहन से उसकी कुशल पूछता है तो वह चुपके से उसे अपने दु:खों और कष्टों के बारे में बताती है। "ब्रह्मदेव की लेखनी के अनुसार ही मेरा जीवन कट रहा है।" भाई को अपनी बहन की दुर्दशा का एहसास हो तो जाता है लेकिन वह उसे अपने कष्टों को धैर्य से सहन करने की सीख देता है। वह अपनी बहन को इस प्रकार समझाता है: "जिस घर में तुम्हें ब्याहा गया है उसी में तुम्हें सुखी रहना है इसके अलावा कोई चारा नहीं है।" इसके साथ-साथ वह उसे दिलासा देते हुए कहता है कि आगे एक बेहतर भविष्य उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। "आज तुम्हें कष्ट उठाने पड़ रहे हैं, मगर कल तुम्हारे बच्चे बड़े होंगे तो तुम्हारा भाग्य भी जरूर बदलेगा।" कुलीन घराने में जन्मी होने के कारण बहू अपनी सास के दुर्व्यवहार की कोई शिकायत नहीं करती। बल्कि उसे यही आशा रहती है कि एक न एक दिन वह अपनी सास का हृदय और प्रेम जीत लेगी। "मैं सारे शारीरिक कष्टों को सहकर आपकी सेवा करूंगी। मैं चंदन की लकड़ी बनने के लिए तैयार हूं। मैं जानती हूं कि अंत में एक दिन मैं खुद को आपकी बेटी कहलाने में सफल हो जाऊंगी (और आपकी अपनी बेटी की तरह आपकी प्रिय बन जाऊंगी)।

एक दोहे में बहू अपनी सास से विनती करती है, "आपका आंगन चंपा का पेड़ है। मैं इसे लता की तरह आलिंगन करने आई हूं। मुझे मत ठुकराना।"

घ) संतान का कल्याण

बच्चे विशेषकर बेटे इन महिलाओं के अस्तित्व की, उनके जीवन की धुरी हैं। अनेक गीतों में माताएं अपने पुत्रों की दीर्घायु के लिए प्रार्थना करती पाई जाती हैं। कई रीति-रिवाजों में इस प्रार्थना की अभिव्यक्ति होती है, सो मां को इन रीति-रिवाजों को मानने की सलाह दी जाती है। "ऐसा कभी नहीं कहना कि चक्की पर आटे का पीसना खत्म हो गया है। हमेशा थोड़ा सा आटा उसमें छोड़ दो, क्योंकि दूसरे दिन आटा पीसना फिर से चालू हो जाएगा।" पुत्र की दीर्घायु के लिए इस रिवाज को माना जाना चाहिए। यह कभी 'खत्म' नहीं होगा। श्रुति परंपरा में कई लोरियां भी पुत्रों को ही संबोधित करती हैं जिनमें उनके कल्याण और दीर्घायु की कामना की गई है।

ङ) संतानहीनता का दु:ख

नि:संतान स्त्री हमेशा दया की पात्र मानी जाती है। उसे संतान, विशेषकर पुत्र की प्राप्ति के

अनगिनत नुस्खे बताएं जाते हैं। एक गीत में भगवान को महिलाओं को फल (यानी पुत्र) बांटते दिखाया गया है। निःसंतान स्त्री को भीड़ में से आगे जाकर स्वयं के लिए एक पुत्र पा लेने की सलाह दी जाती है। इसी गीत में पुत्र प्राप्ति की महिमा (बेटियों की तुलना में) गाई गई है।

च) महिलाओं के बीच अपनापन

कुछ गीतों में महिलाओं के बीच अपनापन या मित्रता भी दिखाई जाती है। पड़ोस में रहने वाली स्त्री ही अपने वैवाहिक घर, अपनी ससुराल में तमाम परीक्षाओं और कष्टों से गुजर रही नयी ब्याहता लड़की की सहायता करने आती है। यही उसे ढ़ाढ़स बंधाती है और उसे भावनात्मक सहारा देती है, जिसकी उसे बड़ी जरूरत होती है। लड़की कृतज्ञता से कहती है: "आप मेरी मां के तुल्य हैं।"

यह लड़की जब अपने मायकें जाती है तो वह अपने दुःखों को बचपन की सहेलियों के साथ बांटती है, विवाह के बाद जिनसे उसका संपर्क लगभग टूट चुका होता है।

छ) पति से संबंध

स्त्री अपने पति को अपना सबसे कीमती, सबसे सुंदर गहना मानती है। वह अपने सभी दुःखों को पी जाती है और अपने पति की उपस्थिति में मुस्कराती है ताकि वह प्रसन्न रहे। वह अपने पति के प्रेम के लिए लालायित रहती है। "मुझे कोई जेवर नहीं चाहिए, मुझे बस अपने पति के प्रेम का मोती चाहिए।" वह अपने पति के सुख को अपने सुख से आगे रखती है। "मुझे कुछ हो जाए तो मुझे कोई दुःख नहीं होता। मेरी सिर्फ यही कामना है कि मेरे पति सुखी रहें।"

कई गीत पति को संबोधित हैं जिनमें उससे अच्छे कपड़े जेवर-गहने इत्यादि लाने की याचना की जाती है (क्योंकि वही उसकी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। पत्नी पास और कोई स्वतंत्र साधन नहीं होता जिससे कि वह इन्हें स्वयं पूरा कर सके)। स्त्री के लिए उसका पति इतना महत्वपूर्ण है कि वह एक हीरा उसे सौंपने के लिए अपनी सास का लाख-लाख साधूवाद करती है (भले ही सास ने उसके लिए कुछ भी बुरा किया हो)।

पति से गिले-शिकवे यूं तो इन गीतों में बहुत कम हैं लेकिन उन्हें पूर्णतः नदारद भी नहीं कहा जा सकता। इन गीतों में दूसरी पत्नी (रखैल) के उद्धरण और उसके प्रति ईर्ष्या भावना की अभिव्यक्ति भी मिलती है। इनमें पति को "दूसरी स्त्री" के कारण अपने घर-परिवार की उपेक्षा करने के लिए कोसा जाता है कभी किसी गीत में कामेच्छा की पूर्ति के लिए पति की निरंतर मांग का भी उल्लेख हमें मिलता है हालांकि पति द्वारा यह मांग बड़े ही गुप-चुप इशारों में की जाती है। पति की तुलना इस गीत में वह एक ऐसे सर्प से करती है जो दिन-रात चंदन के वृक्ष से लिपटा रहता है। इन गीतों में इसके विपरीत किस्म की शिकायतें भी मिलती हैं। ऐसे ही एक गीत में स्त्री शिकवा करती है कि उसका पति सुंदर नहीं है और न ही उसमें कामेच्छा है। "उसने तो मेरा जीवन नष्ट कर दिया है," वह विलाप करती है। इस गीत में वह आगे बताती है कि पति को लुभाने के उसने क्या-क्या जतन नहीं किए। लेकिन वह एक निष्प्राण, कठोर पत्थर सा है जो जल में डुबोने पर भी नहीं भीगता। वह हैरान है, "सागर में अनेक मोती और मूंगे पड़े हैं, लेकिन भगवान ने भला यही कड़ुवी बेल मेरे माथे क्यों मढ़ दी है?" इसी तरह दूसरी स्त्री भी शिकायत करती है, "मैं चंदन की लकड़ी के बारह टुकड़े करती हूं (यह बड़ा कठिन काम है)। स्त्रियां मूर्ख होती हैं। मगर पुरुष अपना प्रेम देने में कंजूसी करते हैं। (इसका यही अर्थ है कि वह अपने पति को लुभाने, उसका हृदय जीतने में असफल रही है)।

स्त्री के विवाहित होने से परिवार और समाज में उसकी स्थिति अच्छी होती है। कुमकुम (सिंदूर), कांच की हरी चूड़ियां और मंगलसूत्र ये प्रतीक उसकी विवाहित स्थिति को बताते हैं। वह अपने पति को "मेरा कुमकुम", "हरी कांच की चूड़ियां", "मेरा मंगलसूत्र कहकर पुकारती है। पति की मृत्यु हो जाने पर उसे इन तमाम आभूषणों से वंचित कर दिया जाता है। कई गीतों और दोहों में हम उसे ईश्वर से यही प्रार्थना करता पाते हैं कि वह उसकी हरी चूड़ियों को हमेशा सही सलामत रखे। उसे पूरा विश्वास रहता है कि जब तक वह हरी चूड़ियां पहने रहेगी (तब तक उसका पति जीवित है) उसे किसी से डरने की जरूरत नहीं है। "अगर रावण भी आ जाए, तो मैं निडर हो कर उसका मुकाबला कर लूंगी।" उसकी मां भी अपनी बेटी के लिए बराबर चिंतित रहती है और अपने दामाद की दीर्घायु की कामना करती रहती है। "भगवान मेरे जवाई को लंबा जीवन दे दे और बदले में मेरा जीवन ले ले," वह यही प्रार्थना करती है।

ज) अंतिम कामना

नारी अपने जीवन का सार किस तरह से निकालती है? हम उसे यही प्रार्थना और कामना करते पाते हैं कि अगले जन्म में वह औरत बनकर जन्म न ले। "यह बड़ा ही कठिन कष्ट भरा जीवन है, जो सिर्फ दूसरों की चाकरी के लिए ही बना है।"

11.2.3 कहावतें/सूक्तियां

प्रचलित लोकोक्तियों/सूक्तियों, जिन्हें मराठी में म्हाणीस और हिंदी में हम कहावतें कहते हैं, उनमें भारतीय नारी को चित्रित करने वाले उद्धरण खूब मिलते हैं। मराठी में ऐसी ही एक कहावत है: "एक म्यान में दो तलवारें नहीं रखी जा सकतीं।" इसका यही अर्थ है कि एक ही व्यक्ति की दो पत्नी शांति और प्रेम से कभी साथ नहीं रह सकतीं हैं। एक कहावत में बहू को ढाढ़स बंधाया जाता है "अभी तेरी सास का जमाना है, पर तेरा जमाना भी आएगा।" इस कहावत का तात्पर्य यह है कि घर में अभी सास को महत्व मिल रहा है, मगर वह जैसे-जैसे बूढ़ी होगी उसका स्थान बहू को ही मिलेगा और तब बूढ़ी सास का कोई महत्व नहीं रहेगा। एक अन्य कहावत में बताया गया है कि सास किस तरह से किसी भूल पर अपनी बेटी को डांट-डपटती है। मगर बहू जानती है कि यह ताना, यह कटाक्ष उसी को सुनाने के लिए किया गया है।

इन सभी कहावतों/सूक्तियों के बड़े व्यापक अर्थ और प्रयोग हैं और इन्हें प्रायः उचित अवसरों पर ही बोला जाता है। मगर मराठी में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कहावत प्रचलित है जो विशेषकर महिलाओं पर ही लागू होती है: "निरर्थक विवाहित जीवन से बेहतर वैधव्य है।"

11.2.4 श्रुति/मौखिक परंपरा में नारी की छवि

श्रुति परंपरा के नाना रूपों जैसे लोक कथाओं, लोक गीतों, कहावतों में भारतीय नारी की पारंपरिक छवि ही प्रस्तुत की जाती है। उसका अस्तित्व उसके पति और उसकी संतान में हैं। वह तमाम कष्टों को मूक सहती है। परिवार में वह अपनी निम्न स्थिति को कोई प्रश्न किए बिना स्वीकार कर लेती है। संतानहीनता और वैधव्य से वह सपने में भी डरती है क्योंकि वह जानती है कि इससे उसकी स्थिति और बदतर हो जाएगी। वह जीती है तो सिर्फ दूसरों के लिए और उसकी कोई स्वतंत्र पहचान नहीं होती। इसलिए कहीं न कहीं उसे यह गहरा एहसास भी होता है कि नारी का जीवन कष्टों, कठिनाइयों से भरा है और वह नारी के रूप में दुबारा जन्म लेना नहीं चाहती।

श्रुति परंपरा में नारी के निरूपण उसके चित्रण का अध्ययन यहां हमने महिलाओं की दृष्टिकोण से किया है। हो सकता है कि यह पुरुष के दृष्टिकोण से भिन्न हो।

11.3 जन-संचार माध्यम

संचार या संप्रेषण की प्रक्रिया को बताने का एक सुविधाजनक तरीका हमें निम्न प्रश्नों के उत्तर में मिल जाता है :

किसने क्या कहा? किस माध्यम से कहा? किसको कहां? किस प्रभाव से कहा? इस तरह इस प्रक्रिया में संप्रेषक, संदेश, माध्यम श्रोता, व्यक्ति या श्रोताओं का समूह जिनको संप्रेषण किया जा रहा है और अंत में संप्रेषण से उत्पन्न होने वाला वांछित प्रभाव ये सब शामिल हैं।

जन संप्रेषण एक ऐसा चैनल या माध्यम है जिसमें अनेक लोगों या श्रोताओं तक एक साथ पहुंचने के लिए एक मशीन (जिससे अनुलिपिकरण और प्रसारण किया जाता हो) और एक संप्रेषणकर्ता संगठन का प्रयोग किया जा रहा हो। जिन लोगों तक यह संप्रेषण किया गया है वे यह बात जानते हैं कि जो संदेश उन तक पहुंचाया गया है वही संदेश दूसरे लोगों या श्रोताओं को भी मिल रहा है। जन संप्रेषण इस प्रकार अंतर्वैयक्तिक संप्रेषण के बजाए एक अवैयक्तिक संप्रेषण है।

जन संप्रेषण या संचार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जन-संचार माध्यमों के जरिए श्रोताओं के एक बहुत बड़े समूह तक कोई भी बात या संदेश साथ-साथ पहुंचाया जा सकता है। यह प्रायः एक-तरफा प्रक्रिया है जिसमें सूचना-संभरण (यानी फीडबैक) की कोई गुंजाइश नहीं रहती है जन-संचार माध्यमों की पहुंच सिर्फ उन्हीं लोगों तक होती है जिनकी पहुंच में ये माध्यम हों। उदाहरण के लिए, कोई टेलीविजन या रेडियो कार्यक्रम किसी महिला तक तभी पहुंचेगा जब वह अपना टेलीविजन या रेडियो सेट चालू करेगी।

11.3.1 जन-संचार माध्यमों की भूमिका

यहां प्रश्न यह उठता है कि किसी भी समाज के मूल्यों के संदर्भ में जन-संचार माध्यमों की भूमिका क्या हो? एक मत यह कहता है कि जन-संचार माध्यमों को समाज के मूल्यों का संरक्षण, उनकी रक्षा करनी चाहिए। दूसरा मत कहता है कि इन माध्यमों को मौजूदा वास्तविकता को सही रूप से प्रतिबिंबित करना चाहिए। तीसरे मत के अनुसार, जो कि हमारी इस चर्चा के लिए अधिक प्रासंगिक है, संचार माध्यमों को यह समझना चाहिए कि वे समाज के मूल्यों को प्रभावित करते हैं, इसलिए इस प्रभाव को वे सौद्देश्य तथा और अधिक शक्तिशाली ढंग से प्रयोग कर सकते हैं। मगर वहीं यहां यह बात भी समझना उतना ही जरूरी है कि जन-संचार माध्यमों की प्रभाविता और विश्वासोत्पादकता को प्रमाणित करना आसान नहीं है तथा जन-संचार भी सामाजिक मूल्यों में बदलाव लाने वाले कारक का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। जन-संचार माध्यमों को समुचित सामग्री या विषयों के जरिए कुछ विशेष परिस्थितियों में श्रोताओं के विशेष समूह को लक्ष्य बनाकर उन्हें विश्वास में लाने के लिए प्रभावशाली तरीके से प्रयोग में लाया जाता रहा है। प्रचार और विज्ञापन में जिस तरह की सशक्त विक्रय-कला (सेल्समैनशिप) प्रदर्शित की जाती है वह इस तथ्य का एक आदर्श उदाहरण है कि मानव व्यवहार को एक विश्वासोत्पादक संप्रेषण के जरिए प्रभावित किया जा सकता है।

इकाई के इस भाग में हम विभिन्न प्रकार के संचार माध्यमों को अपनी चर्चा के लिए ले रहे हैं: रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, प्रकाशन और विज्ञापन।

11.3.2 छवि के रचयिता के रूप में जन-संचार माध्यम

जन-संचार या संप्रेषण का एक कार्य कुछ खास किस्म के व्यक्तियों से जुड़ी कुछ खास छवियों को दिखाना है। विगत वर्षों में सिनेमा के पर्दे यानी रजत पट पर इस तरह कि छवियां किस प्रकार बनाई और कायम रखी जाती हैं इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

"सदाबहार रोमांटिक हीरो" के रूप में देव आनंद, सहनशील भारतीय नारीत्व के आदर्श के रूप में मीना कुमारी "सहृदयी प्यारे आवारा" के रूप में राजकपूर, "विरह वियोग में लड़फते एक अजर, अमर प्रेमी के रूप में दिलीप कुमार, "वैम्प" या खलनायिका के रूप में बिन्दू और हमेशा "हावी रहने वाली सास" के रूप में ललिता पवार ये कुछ उदाहरण हैं। व्यवस्था विरोधी महानायक एक "एंग्रीयंग मैन" के रूप में अमिताभ बच्चन की छवि अमिट, अविस्मरणीय है। इन तमाम चिर-परिचित छवियों से अलग हटकर चलने पर श्रोता या दर्शकगण अक्सर उसे ठुकरा ही देते हैं।

11.3.3 जन-संचार माध्मयों में भारतीय नारी की छवि

कुछ अपवादों को छोड़कर देश के मानसपटल पर अंकित भारतीय नारी की आदर्श छवि के अनुसार ही जन-संचार माध्यमों में नारी की छवि ऐसी सहनशील पत्नियों, माताओं और बहुओं के रूप में की जाती है जिनकी अपने पति और बच्चों के कल्याण के अलावा किसी अन्य सरोकार में कोई रुचि नहीं है।

जन-संचार माध्यमों में भारतीय नारी की काम-वस्तु के रूप में एक और छवि चित्रित की जाती है। नारी की इस छवि का भरपूर लाभ अमूमन किसी संदेश को एक आर्कषक तरीके से पहुंचाने के स्पष्ट उद्देश्य के लिए उठाया जाता है। यहां यह कहना उचित होगा कि ऐसी छवियां ही महिलाओं के खिलाफ बरते जाने वाले भेदभावों को दूर करने में मुख्य बाधा हैं। महिलाओं के प्रति प्रचलित पारंपरिक कामवादी (सेक्सिट) दृष्टिकोण को बनाए रखने वाले मुख्य कारक भी यही छवियां हैं।

जन-संचार माध्यमों में महिलाओं को गौण महत्व वाले प्राणियों और मुख्यतः गृह-निर्वाहक ('होम मेकर') के रूप में भी चित्रित किया जाता है।

जरा सोचिए -1

महिलाओं की कुछ प्रचलित छवियों के बारे में बताइए और इन विशेष भूमिकाओं से समाज क्या अपेक्षा करता है?

समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं से विचलित होने से महिलाओं को कैसे रोका जाता है? क्या आप सोचते हैं कि संचार माध्यमों में चित्रित नारी की भूमिका के रूढ़िरूप को बदलना संभव है? अगर हां तो कैसे?

11.3.4 उदाहरण

क) गृह-निर्वाहक के रूप में नारी

अधिकांश विज्ञापनों का लक्ष्य समूह गृहणियां ही होती हैं। इसलिए विज्ञापनों में महिलाओं की जो मुख्य छवि दिखाई जाती है वह एक गृहणी या गृह-निर्वाहक (होममेकर) की छवि होती है। गैस स्टोव, प्रेशर कुकर, मिक्सर-ग्राइंडर, कपड़े धोने का डिटर्जेंट पाउडर/साबुन और समय तथा श्रम बचाने वाले अनेक गृह उपकरणों व उत्पादों के अनगिनत विज्ञापन नारी को हमेशा गृहणी और गृह-निर्वाहक की भूमिका में दिखाते हैं। यहां तक कि एक व्यावसायिक स्त्री (प्रोफेशनल) को भी एक डॉक्टर और एक होम मेकर (गृह-निर्वाहक) के रूप में

अपनी "दोहरी भूमिका" के बारे में बोलते दिखाया जाता है, जिसमें वह कहती है कि सही ढंग का कीटाणुनाशक इस्तेमाल करके अपने घर की सेहत की देखभाल करना उसका फर्ज है। (पति देव को अक्सर इस तरह के दायित्वों से मुक्त रखा जाता है।)

ऊपर से सीधे-सादे दिखाई देने वाले ऐसे विज्ञापन कभी-कभी बड़ा ही भद्दा रूप ले लेते हैं जब ये नारी को बुद्धिहीन, मूढ़ दिखाते हैं जिसे अपने पुरुषों से सही उत्पादों या सामान के प्रयोग करने की शिक्षा की जरूरत पड़ती है।

फिल्मों में अधिकांश महिला पात्रों का चित्रण गृहणियों के रूप में किया जाता है जिन्हें अपने घर से बाहर कोई रुचि नहीं रहती। एक गृह-निर्वाहक और एक मां की भूमिका में नारी को ऐसे चरित्र में दिखाया जाता है जो अपने पति और अपने परिवार के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। वह अपने कल्याण से पहले जब अपने परिवार के कल्याण को रखती है तो एक 'आर्दश भारतीय नारी' के रूप में उसे सराहा जाता है। एक गृह-निर्वाहक की भूमिका के साथ-साथ उसमें इस तरह के गुण भी दिखाए जाते हैं जैसे बलिदान की भावना, अत्यधिक भावुकता जो अक्सर हिस्टीरिया में तब्दील हो जाया करती है, नाजुक शारीरिक स्थिति जो उसके दैनिक कार्यों को उसके लिए बोझ बना देती है।

ख) गौण भूमिकाओं में नारी

ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें महिलाओं को पुरुषों से गौण भूमिकाओं को अदा करता दिखाया जाता है। पत्नी रसोई में चपाती सेंक रही होती है, तो पति देव डिनर कर रहे होते हैं–दोनों को साथ-साथ भोजन करते कभी नहीं दिखाया जाता।

पुरुष बॉस है और स्त्री उसकी सेक्रेटरी। एक विशेष प्रकार का इत्र (पर्फ्यूम) लगाते पुरुष की ओर एक सुंदर स्त्री को बड़े ही कामुक, मनमोहक, अंदाज में आकर्षित होते दिखाया जाता है। स्त्री को अपने सुंदर, मनमोहक बनाने के जतन करते हुए तो दिखाया जाता है मगर स्वयं के बारे में सुंदर महसूस करने के लिए नहीं बल्कि पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए। पार्टी में 'लेट' होने के लिए पति को अपनी पत्नी को डांटते दिखाया जाता है मगर जैसे ही वह सजधज कर निकलती है तो वह प्रसन्न हो जाता है।

व्यावसायिक फिल्में नारी को अक्सर गौण, महत्वहीन भूमिकाओं में चित्रित करती हैं। इनमें पुरुष का वर्चस्व तो नारी को उसका पिछलग्गू दिखाया जाता है। नारी की समस्याओं की विषय वस्तु पर बनने वाली फिल्मों की संख्या गिनी-चुनी है। जिन फिल्मों में हीरो या नायक साहसिक और शारीरिक करतब कर रहा होता है तो उसकी नायिका को इन साहसिक कार्यों में उसका साथ देते, उसकी सहायता करते तक नहीं दिखाया जाता। वह अक्सर सजावटी भूमिकाएं करती है, जो नाच और गानों के लिए जरूरी जोड़ तक सीमित रहती हैं।

ग) कामुक प्रतीक (सेक्स सिंबल) के रूप में नारी

नारी की छवि के इस पहलू की जब भी बात आती है तो विज्ञापन और फिल्में सबसे बड़े अपकारी, अपराधी नजर आते हैं। श्रोताओं या दर्शकों के ध्यान को आकर्षित करने और उसे बनाए रखने के लिए महिला मॉडलों की देह के प्रदर्शन के अनेक उदाहरण आपको इन विज्ञापनों में मिल जाएंगे। महिलाओं के अधोवस्त्रों (पेंटीज़, ब्रा इत्यादि) के विज्ञापन नारी की देह का लाभ उठाते हैं। कभी-कभी तो इनमें नारी का सिर्फ एक कामुक प्रतीक (सेक्स सिंबल) के रूप में चित्रण बिल्कुल ही अप्रासंगिक रहता है। मोटर साइकिल के विज्ञापन में लगभग निर्वस्त्र सी सुंदर युवती को बड़े ही कामुक, मनमोहक अंदाज में उस पर बैठा दिखाया जाता है। इसी प्रकार नहाने के साबुनों के विज्ञापनों में सुंदर नवयुवतियों को स्नान

करते दिखाया जाता है। शूटिंग के कपड़े के विज्ञापन में नवयौवना लड़की को बड़े ही प्रशंसा भाव से उस शूटिंग में सजे-धजे पुरुष के बाहुपाश में जाते दिखाया जाता है, जिसका यही अभिप्राय: रहता है कि विज्ञापन में दी गई सलाह से सुंदर युवतियों का हृदय जीता जा सकता है।

व्यावसायिक फिल्मों में महिलाओं को सेक्स सिंबल के रूप में प्रयोग करने के लिए कोई भी कोर-कसर नहीं छोड़ी जाती है। जिस तरह नाना प्रकार के देह-प्रदर्शक भड़कीले वस्त्र स्त्रियों को फिल्मों में पहनाए जाते हैं उसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि सेक्स कोण को ही ध्यान में रखकर फिल्में बनाई जाती हैं ताकि ज्यादा से ज्यादा दर्शक उन्हें देखने आएं। अधिकांश फिल्मों में कम से कम एक सीन ऐसा जरूर रखा जाता है, जिसमें नायिका या कोई अन्य महत्वपूर्ण महिला पात्र बारिस में भीगी दिखाई जाती है और उससे भीगी देह से चिपके वस्त्रों में उत्तेजक नृत्य कराया जाता है ताकि उसे देखने वाले दर्शक मंत्र-मुग्ध हो जाएं। पहले की फिल्मों में देह-प्रदर्शन और भड़कीले वस्त्र तथा महिला पात्रों के शारीरिक सौंदर्य का शोषण प्राय: पारंपरिक "वैम्प" या खलनायिका तक ही सीमित रहता था। आधुनिक फिल्मों में इस तरह के विभाजन की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है, सो अधिकांश महिलाओं को अपनी देह की सुंदरता का प्रदर्शन करना जरूरी हो गया है क्योंकि प्रदर्शन को संबंधित पात्र के समुचित चरित्र-चित्रण और फिल्म की कहानी के लिए एक आवश्यक तत्व बताया जाता है। इस प्रकार अधिकांश व्यावसायिक फिल्मों में महिला चरित्रों का प्रयोग सजावट के लिए किया जाता है।

आखिर आप बेच क्या रहे हैं?

सौजन्य : समाचार पत्र टाइम्स आफ इंडिया

भारतीय नारी का चित्रण कभी-कभी कुछ फिल्मों में अलग मिलता है। नारी को इसमें अच्छे जीविकोपार्जक (प्रोफेशनल) के रूप में दिखाया जाता है जो समाज की बुराइयों से लड़ती है, जो अपने जीवन की कठिनाइयों का सामना दृढ़ता और साहस के साथ करती है और सभी विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए अपनी स्थिति को बदल डालती है। कुछ फिल्मों ने नारी की अपनी पहचान की तलाश को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित भी किया है। इन फिल्मों की संख्या बहुत कम है मगर इनसे निराशा के घोर-घनेरे बादलों के बीच आशा की किरण दिखाई देती है। कभी-कभी फिल्मों में लिंग-भूमिकाओं को बदल दिया जाता है। मगर ऐसा अक्सर हास्य के पुट के लिए किया जाता है और इस लिए इन्हें गंभीरता से नहीं लिया जाता।

11.3.5 बढ़ती चिंता

जन-संचार माध्यमों में नारी की छवि को जिस तरह से चित्रित किया जा रहा है उसको लेकर कुछ वर्षों से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तर पर गहरी चिंता व्यक्त की जा रही है। इन छवियों को महिलाओं के प्रति बरते जाने वाले तमाम तरह के भेदभावों को समाप्त करने में सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखा जा रहा है। इसे नारी के प्रति समाज में व्याप्त पारंपरिक सोचों को बनाए रखने वाले एक मुख्य कारक के रूप में भी माना जा रहा है।

अपनी प्रगति की जाँच करें 1

आजकल की कोई भी लोकप्रिय फिल्म देखिए। विभिन्न छोटे और बड़े महिला पात्रों का विश्लेषण करें। इसके बारे में महिलाओं के चित्रण के बारे में बताइए।

11.4 पाठ्य-पुस्तकें

बचपन व्यक्ति के जीवन के विकास उसके निर्माण का काल है। इसी काल में बच्चे में उच्च ज्ञान के लिए एक आधार विकसित होता है। इसके साथ-साथ उसमें विभिन्न सामाजिक मुद्दों, स्वयं और अन्य लोगों के प्रति दृष्टिकोण विकसित होता है। इस प्रक्रिया में स्कूल और अध्यापक का प्रभाव बड़ी महती भूमिका अदा करता है। विभिन्न माध्यमों के जरिए भारतीय नारी के चित्रण का अध्ययन करते समय बच्चे को पढ़ाई जाने वाली पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन, उनका विश्लेषण करना बेहद महत्वपूर्ण है। पाठ्य-पुस्तकों में विद्यमान हर बात को बच्चा वेदवाणी या अटल सत्य की तरह बड़ी गंभीरता से लेता है। सो पाठ्य-पुस्तकों में नारी की जो छवियां दिखाई जाती है वे निश्चय ही महिलाओं के प्रति बच्चे के नजरिए को प्रभावित करती है।

11.4.1 पाठ्य-पुस्तकों में पूर्वाग्रह

स्कूली पाठ्य-पुस्तकों में लड़कों और लड़कियों का चित्रण प्राय: एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। इसमें लड़कों को तो बहिर्गामी, दु:साहसी, वीर और मददगार चित्रित किया जाता है मगर लड़कियों को पराश्रित, आज्ञाकारी, शांत और दब्बू, दिखाया जाता है। इनमें गृह-निर्वाहकों या घर की देख-भाल करने वाले व्यक्ति के रूप में नारी की भूमिका को बार-बार दोहराया जाता है और मां की भूमिका में उसकी आत्मोत्सर्ग की भावना, सब कुछ बलिदान कर देने की भावना का गुणगान किया जाता है। इनमें घर में कार्य के विभाजन को भी अच्छी तरह से चित्रित किया जाता है, जिसमें पुरुष को तो घर के बाहर के कार्य का उत्तरदायित्व संभालते दिखाया जाता है मगर महिलाओं को घरेलू काम-काजों के दायरे तक सीमित दिखाया जाता है। कुछ वर्षों से पाठ्य-पुस्तकों में परिवर्तन के कुछ संकेत मिल रहे हैं और उनमें नारी के चित्रण में मौजूदा पूर्वाग्रहों को कम करने का प्रयास भी किया जा रहा है।

11.4.2 उदाहरण

पाठ्य-पुस्तकों में व्याप्त उपरोक्त पूर्वाग्रहों के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऐसा ही एक विषय परिवार में कार्य के पारंपरिक विभाजन से संबद्ध है। पाठ्य-पुस्तकों में यह कोई असाधारण बात नहीं है कि आप लड़की को घर का फर्श साफ करते, झाड़ू लगाते देखते हैं। मगर वहीं उसी चित्र में लड़के को जो कि उससे छोटा या बड़ा हो सकता है, उसे पुस्तक

पढ़ते दिखाया जाता है। सामाजिक-लिंग (जेंडर) भूमिकाओं का इस तरह का रूढ़िकरण भी पाठ्य-पुस्तकों में स्पष्ट नजर आ जाता है जब पिता को घर से बाहर "काम पर" जाते हुए और मां को घर में रह कर परिवार की जरूरतों को पूरा करते दिखाया जाता है।

पाठ्य-पुस्तकों में जब कभी साहसिक कथाएं शामिल की जाती हैं तो उनके मुख्य पात्र पुरुष या लड़के होते हैं, महिलाओं और लड़कियों के लिए इन साहसिक कथाओं में कोई स्थान नहीं होता। बच्चों द्वारा खेले जाने वाले खेलों और जिन खेल-कूदों (स्पोर्ट्स) में वे हिस्सा लेते हैं उनमें भी लड़कियों को रस्सी कूदते दिखाया जाता है, मगर वहीं लड़के को साइकिल की सवारी करते और जिम्नास्टिक जैसे शारीरिक शक्ति वाले व्यायाम तथा खेल-कूदों में भाग लेते दिखाया जाता है। सामान्य विज्ञान की तीसरी कक्षा की एक पाठ्य-पुस्तक में विभिन्न इन्द्रियों पर दिए गए पाठ में एक व्यायाम बताया गया है: अगर आपकी आंखों में पट्टी बांध दी जाए तो आप कौन-कौन से क्रिया-कलापों के बारे में जान जाएंगे? जैसे आपकी मां आपका नाम पुकारती है, आपके मुंह में चीनी डाली जाता है, आपकी बहन सूई में धागा पिरो रही है। बच्चे से पूछे जाने वाले इस तरह के प्रश्न में इस आखिरी कथन से यही अर्थ निकाला जा सकता है कि सिर्फ लड़कियां ही सूई में धागा पिरोती हैं और सिलाई करती हैं। इसी प्रकार इसी पाठ्य-पुस्तक में दांत की साफ-सफाई और अच्छी आदतों के बारे में बताते हुए इसमें दिए गए चित्रों में सिर्फ लड़कों को ही दिखाया गया है। सभी चित्रों में महिलाओं का चित्रण पुरुषों के बराबर नहीं मिलता है।

अब आप स्वयं

आपने स्वयं या पढ़ाए जाने वाली कोई एक पाठ्य-पुस्तक लीजिए। इसमें महिलाओं और लड़कियों का किस प्रकार का चित्रण किया गया है, इसके बारे में लिखिए। क्या आपको इसमें कोई अपवाद दिखाई देता है? यदि हां, उसके बारे में लिखिए।

इस इकाई को समेटने से पहले आइए नीचे दिए गए प्रश्नों पर दृष्टि डालें।

जरा सोचिए-2

आपकी दृष्टि में महिलाओं को एक खास छवि में चित्रित करने के क्या मुख्य कारण हैं? क्या आप सोचते हैं कि समाज जिस छवि का संचार करता है महिलाएं उनका आंतरिकीकरण कर लेती हैं? उदाहरण देकर बताइए।

जन-संचार माध्यमों द्वारा रची गई मध्यम वर्गीय भारतीय नारी की मौजूदा छवि क्या है? कुछ पंक्तियों में लिखिए।

11.5 सारांश

इस इकाई में श्रुति परंपरा, जन-संचार माध्यमों और पाठ्य-पुस्तकों में भारतीय नारी के चित्रण के बारे में चर्चा की गई। श्रुति परंपरा में नारी का चित्रण उसकी पारंपरिक भूमिकाओं में किया जाता रहा है जैसे बेटी, बहन, पत्नी, बहू और मां। इस भाग में सभी उदाहरण महाराष्ट्र से लिए गए थे जिनकी रचना मुख्यत: स्वयं महिलाओं ने ही की है जो उनके जीवन की वास्तविकताओं का प्रतिबिंब हैं। जन संचार माध्यमों में नारी का चित्रण प्राय: गृह-निर्वाहक या कामुक वस्तुओं के रूप में किया जाता है। महिलाओं को अक्सर गौण,

महत्वहीन भूमिकाओं में दिखाया जाता है। हालांकि इस सामान्य प्रचलन के कुछ अपवाद भी दिखाई पड़ते हैं। जन-संचार माध्यमों में नारी का चित्रण जिस तरह किया जा रहा है उसको लेकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गहरी चिंता प्रकट की जाने लगी है। जन-संचार माध्यमों के प्रभाव को समाज में नारी के प्रति पारंपरिक दृष्टिकोण के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण कारक माना जा रहा है। पाठ्य-पुस्तकों में लड़कियों और लड़कों, पुरुषों और स्त्रियों के एकदम भिन्न चित्रण के लिए (सामाजिक-लिंग) पूर्वाग्रहों को जिम्मेदार माना जा सकता है। इनमें लड़कियों और स्त्रियों को प्रायः पारंपरिक छवियों में ही चित्रित किया जाता है।

11.6 शब्दावली

श्रुति परंपरा : अलिखित लोक कथाएं/लोकगीत, कहावतें/लोकोक्तियां जिनके जरिए किसी भी देश या अंचल के जन-जीवन को संचालित करने वाले रीति-रिवाज और मौखिक विश्वास एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाए जाते हैं।

जन-संचार माध्यम : संप्रेषण संचार के चैनल या माध्यम जो (अनुलिपिकरण और प्रसारण के लिए) मशीनों और संचार संगठनों का प्रयोग कर एक साथ श्रोताओं के बड़े समूह तक पहुंच सकते हैं मगर जिसमें सूचना संभरण (यानी फीडबैक) की कोई गुंजाइश नहीं रहती। उदाहरणार्थ फिल्म, रेडियो, टेलीविजन, प्रकाशित शब्द (समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें) इत्यादि।

पारंपरिक भूमिका : सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार लड़कों और लड़कियों फिर पुरुषों और स्त्रियों को सौंपी जानी वाली भूमिकाएं। ये सभी भूमिकांए जैविकी द्वारा
निर्धारित नहीं होतीं। बल्कि ये अक्सर समाज द्वारा निर्मित, रचित होती हैं।

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आई एस आई एस 1984 *वीमेन एंड मीडिया : ऐनालीसिस, आल्टरनेटिव एवं ऐक्शन*, कली फौर वीमेन, नई दिल्ली।

शाह, एम.बी.एम. बावीसकर और ई.ए.शमास्वामी (संपा) 1996 सोशल संटवचर एंड चेंज : वूमेन इन इंडियन सोसाइटी, नई दिल्ली : ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

संदर्भ

बेते , आंद्रे (1974) सिक्स ऐस्सेज इन क्मपरेटिव सोशालिजी, दिल्ली : ओ.यू.पी।

दिवेसिया, एल और दिवेसिया, V. (1991) गर्ल चाइल्ड इन इंडिया, नई दिल्ली, आशीश पब्लिशिंग हाउस।

चनना, करुणा (संपा) (1985) सोशेलाइजेशन, ऐजूकेशन एंड वूमेन, नई दिल्ली : ओरिएंन्ट लोंगमेल।

गॉफ, ई. कैथलिन (1980) "मोडस आफ प्रोडक्शन इन साउदर्न इंडिया" ई.पी.डब्लू में, भाग XV नं० 5, 6 और 7.

सी.एस.डब्लू. आई (1975) टुवार्डर्स इक्वेलिटी : रिपोर्ट आफ दि कमेटी आन दी स्टैटस आफ वूमेन इन इंडिया, समाज कल्याण विभाग और शिक्षा समाज कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली।

कपाड़िया, के एम. (1955) मैरेज एंड फेमिली इन इंडिया : कलकत्ता : ओ.यू.पी.

कुमार, के (1986) "ग्रीडिंग अप मेल" सेमिनार, 318

शाह, ए.एम. और बी.एस. बानीसकर और ई.ए.रामास्वामी (संपा) (1996) सोशल स्टक्चर एंड चेंज : वूमेन इन इंडियन सोसाइटी, नई दिल्ली : ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

आई.एस.आई.एस (1984) वूमेन एंड मिडिया : एनालिसिस, आलटरनेटिव्स एंड ऐक्शन नई दिल्ली : काली फॉर वूमेन।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

CWED-02

भारतीय समाज में महिलाएं : सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ

खंड

4

धर्म, व्यक्तिगत कानून और महिलाओं के अधिकार

खंड परिचय : धर्म, व्यक्तिगत कानून और महिलाओं के अधिकार 3

इकाई 12
धर्म और प्रतिरोध 5

इकाई 13
रूढ़िवादिता और महिलाओं के अधिकार 14

इकाई 14
परम्परागत कानून और इसका विरोध : कानून की अवमानना 23

इकाई 15
धर्म और व्यक्तिगत कानून :
एकरूपता बनाम अनेकरूपता : शाहबानो और मेरी रॉय के मुकदमे 35

संदर्भ 51

खंड परिचय : धर्म, व्यक्तिगत कानून और महिलाओं के अधिकार

धार्मिक संहिताओं, विचारधाराओं और सिद्धांतों ने हमेशा से ही मानवता पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ा है। अपने पिछले खंड में हमने विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं तथा उनके महिलाओं पर प्रभाव की चर्चा की थी। यह खंड हम यह कह सकते हैं कि पिछले खंड का ही विस्तार है क्योंकि यह मुख्यत: धर्म की भूमिका की चर्चा करता है जो कि भारतीय समाज की एक बहुत ही प्रभावशाली संस्था है।

इकाई 12 में यह जानने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न धर्मों के सामाजिक निहितार्थ में नारी को किस प्रकार से देखा जाता है। इसके अलावा एक आम धार्मिक दृष्टिकोण को जानने की भी कोशिश की गई है, तथा किस प्रकार महिलाएं उस मौजूदा धार्मिक नियंत्रण के ढांचे के विरुद्ध संघर्ष कर रही है जो उन्हें धार्मिक मूल्यों और परंपराओं को बचाने के नाम पर साधन के रूप में इस्तेमाल करता है। इकाई "धार्मिक रूढ़िवाद और महिलाओं के अधिकार" में आपको धार्मिक रूढ़िवाद की जटित व्यवस्था से अवगत कराने की कोशिश की गई है और किस प्रकार यह महिलाओं को प्रभावित करता है। दुर्भाग्यपूर्वक, पिछले कुछ सालों से विश्व भर में कट्टरवादिता बढ़ती ही जा रही है और इस सारी प्रक्रिया में महिलाएं सबसे ज्यादा प्रभावित होती है। मौजूदा हालात पर नजर डालने के लिए हमने कई युक्त उदाहरणों का भी जिक्र किया है। इकाई 14 में जैसा कि इकाई के शीर्षक से ही जाहिर है, परंपरागत कानूनी और वैधानिक कानूनों के परस्पर विरोधाभास, जो सती मामले से स्पष्ट हो जाता है, की चर्चा की गई है। रूप-कंवर सती मामले पर एक समीक्षात्मक नजर डाली गई है तथा उन सभी आधारों का जिक्र करेंगे जो इस अमानवतापूर्ण व्यवहार का समर्थन करते हैं।

इस खंड की आखिरी इकाई में हमने सभी व्यक्तिगत कानूनों की समीक्षात्मक पड़लोचना की गई तथा महिलाओं की प्रस्थिति के साथ इन कानूनों की सार्थकता की भी चर्चा की है। शाह बानो और मेरी राय जैसे मामले उठाए गए हैं ताकि महिलाओं के हितों से संबंधित पक्षों की बड़े पैमाने पर चर्चा की जा सके।

हम उम्मीद करते हैं कि इस पाठ्यक्रम के सभी खंडों के अध्ययन के बाद, आप कुछ हद तक, समाज में महिलाओं की स्थिति के बारे में समीक्षात्मक समझ का विकास कर पाएंगे और समाज के सभी पहलुओं पर एक अलग और बेहतर नजर डाल सकेंगे।

इकाई 12 धर्म और प्रतिरोध

रूपरेखा

12.0 लक्ष्य और उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 विभिन्न धर्मों की दृष्टि में समाज में नारी का स्थान
12.2.1 हिन्दुत्व
12.2.2 इस्लाम
12.2.3 ईसाई धर्म
12.3 भारत में धार्मिक और वैयक्तिक कानूनों की राजनीति
12.3.1 महिलाओं के लिए वैयक्तिक कानूनों के निहितार्थ
12.3.2 भारत में वैयक्तिक कानूनों के तहत तलाक के आधार
12.3.3 समान नागरिक संहिता
12.4 नियंत्रण के ढांचे : नारी पराधीनता और प्रतिरोध
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि विभिन्न धर्मों के सामाजिक निहितार्थ में नारी को किस तरह से देखा जाता है। ऐसा करते हुए हम महिलाओं के बारे में एक आम धार्मिक दृष्टिकोण को जानने का प्रयास भी करेंगे। इसके अलावा हम उन तौर-तरीकों, युक्तियों के बारे में भी जानने की कोशिश करेंगे जिनके जरिए महिलाएं धार्मिक नियंत्रण के उन तमाम ढांचों को तोड़ने के लिए संघर्ष करती हैं जिन्होंने उन्हें पराधीनता में जकड़ रखा है। इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप :

- धार्मिक अधिकारिता के ढांचों का समालोचनात्मक विश्लेषण कर पाएंगे;
- धर्म के ढांचों में महिलाओं की स्थिति की जानकारी जान पाएंगे; और
- नारी प्रतिरोध के केन्द्रों को जानेंगे।

12.1 प्रस्तावना

बंग्लादेश की उपन्यासकार तस्लीमा नसरीन के बारे में आपने सुना ही होगा, जिसे विवादास्पद उपन्यास *लज्जा* के कारण दुनिया में ख्याति मिली। इस उपन्यास में तस्लीमा ने महिलाओं को दास बनाने के लिए इस्लाम की आलोचना की थी। इस आलोचना के लिए बांग्लादेश के कट्टरपंथियों ने तस्लीमा के नाम मौत का फतवा जारी कर दिया सो उसे अपना देश छोड़ना पड़ा। इसी तरह कई वर्ष पूर्व पंडिता रमाबाई ने सार्वजनिक रूप से हिन्दू पितृसत्ता को त्याग कर ईसाई धर्म को स्वीकार किया तो उस पर बड़ा विवाद हुआ था। कई वर्ष बाद सती के गैरकानूनी बनाए जाने के बावजूद भी रूप कुंवर को अपने मृत पति की चिता में सती बनना पड़ा। उसके इस कार्य को कुछ महिलाओं और पुरुषों ने उचित ठहराते हुए कहा कि उसने हिन्दू धर्म और राजपूत परंपरा का पालन किया है। महिलाओं को कुछ

खास कपड़े पहनना भी वर्जित है क्योंकि धार्मिक ग्रंथ ऐसा ही कहते हैं। धर्म एक शक्तिशाली माध्यम है और एक विधि, एक शैली है जो बताती है कि नारी जाति के लिए क्या उचित है क्या अनुचित।

विभिन्न धार्मिक परंपराओं में महिलाओं का क्या स्थान है, यही हम इस इकाई में जानेंगे। यह जानना जरूरी है कि नारी जाति के बारे में इस तरह का धार्मिक दर्शन विधान या कानूनों और हमारी समूची न्याय प्रणाली को किस तरह से प्रभावित करता है। आगे इकाई में हम विभिन्न धार्मिक समुदायों के वैयक्तिक कानूनों (पर्सनल लॉ) का विश्लेषण करेंगे। धर्म और समाज मे नारी जाति के दर्जे का अध्ययन करते हुए हम धर्म के नियंत्रण और पराधीनता के ढांचों को अनिवार्यत: जानना चाहेंगे। इकाई के अगले भाग में हमने इस पहलू पर चर्चा की है।

इसके बाद हम धर्म के दमनात्मक ढांचों के प्रतिकार में महिलाओं द्वारा किए गए प्रतिरोध के कुछ केन्द्रों पर भी नजर डालेंगे।

12.2 विभिन्न धर्मों की दृष्टि में समाज में नारी का स्थान

धर्म सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। किसी भी धार्मिक परंपरा के अनुयायियों के जीवन को बनाने, उसे चलाने में प्रमुख भूमिका धर्म ही अदा करता है। लोगों के जीवन में धर्म का यह प्रभाव बौद्धिक और दैनिक व्यवहार दोनों स्तर पर दिखाई देता है। परंतु धर्म चूंकि अनेक प्रमुख सामाजिक संस्थाओं में एक है, लोगों के जीवन पर इसका व्यावहारिक प्रभाव अन्य सामाजिक संस्थाओं या शक्तियों के साथ एक द्वंद्वात्मक और उतरते-चढ़ते संबंधों से तय होता है।

चूंकि धर्म एक सामाजिक नियामक का काम करता है, इसलिए निश्चय ही यह समाज में नारी के दर्जे को परिभाषित करता है और समाज के भीतर और बाहर के लोगों के लाभ के लिए नारीत्व की स्वीकार्य छवियों के सृजन को प्रभावित करता है। भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक, बहु-धार्मिक देश में इसका सीधा अर्थ यही है कि इसमें नारी की अनके स्वीकृत छवियां हैं और दैनिक जीवन को संचालित करने वाले नियम भी अनेक हैं। इकाई के आने वाले भाग में हम नारी जीवन के धार्मिक नियमन के पक्ष पर चर्चा करेंगे। इसके बाद के भाग में हम यह चर्चा करेंगे कि महिलाओं के दैनिक अस्तित्व को धार्मिक नियम-कानून किस तरह से संचालित करते हैं और इससे किस तरह समस्याएं जन्म लेती हैं।

धार्मिक परंपराओं का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रमुख धर्मों में पुरुष और स्त्री के लिए भिन्न किस्म की आदर्शमूलक आचार संहिताएं निर्दिष्ट हैं यूं तो कुछ सुधारवादी धर्म महिलाओं को प्रभावित करने वाली सामाजिक विसंगतियों को दूर करने पर जोर देते हैं, परंतु उनमें भी हमें समान अवसर की अवधारणा अमूमन लापता नजर आती है। फिर प्रमुख धर्म अधिकांशत: भीतर से भिन्न-भिन्न पंथों या सम्प्रदायों में बंटे है, महिलाओं के सरोकारों की अपनी परिभाषा जिनमें अलग-अलग है।

12.2.1 हिन्दुत्व

भारत के कई धर्मों में हिंदुत्व के कई चेहरे और पहलू तो हैं ही उसके व्यवहार में भी काफी भिन्नताएं हैं। बहरहाल नारी की प्रभावी छवि एक आज्ञाकारी, पराधीन व्यक्ति की है और प्राय: अवमाननाजनक दिखाई देती है। जन-मानस में हिन्दू नारी के आदर्श के रूप में पौराणिक कथाओं की सीता, द्रौपदी या अहिल्या जैसी एक पवित्र, स्वामिभक्त और सहनशील

पत्नी की छवि अंकित है। कई विद्वानों ने हालांकि यह बताने का प्रयास किया है कि प्राचीन भारत में गार्गी, मैत्रेयी और अरुंधती जैसी हिंदू नारियों ने उच्च विद्या प्राप्त की थी मगर वहीं लोकाचार में नारी की छवि शूद्रों और ढोरों के साथ उसके मनुवादी वर्गीकरण में ही अधिक ढूंढी जाती है। दैनिक जीवन में इस छवि का उदाहरण हमें सवर्ण हिंदू समाज में विधवाओं की दोयम दर्जे की स्थिति में मिल जाता है जिसने उन्हें सामाजिक जीवन से पूर्णत: बहिष्कृत रखा था। जहां एक ओर इन पराधीन भूमिका रूढ़ियों से हमें सवर्ण जातियों की स्त्रियां अधिक प्रभावित दिखाई देती हैं तो वहीं दूसरी ओर हमें नजर आता है कि छोटी जाति की महिलाओं को लोकाचार में अपनी भूमिकाओं को परिभाषित करने की स्वायत्तता या छूट हासिल थी। मगर सार्वजनिक जीवन, उत्पादन के संसाधनों और सामाजिक-स्थान उन्हें अपेक्षतया अधिक सुलभ होने, उन तक उनकी पहुंच अधिक होने के बावजूद भी इन स्त्रियों को सामाजिक भेदभावों और धार्मिक व्यवस्था के कारण बहिष्कार झेलना पड़ा है। हिन्दू धर्म के भीतर या उसके करीबी सामाजिक-सुधार आंदोलनों जैसे ब्रह्मों और आर्य समाज ने महिलाओं पर थोपी गई सती प्रथा जैसी प्रमुख सामाजिक विसंगतियों या बुराइयों को समूल उखाड़ फेंकने के साथ-साथ उन्हें शिक्षा और उन्नति के अन्य सामाजिक अवसर अधिकाधिक सुलभ कराने का प्रयास भी किया था। मगर इसके साथ-साथ ये आंदोलन स्वयं को नारी की उच्च आध्यात्मिक या दैवीय मानव की छवि को स्वयं से अलग नहीं कर पाए। नारी की यह छवि अपने साथ यह निहितार्थ लेकर चली कि वह परंपरा की वाहक है, जिसका स्थान किसी उच्च लोक में है। यह आध्यात्मिक छवि पश्चिम के पुरुषोन्मुखी भौतिकवादी जगत् के बिल्कुल विपरीत थी, जिससे भारतीय पुरुषों को परिचित कराया गया था। सो उपनिवेशकालीन भारत के संवाद में राष्ट्र, सम्प्रदाय और धर्म की रक्षा महिलाओं की भूमिका मानी जाती थी। इसीलिए तमाम नेक इरादों के बावजूद राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं से जुड़े मुद्दों को लेकर हमें एक निश्चित अस्पष्टता, या इसे घालमेल कह लें, नज़र आती है।

12.2.2 इस्लाम

भारत के दूसरे धर्मों में भी महिलाओं के लिए एक पृथक और पराधीन स्थान नियत है। यूं तो इस्लाम स्त्री और पुरुष को खुदा के साथ उनके संबंध में, उसकी इबादत में उन्हें बराबर का दर्जा देने की घोषणा करता है और उन्हें कानूनी सुरक्षा (जैसे उत्तराधिकार का हक) की गारंटी देता है मगर साथ में वह नारी की सामाजिक भूमिका पर कई तरह से रोक भी लगाता है। नारी शिक्षा व्यवहार में बुनियादी साक्षरता और कई समुदायों और विशेषकर निर्धन मुसलमानों में सिर्फ धार्मिक ग्रंथ (कुरान इत्यादि) का पाठ करने की क्षमता तक ही सीमित है। मुस्लिम महिलाएं मस्जिद में जाकर नमाज अदा नहीं कर सकती हैं क्योंकि उनकी उपस्थिति को पुरुष नमाजियों की इबादत में खलल या विघ्नकारी माना जाता है। मुस्लिम पर्सनल लॉ या वैयक्तिक कानून के अनुसार कोई भी मुस्लमान व्यक्ति चार पत्नियां कानूनन रख सकता है। यह प्रथा जाहिर है मुस्लिम महिलाओं को अति-असुरक्षित स्थिति में ले आती है। वेशभूषा संबंधी निषेध, शालीनता और पवित्रता संबंधी सिद्धांत भी धर्म द्वारा ही परिभाषित हैं।

12.2.3 ईसाई धर्म

इसी तरह भारत में ईसाई धर्म भी आध्यात्मिक मामलों में समानता की घोषणा तो करता है मगर वहीं इसमें चर्च के संगठन में महिलाओं को समान स्थान या दर्जा देने की परंपरा कभी नहीं रही है। भारतीय ईसाइयों के उत्तराधिकार संबंधी कानूनों में महिलाओं को समानता का दर्जा हासिल नहीं है। वैसे भारतीय ईसाई महिलाओं को शिक्षा का लाभ काफी

मिला है और उन्हें कम महत्व वाले क्षेत्रों में रोजगार भी मिल रहा है जैसे शिक्षण, नर्सिंग और सेक्रेटरी की नौकरी। मगर पुरुष के सामने नारी की निम्न हैसियत से जुड़ी अवधारणाएं जस-की तस बनी हुई हैं।

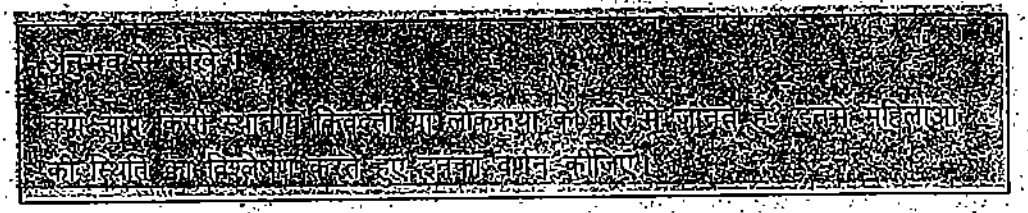

अनुभव-संसार।

क्या आपने किसी धर्मग्रंथ, किंवदंती या लोककथा के बारे में जाना है, जिसमें महिलाओं की स्थिति का निरूपण करते हुए इसका वर्णन कीजिए।

धर्म को हमेशा से नारी की जननात्मक भूमिकाओं को साधने में कठिनाई रही है, पुरुषों को जो भूमिकाएं तनिक भी नहीं सुहाती। अधिकांश धार्मिक परंपराओं में नारी की लैंगिकता या उसकी विषयासक्ति को चिंता की दृष्टि से देखा जाता है और नारी पर धार्मिक नियंत्रण संबंधी निर्देशों का सरोकार मुख्यतः नारी की संभावित कामुक मोहकता पर बंदिश लगाना है। ईसाई धर्म में आदम को फुसला कर देवलोक से उसका पतन करने वाली कामायानी, मनमोहिनी हव्वा को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। उधर हिंदू ग्रंथ रामायण में सूर्पणखा सदाचारी लक्ष्मण को मोहने का प्रयत्न करती है तो वहीं मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपनी पत्नी सीता की पवित्रता पर संदेह करते हैं। कई समुदायों में यौवनारंभ होते ही स्त्रियों पर तमाम तरह की सामाजिक पाबंदियां शुरू हो जाती हैं। इसी तरह रजोधर्म को अपवित्रता की दशा समझा जाता है। इसलिए रजोधर्म की अवस्था में और गर्भवती स्त्रियों को कई समुदायों में धार्मिक अनुष्ठानों में हिस्सा नहीं लेने दिया जाता है।

इकाई के अगले भाग में जाने से पहले आइए नीचे दिए गए प्रश्नों पर दृष्टि डालें।

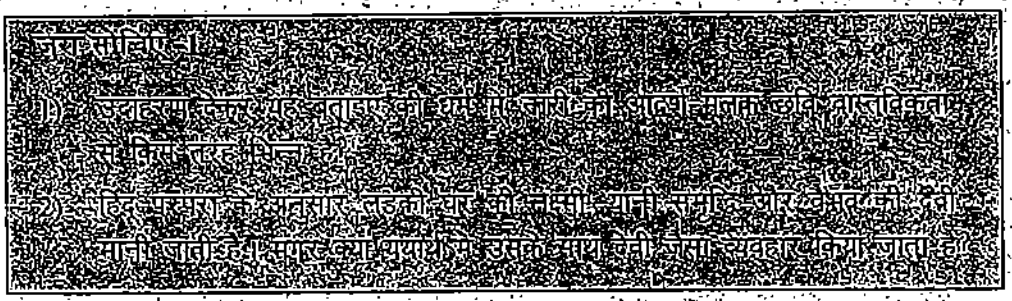

जरा सोचिए।

1) उदाहरण देकर यह बताइए कि धर्म में नारी के आदर्शात्मक और वास्तविकता से किस तरह भिन्न है।

2) हिंदू परंपरा के अनुसार लड़की घर की लक्ष्मी, यानी समृद्धि और वैभव की देवी मानी जाती है। स्पष्ट कीजिए कि इसके साथ ही जैसा व्यवहार किया जाता है

12.3 भारत में धार्मिक और वैयक्तिक कानूनों की राजनीति

भारतीय महिलाओं की स्थिति पर गठित समिति ने एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट 1980 में प्रकाशित की, जिसका शीर्षक *समानता की ओर* (टुवार्ड्स इक्वैलिटी) था। यह पहला ऐसा प्रमुख दस्तावेज था, जिसने यह बताया था कि संविधान में महिलाओं को दी गई समानता की तमाम धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गारंटियों के बावजूद भारत में नारी का निजी जीवन उनके सम्प्रदायों के धार्मिक नीति-नियमों और कानूनों से संचालित होते हैं।

रिपोर्ट का बिल्कुल सही कहना है कि "जन्म-संबंधी रीतियां, पारिवारिक संगठन के प्ररूप और विवाह संस्था की प्रकृति ये सब सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के वे मुख्य घटक हैं जिनमें नारी जन्म लेती है, उसका पालन-पोषण होता है और वह अपना जीवन बिताती है।" मगर सबसे जटिल समस्या यह है कि इनमें से कई धार्मिक कानून ऐसे काल और परिवेश में बनाए गए थे जिन्हें हम बहुत पीछे छोड़ आए हैं। यही नहीं अनेक बार इन कानूनों का आधुनिक नारी की धर्म निरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक आकांक्षाओं से टकराव होता है। रिपोर्ट आगे कहती है: "सामाजिक गठन की विशेषताएं अर्थ-व्यवस्था से कुछ इस तरह जुड़ी हैं कि यूं तो इनकी जड़ें अर्थ-व्यवस्था में दिखाई देती हैं मगर वहीं अर्थ-व्यवस्था में बड़े

पैमाने पर किए गए बदलाव भी इनमें समानांतर बदलाव नहीं ला पाते हैं। इन दोनों के बीच की यह गहरी खाई गंभरी चिंता का विषय है। यही संस्थाएं भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को तय करती हैं।"

12.3.1 महिलाओं के लिए वैयक्तिक कानूनों के निहितार्थ

महिलाओं की स्थिति को वैयक्तिक कानून निर्णायक ढंग से प्रभावित करते हैं। जैसे:

- ये घर और कार्य-स्थल पर नारी की स्थिति के साथ-साथ वृहत्तर समाज में उसकी भूमिका और स्थिति को प्रभावित करते हैं।
- वे विवाह के रूप में उसे प्रभावित करते हैं
- वे पारिवारिक संबंधों के रूप में उसे प्रभावित करते हैं।
- संपत्ति अधिकार, उत्तराधिकार, दाय प्राप्ति, वंश के रूप में नारी को प्रभावित करते हैं।
- घर के भीतर नारी की स्थिति, उसकी हैसियत और उसके कार्यों, दायित्वों के रूप में उसे प्रभावित करते हैं

उपरोक्त में से किसी भी एक मानदंड के मामले में भारत में महिलाओं की स्थिति में बड़ी भिन्नता नजर आती है। अब यह इस पर निर्भर करता है कि किस समुदाय में कौन सा वैयक्तिक कानून लागू है। इसके उदाहरण के रूप में हम यहां विभिन्न मान्य कानूनी या वैधानिक व्याख्याओं में तलाक के आधारों का विश्लेषण कर सकते हैं।

12.3.2 भारत में वैयक्तिक कानूनों के तहत तलाक के आधार

1	2	3	4	5
विवाह अधिनियम पति द्वारा अथवा	विशेष विवाह अधिनियम 1994, धारा 27 पति या पत्नी द्वारा	भारतीय तलाक अधिनियम, 1869 पति द्वारा (धारा 10)	मुस्लिम वैयक्तिक कानून पति द्वारा पत्नी द्वारा तलाक मुस्लिम विवाह भंग अधिनियम 1939 धारा 2	पारसी विवाह और तलाक अधिनियम 1936, धारा 32
व्यभिचार में लिप्त होने पर खत्म होने के लिए				

अब तक एक बात स्पष्ट नहीं थी परंतु अब स्पष्ट होती जा रही है कि व्यवहार में एक ही धार्मिक सम्प्रदाय में वैयक्तिक कानून जिस तरह से लागू किए जाते हैं उसमें काफी अंतर होता है। उदाहरण के लिए मेघालय की खासी जनजाति को ही ले लें। आज यह जनजाति तकरीबन पूरी तरह से ईसाई है लेकिन यह आज भी मातृवंशीय उत्तराधिकार का अनुसरण करती है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ का हिंदू समाज हमेशा से स्त्री-पुरुष की पहल पर होने वाले विवाह भंग और दूसरे विवाह दोनों को स्वीकार करता आया है। वीमेंस रिसर्च एंड एक्शन ग्रुप के एक नवीनतम प्रकाशन से पता चलता है कि अभी तक भारतीय न्यायालय दऊदी बोहरा सम्प्रदाय पर *इतहना* अशारी के शियाई कानून को लागू कर रह थे, जबकि ये लोग इनके धर्म ग्रंथ दाइम-अल इस्लाम में दर्ज कानूनों को मानते हैं।

देश में प्रचलित वैयक्तिक कानूनों के नाना रूपों और उनके प्रभावों के व्यवस्थित अध्ययन को अनुसंधान कार्यों में उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए ताकि महिलाओं की दशा, स्थिति और उनके योगदान की वस्तुगत जानकारी मिल सके। यह कानून राष्ट्रीय विकास की धारा को प्रभावित करते हैं और स्वयं उससे भी प्रभावित होते हैं। फिर ये समाज के विकास में संक्रिय भागीदारों के रूप में महिलाओं के योगदान को विशेष प्रभावित करते हैं।

यह सत्य संदेह से परे है कि नारी के जीवन के निजी पहलुओं पर धार्मिक कानूनों का अनुप्रयोग उन्हें समता की संवैधानिक गारंटी से वंचित करता है और राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों की भावना की अवहेलना है। मगर वहीं एक महत्वपूर्ण बात भी ध्यान में रखी जानी जरूरी है कि सभी भारतीयों के लिए समान नागरिक संहिता एक बड़ा ही जटिल मुद्दा है।

12.3.3 समान नागरिक संहिता

सत्तर दशक के समूचे दौर में भारत में महिला आंदोलन की एक प्रमुख मांग यह थी कि सभी नागरिकों के जीवन के नागरिक पहलुओं के संचालन के लिए एक समान क़ानून बनाया जाए। ऐसा माना जा रहा था कि किसी भी धार्मिक समुदाय विशेष की सदस्यों के रूप में महिलाओं को जो विषमताएं, विसंगतियां सहनी पड़ रही हैं वे काफी हद तक दूर हो जाएंगी। समान नागरिक संहिता की मांग अन्य मंचों से और कुछ भिन्न कारणों से भी उठी। उदाहरण के लिए बहुसंख्यक साम्प्रदायिक संगठनों ने यह मांग की कि देश में एक समान (और असल मायने में बहुसंख्यक प्रेरित) नागरिक संहिता हो। अब चूंकि यह जागरुकता बढ़ती जा रही है कि राज्य महिला समानता का श्रेष्ठ गारंटीदाता नहीं हो सकता है, इसलिए यह मांग अब शिथिल पड़ने लगी है। फिर महिला आंदोलन भी यह बात स्वीकार करने लगा है कि विभिन्न धार्मिक उप-समूहों में प्रचलित वैयक्तिक कानूनों में कितनी भिन्नताएं और भिन्न पद्धतियां हैं इसकी पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है। इसलिए भारतीय महिलाओं के लिए वैयक्तिक कानूनों के बारे में किसी भी प्रामाणिकता के साथ बात करने से पहले इस दिशा में बुनियादी कार्य किया जाना बाकी है।

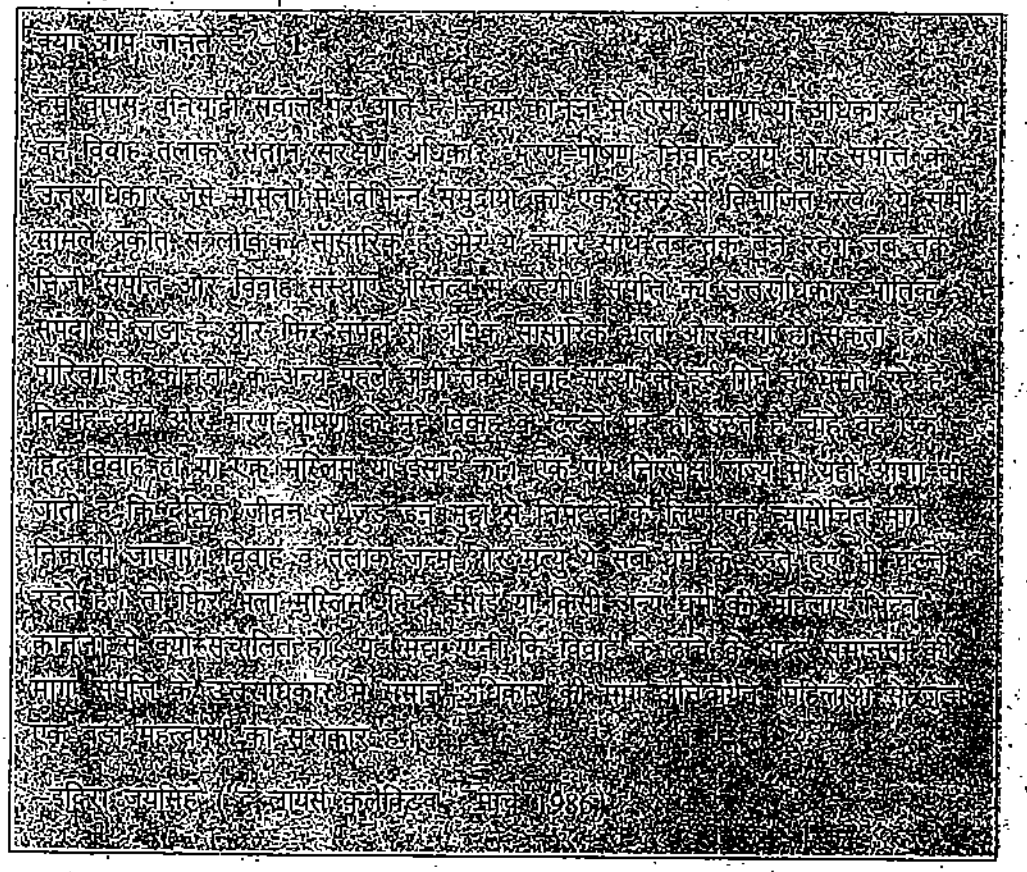

12.4 नियंत्रण के ढांचे : नारी पराधीनता और प्रतिरोध

ऊपर हुई चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक दृष्टिकोण अमूमन नारी को धर्म सिद्धांत व व्यवहार दोनों में एक पराधीन स्थिति में रखते हैं। इस चरण पर आकर हमारे लिए धर्म की आदर्शमूलक शिक्षा और उसके अनुयायियों के सांस्कृतिक लोकाचारों के बीच संकल्पनात्मक रूप से भेद जान लेना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है ये लोकाचार इन शिक्षाओं के अनुरूप हो सकते हैं या नहीं भी। कई धर्मों में हमें नारी पराधीनकारी अर्थ दिखाई देते हैं तो कई धर्म यूं तो आदर्श रूप से समतावादी हैं मगर वहीं व्यवहार में वे भेदभावपूर्ण हैं।

उदाहरण के लिए ऐसा धर्म ढूंढ पाना कठिन है जो इस्लाम से आदर्श रूप से अधिक सामाजिक लिंग समतावादी हो। लेकिन व्यवहार में हम मुस्लिम महिलाओं को कई कानूनी, सांस्कृतिक और सामाजिक विषमताओं, विसंगतियों से पीड़ित पाते हैं।

क्या आप जानते हैं ?

मुस्लिम महिलाओं को मस्जिद में नमाज अदा करने का अधिकार।

अभी कुछ ही समय पहले लखनऊ की एक मस्जिद में कुछ मुस्लिम महिलाओं ने नाटकीय ढंग से घुसकर नमाज अदा की उससे यही लगता है कि इस्लाम में महिलाओं को मस्जिद में नमाज पढ़ने का अधिकार नहीं है। मगर सचाई इसके विपरीत है। इस्लाम में महिलाओं के मस्जिद में प्रवेश करने पर कोई रोक नहीं है। कुरान कहता है उससे बढ़कर बेइंसाफ कौन है जो अल्लाह की इबादतगाहों के दरवाजे दूसरों के लिए बंद करे उस परवरदिगार का नाम जहां लिया जाना चाहिए। इस आयत की व्याख्या करते हुए कुरान के एक सबसे प्रखर विद्वान टीकाकार अब्दुल्ला युसुफ अली कहते हैं कि इसका सीधा सामान्य सा मतलब है कि यह मस्जिद में इबादत की आजादी के सिद्धांत को स्थापित करती है। कोई व्यक्ति बाअदब इबादतगाह में आए और कोई ऐसी ऊलजलूल हरकत नहीं करे जिससे वहां मौजूद अल्लाह के दूसरे बंदों को बुरा लगे तो उसे किसी भी आम इबादतगाह में जाने और नमाज पढ़ने का पूरा हक है। इसलिए जहां तक मस्जिद में जाने का सवाल है तो लिंग के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं बरता जा सकता है।

पैगंबर मुहम्मद साहिब की परंपरा इस बात को आगे और स्पष्ट कर देती है। पैगंबर मुहम्मद ने कहा था औरतों को मस्जिद में जाने से नहीं रोको। जाहिर है कि पैगंबर मुहम्मद ने खुद औरतों को मस्जिदों में सामूहिक नमाजों व्याख्यानों और धार्मिक तथा राजनीतिक संवादों में भाग लेने के लिए बढ़ावा दिया था। कुरान और पैगंबर की इन प्रेरणाओं के कारण ही औरतें भारी संख्या में पैगंबर की मदीना स्थित मस्जिद में नमाज अदा करने जाया करती थीं हालांकि वे वहां अलग कतारों में ही नमाज पढ़ती थीं। मगर वहीं एक और मौके पर पैगंबर कहते हैं औरतों के लिए बेहतर यही है कि वह मस्जिद की बजाए घर में ही इबादत करें और इससे भी बेहतर यह है कि वह घर की खुली जगह की बजाए सबसे भीतरी हिस्से में इबादत करें। इस तरह पैगंबर ने यह स्पष्ट कर दिया था कि औरतों को नमाज पढ़ने के लिए मस्जिद में जाना जरूरी नहीं है मगर वहीं उन्होंने उनसे यह भी नहीं कहा कि वे सदा के लिए घर पर ही बनी रहें। उन्होंने इसे औरतों की पसंद पर छोड़ दिया और इस मामले में लचीला रुख अपनाया। लेकिन इस लचीलेपन का यह मतलब कतई नहीं है कि मुसलमानों या उनके मौलवियों को यह अधिकार मिल गया है कि वे महिलाओं के मस्जिद में नमाज पढ़ने पर पाबंदी लगा दें।

(सेमिनार, खंड 5, अंक 2 अप्रैल-जून, 1999)

कट्टरपंथी धार्मिक व्यवस्था अक्सर इन विसंगतियों को उचित ठहराती है और उन्हें कड़ाई से लागू भी करती है। यहां हमारे लिए यह समझना जरूरी है कि तमाम धार्मिक व्यवस्था का नियंत्रण पितृसत्तात्मक हाथों में है, जिसने सदैव पितृसत्तात्मक और स्त्री-विरोधी दृष्टिकोणों को ही बढ़ावा और संरक्षण दिया है।

धार्मिक व्यवस्था पर पुरुष नियंत्रण वस्तुतः सभी धार्मिक संस्थाओं की एक समान विशेषता है जो अन्यथा विविधरूपी होने के साथ-साथ कभी-कभी कलहप्रिय भी होते हैं। सभी प्रतिष्ठित धर्मों में "पुरोहिताई" बेहद सुरक्षित पुरुष क्षेत्र है और स्त्री के स्थान पर पाबंदी लगाने के आदेश सर्वोच्च धर्माधिकारी से ही आते हैं। इसका अध्ययन करने के लिए हम विभिन्न धार्मिक व्यवस्थाओं के इतिहास का विश्लेषण कर सकते हैं उदाहरण के लिए डी.डी. कौशाम्बी जैसे कई प्रतिष्ठित विद्वानों ने हिन्दू धर्म में एक ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया के बारे में जानकारी दी है जिसके चलते विभिन्न देवी माताओं के उपासक पंथों की जगह प्रभावी पुरुष देवगणों ने ले ली है।

अपने उत्पीड़न के इस विशेष पहलू के प्रतिकार स्वरूप महिलाओं के प्रतिरोध ने कई रूप धारण किए हैं। एक ओर भीतर से ही प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जिसमें मूल स्रोतों, ग्रंथों का पुनर्विश्लेषण और पुनर्व्याख्या कर उनमें मौजूद पितृसत्तात्मक नियंत्रण के मकड़जाल के नीचे समतावादी आधार का सार ढूंढा जाता है। जैसे एक मुस्लिम महिला संगठन वीमेन लिविंग अंडर मुस्लिम लॉज ग्रुप के क्रिया कलाप ऐसे हैं जो मुस्लिम धार्मिक प्रथाओं, प्रचलनों को तार्किकता के चश्मे से देखते हैं। यानी उन्हें तर्कसंगत ठहराने के प्रयास यह ग्रुप करता है। इसी प्रकार नारी-अधिकारवादी धर्मशास्त्री बाइबिल में नारी-अधिकारवादी आधार ढूंढने का प्रयास करते हैं। ये दोनों ही इस श्रेणी में गिने जाएंगे। दूसरी ओर प्रतिरोध का एक और स्वरूप सुधार लाने की प्रवृत्ति है। यह हमें ईसाई धार्मिक संगठनों में प्रवेश कर पुरुषों के समकक्ष पुरोहितों के रूप में अभिषेक करवाने के महिलाओं के प्रयासों में नजर आ जाती है। अंततः हमें अस्वीकार करने, तिरोहित करने की प्रवृत्ति नजर आती है जिसमे धर्म के पूरे ढांचे को नकार कर महिलाएं अपने प्रतिरोध को एक अज्ञेयवादी या पंथनिरपेक्ष मूल्यों का आधार प्रदान करने का प्रयास कर रही हैं।

धर्म एक जटिल समाजवैज्ञानिक संस्था है जिसे इसके आध्यात्मिक आधार ने और भी जटिल बना दिया है। इस ढांचे में महिलाएं आज कहां खड़ी हैं और उन्हें कहां जाना होगा, यह प्रश्न और भी जटिल हो गया है। इन तमाम मुद्दों को तभी अच्छी तरह से समझा जा सकता है जब हम धैर्यपूर्वक मूल्यों से मुक्त विश्लेषण करें।

इस इकाई को समेटने से पहले आइए इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढें।

जरा सोचिए-2

1) आपके विचार से पारंपरिक कानून और धार्मिक उपदेश को भारत में वैयक्तिक कानून का आधार बनाने के क्या कारण है?

2) उत्तर विकास से संबंधित कानून महिलाओं की स्थिति को किस तरह से प्रभावित करते है? एक उदाहरण देकर समझाइए।

12.5 सारांश

अंत में निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि धर्म में नारी का जो स्थान है उसमें उनके शोषण की भरपूर गुंजाइश है। परंपरा, संस्कृति के संरक्षक और इस तरह धर्म की रक्षक

होने के नाते महिलाएं अगर किसी भी उत्पीड़नकारी सिद्धांत के विरोध में आवाज उठाती हैं तो उन्हें धर्म और समुदाय का विश्वासघाती माना जाता है। इन तमाम कठिन पहचानों से घिरी महिलाएं अक्सर अपने समुदायों के आदेशों के आगे झुक जाती हैं। शाहबानो केस और रूप कुंवर सती कांड तो बस धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर महिलाओं की आकांक्षाओं का गला घोंटने वाली अनगिनत घटनाओं की बानगी मात्र हैं। बदले में सांत्वना, पुरस्कार के रूप में महिलाओं को एक ऐसी आत्म-बलिदानी, उदात्त देवी की झूठी छवि पकड़ा दी जाती है जो उसके बुनियादी मानवाधिकारों का हनन करने वाले देश, सम्प्रदाय और पति की रक्षा करेगी।

इस इकाई में हमने समाज के दमनकारी ढांचे को जानने का प्रयास किया है। हमने संक्षेप में धर्म के आदर्शमूलक ढांचे और उसमें नारी के स्थान पर नजर डाली है। ये मूल्य नारी के दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू की समझ देते हैं जिनमें कानून भी एक पहलू है। इसमें हमने सम्प्रदाय-धर्म द्वारा संचालित वैयक्तिक कानूनों से महिलाओं की स्थिति का प्रयास किया है। यहां यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस तरह की दमनात्मक धार्मिक व्यवस्था का प्रतिरोध कठिनाइयों से भरा है।

12.6 शब्दावली

संवाद	:	मंथन, चिंतन का तरीका जो अनेक दैनिक प्रचलनों में अभिव्यक्त होता है।
समतावादी	:	एक ऐसा सिद्धांत जो प्रत्येक व्यक्ति को समान दर्जा देता है
विचारधारा	:	चिंतन की एक विधि जो किसी चलन, प्रथा को न्यायोचित ठहराती है और उसका समर्थन करती है। उदाहरण के लिए वर्ण व्यवस्था को न्यायोचित ठहराने के लिए कर्म और दैवी उत्पत्ति (ब्रह्मा के शरीर के विभिन्न अंगों से जन्म) जैसी कुछ वैचारिक व्याख्याएं प्रस्तुत की जाती हैं।
उत्पीड़न	:	एक ऐसी दशा, जिसमें किसी व्यक्ति को बलपूर्वक या चतुराई से हेरा-फेरी करके पराधीन बना कर रखा जाए।
आदर्शक या आदर्शमूलक	:	एक मानक विचार, मत या सिद्धांत स्थापित करना जो अनिवार्यत: यथार्थ से मेल नहीं खाता।
प्रतिरोध	:	विरोध करना, तथा आदर्शों या पैटर्नों को मानने से इनकार करना।
पंथ/धर्मनिरपेक्ष	:	धर्म या धार्मिक विश्वासों से जिसका कोई संबंध न हो। इसका अर्थ उदासीनता और समान दूरी बनाए रखना और हस्तक्षेप नहीं करना भी है।

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

राधा, कुमार, 1993 *हिस्ट्री ऑव डुइंग* कॉली फॉर वीमेन, नई दिल्ली।

ओबराय, पेटरिशा (संपा) (1996) सोशल रिफॉर्म, सेक्सुलिटी एंड दि स्टेट नई दिल्ली : सेज।

इकाई 13 रूढ़िवादिता और महिलाओं के अधिकार

रूपरेखा

13.0 लक्ष्य और उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 भारत में जनतांत्रिक चेतना, धर्म निरपेक्षता और धार्मिक रूढ़िवाद की जड़ें
  13.2.1 उदारवादी प्रजातंत्र
  13.2.2 राष्ट्रीयता और बहुसांस्कृतिकता
  13.2.3 राजनीति/धर्म
13.3 भारत में साम्प्रदायिक संबंध और धार्मिक रूढ़िवादी राजनीति
  13.3.1 भारत : एक बहुधार्मिक समाज
  13.3.2 हिंदु-मुस्लिम संबंध
  13.3.3 आजाद भारत
13.4 भारत में धार्मिक रूढ़िवादी राजनीति और महिलाएं
  13.4.1 हिंदू परंपरा तथा व्यवहार में महिलाएं
  13.4.2 अन्य धार्मिक रूढ़िवादी अभिव्यक्तियां
13.5 विश्व में धार्मिक रूढ़िवाद और महिलाएं
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में धार्मिक रूढ़िवाद और महिला अधिकारों की चर्चा की गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे :

- धार्मिक रूढ़िवाद की प्रक्रिया से आप अवगत हो पाएंगे विशेषकर किस प्रकार यह महिलाओं को प्रभावित करती है,
- धार्मिक रूढ़िवाद और महिला-अधिकारों के मध्य संबंध की आलोचनात्मक विवेचना कर पाएंगे, और
- इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर आप जागरूक विचार और सूचना प्राप्त करने वाले के रूप में उभर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

धार्मिक-रूढ़िवाद की प्रक्रिया, जिसके तहत समुदाय या समाज कुछ रूढ़िवादी सिद्धांतों के अंतर्गत विशेषकर धार्मिक विचारों के इर्द-गिर्द अलग दुनिया या समाज की स्थापना करते हैं जो कि एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया है। यह प्रणाली सबसे ज्यादा महिलाओं को प्रभावित करती है क्योंकि उन्हें ज्यादातर परंपरा के संग्रहक या रक्षक के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार महिलाओं से उम्मीद की जाती है कि इन रूढ़िवादी प्रवृत्तियों को ढोने का काम करें ताकि वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इन प्रवृतियों व धारणाओं को पहुंचाए जिनमें से एक है – कपड़ें पहनने की संहिता (ड्रेस-कोड) इस समस्या पर आलोचनात्मक नजरिए के लिए हम

सबसे पहले लोकतांत्रिक और धर्म निरपेक्ष सिद्धांतों की जड़ों की पड़ताल करेंगे। उससे अगले भाग में हम साम्प्रदायिक राजनीति की चर्चा करेंगे। इसके पश्चात हम कट्टरवादी राजनीति और भारत में महिलाओं पर इसके प्रभाव पर चर्चा करेंगे। इस स्थिति सिर्फ भारत में ही नहीं है। विश्व भर में इन रूढ़िवादी विचारधाराओं और प्रथाओं से उपजे दमन की महिलाएं शिकार रही हैं।

13.2 भारत में जनतांत्रिक चेतना, धर्म-निरपेक्षता और धार्मिक रूढ़िवाद की जड़ें

इस भाग में भारत के लोकतांत्रिक तंत्र के निर्माण के विभिन्न पहलुओं को संक्षिप्त में बताया गया है और किस प्रकार राजनीति में धर्म निरपेक्ष तत्वों का समावेश किया गया। इस बहुसांस्कृतिक व्यवस्था में धर्म-निरपेक्ष और लोकतांत्रिक विचारों को कारगर करना निश्चय ही मुश्किल काम है। हम लोकतांत्रिक और धर्म निरपेक्ष चेतना तथा इसके विकल्पों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे।

13.2.1 उदारवादी प्रजातंत्र

धार्मिक रूढ़िवाद का सीधा संबंध किसी धर्म के मूलभूत सिद्धांतों से है। धर्म ने हमेशा महिलाओं के जनतांत्रिक अधिकारों को कतरने का प्रयास किया। इस धार्मिक रूढ़िवाद का साम्प्रदायिक संबंधों और दक्षिणपंथी राजनीति से गहरा रिश्ता है।

एक सिद्धांत के तौर पर उदारवादी जनतंत्र का जन्म पश्चिमी यूरोप में हुआ था। यह एक प्रमुख ऐतिहासिक विकास था जिसमें चर्च और राज्य का राजनैतिक अलगाव हुआ, पूंजीवाद का विकास हुआ और औद्योगिक क्रांति हुई। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पूंजीवाद ने जनतंत्र को जन्म दिया बल्कि यहां कहने का यह तात्पर्य है कि पूंजीवाद का जनतंत्र के साथ एक ऐतिहासिक रिश्ता है और ऐतिहासिक प्रक्रिया में वे एक दूसरे के साथ सम्बद्ध रहे हैं। तीसरी दुनिया में इस संबंध का रूख बिलकुल अलग रहा।

पूंजीवादी औपनिवेशीकरण इस बात का गवाह है कि इसने परम्परागत संस्कृति, शिक्षा और सामाजिक, राजनैतिक ढांचों को योजनाबद्ध ढंग से नष्ट किया। बुद्धिजीवियों ने पश्चिमी विचारों का चश्मा पहन लिया और पश्चिम की धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक विचारधारा को अपने ऊपर ओढ़ लिया। इसी प्रकार भारत में भी महिलाओं की समानता जैसे आधुनिक विचार विकसित हुए परंतु परम्परागत सांस्कृतिक ढांचे से इसका रिश्ता टूट गया।

13.2.2 राष्ट्रीयता, बहुसांस्कृतिकता

हालांकि आरंभ से ही भारत एक बहुधर्मीय और बहुसांस्कृतिक देश रहा है और भारतीय राष्ट्रवाद की एक बड़ी समस्या इस अनेकता को सूत्रबद्ध करने की रही है। लोग यह समझते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद का यह एक रूप था परंतु सूक्ष्म विश्लेषण से यह पता चलता है कि भारतीय राष्ट्रवाद के अनेक रूप मौजूद थे। इसमें नेहरूवादियों का जोर था जो यह मानते थे कि राष्ट्रवाद की जिस ताकत ने ब्रिटिश-शासन से हमारे देश को मुक्त कराया है वही शक्ति हमें प्रगति की ओर अग्रसर करेगी और हमारी राजनीति को एक तर्कसंगत रूप प्रदान करेगी। इसमें एक अखिल भारतीय अस्मिता की बात की गई जिसमें स्थानीय, जातीय और धार्मिक पहचान समाहित हो जाएगी। हालांकि समुदायों की विविधता को रेखांकित किया गया परंतु इस आधुनिकीकृत राष्ट्रवाद ने सभी भारतीयों की एकता पर बल दिया (हम सब भारतीय हैं)। निश्चित रूप से यह यूरोप के राष्ट्रवाद के नमूने पर आधारित था।

13.2.3 राजनीति/धर्म

भारतीय राष्ट्रवाद के धर्म निरपेक्ष रूप के साथ-साथ दो अन्य रूपों का भी विकास हो रहा था। उनमें से एक गांधीवादी विचारधारा में राजनीति धर्म के अलगाव को अस्वीकार किया गया। गांधी जी लोगों को लामबंद करने के लिए धर्म के प्रतीकों का इस्तेमाल करते थे। परंतु वे धर्म के सभी पक्षों को आंख मूंदकर स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। गांधी जी अधिकांशत: हिन्दू धर्म के प्रतीकों का इस्तेमाल करते थे परंतु उनकी विचारधारा में दूसरे धर्म को भी स्थान मिलता था।

सर्व श्री वी.डी. सावरकर, स्वामी श्रद्धा और एम.एस. गोलवालकर के नेतृत्व में उग्रवादी हिन्दू राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। यह राष्ट्रवाद का तीसरा रूप था। गांधीवादी विचारधारा के समान उन्होंने राजनीति और धर्म के अलगाव को अस्वीकार किया। इनके अनुसार धार्मिक और राजनीति पहचान को अलग नहीं किया जा सकता था और भारत में रहने वाले सभी भारतीय 'स्वाभाविक' तौर पर हिन्दू हैं। इसी राष्ट्रवाद का प्रतिबिंब जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम राष्ट्रवाद के रूप में सामने आया। आजादी मिलने से पहले जिन्ना ने इस राष्ट्रवाद को हवा दी और मुसलमानों के लिए अलग से भौगोलिक और राजनीतिक अधिकार की मांग की। उनके अनुसार मुसलमानों के लिए भारत में कोई स्थान नहीं था। भारत में हुए राजनैतिक उथल-पुथल से पाकिस्तान का निर्माण हुआ। उग्रवादी हिन्दू राष्ट्रवाद ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी। इसके बाद यह अंधेरे में खो गया परंतु फिर यह 90 के दशक में सिर उठाने लगा।

13.3 भारत में सांप्रदायिक संबंध और धार्मिक रूढ़िवादी राजनीति

इस भाग में हमने साम्प्रदायिक राजनीति की चर्चा की है। हिंदु धर्म, एक ऐसा धर्म है जो समरूपी नहीं है तथा इससे जुड़ी विविध प्रथाएं हैं, जिसने कभी कभी एक लड़ाकू, एकेश्वरवाद, दमनकार जैसे रूप की तरफ झुकाव भी दिखाया है। इस संदर्भ में हिंदु-मुस्लिम संबंध काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ हद तक राजनीति और ब्रिटिश नीतियों ने अपनी पहचान को बनाए रखने की प्रवृति को बढ़ावा दिया जिसका परिणाम सांप्रदायिक हिंसा है।

आइए, इस भाग में इस पहलू पर एक नजर डालें।

13.3.1 भारत : एक बहुधार्मिक समाज

अंनन्तकाल से भारत एक बहु-धार्मिक समाज रहा है। विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच परस्पर संबंध के विषय में अभी भी इतिहासकारों के बीच बहस और विचार-विमर्श चल रहा है। परंतु इतना तो स्पष्ट है कि जहां एक ओर धार्मिक सहिष्णुता और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के उदाहरण मिलते हैं तो दूसरी ओर संघर्ष और असहिष्णुता के उदाहरण भी मिलते हैं। भारत में हिन्दू धर्म प्रमुख धर्म है परंतु शामी धर्म के समान यह कूटबद्ध नहीं है। हिन्दू धर्म का संबंध जमीनी यर्थाथ से रहा है और यह कोई एक धर्म नहीं है बल्कि इसमें अनेक धर्मों का समन्वय है। हिन्दू धर्म के वंचित समूह अधिक समतावादी धर्मों में धर्मांतरित हुए। हिन्दू धर्म ने इस धर्मांतरण का विरोध किया और दूसरे धर्मनियायियों पर आक्रमण किया। अतीत में बौद्धा और जैन धर्म को इस प्रकार के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। एक बार फिर इस्लाम के खतरे के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू धर्म पुन: उग्रवाद के चरण में प्रवेश कर चुका है।

इसके विपरीत इस बात के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं कि भारत में सदियों से अनेक धर्मों और मतों के लोग सौहार्दपूर्ण वातावरण में एक साथ रहते आए हैं। यही नहीं यहूदी और पारसी जैसे अल्प संख्यक धार्मिक समुदायों को भी दूसरे स्थानों की अपेक्षा भारत में अधिक

सुरक्षा मिलती है। परंतु हिन्दू धर्म और इस्लाम (मुसलमान) के बीच का संबंध सबसे ज्यादा जटिल रहा है। हालांकि पंजाब जैसे क्षेत्र में आजादी से पहले हिन्दू सिक्ख और मुसलमान सिक्ख साम्प्रदायिक संबंधों के मुख्य बिन्दु रहे हैं परंतु आमतौर पर जब हम साम्प्रदायिक संबंधों की बात करते हैं तो हिन्दू मुसलमान संबंधों की ही बात सामने आती है।

13.3.2 हिंदू मुस्लिम संबंध

इस उपमहाद्वीप में हिन्दू मुसलमान संबंधों का इतिहास काफी लम्बा और जटिल रहा है; कभी इनके बीच काफी तनाव रहा है तो कभी एक साथ मिलजुल कर रहने के भी प्रयास किए गए हैं। 16वीं शताब्दी का भक्ति आंदोलन हिन्दू मुसलमान एकता का सर्वोत्तम उदाहरण है जिस समय कबीर, सूरदास, रैदास और मीरा ने सहिष्णुता, प्यार और एक दूसरे के प्रति श्रद्धा का उपदेश दिया। आज भी इन पंथों से प्रभावित लोकपंथ मिल जाएंगे और ग्रामीण क्षेत्रों में शांति और सौहार्द का माहौल अभी भी कायम है। बंगाल का बाउल पंथ इस प्रकार के उपदेशों का आधुनिक प्रतिरूप है जिसमें सीमा के इस पार और उस पार के लोग अपने सारे धार्मिक भेदभाव को भुलाकर इस पंथ का अनुसरण करते हैं।

ब्रिटिश शासकों ने फूट डालो और राजनीति करो में अपना हित देखा और उन्होंने सम्प्रदाय और धर्म को आधार बनाकर अपना हित साधने की कोशिश की। उन्होंने विभाजन का विचार आने से पहले से ही साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों के विभाजन की बात की। 1935 के भारत सरकार के अधिनियम में इसे लागू किया गया जिसमें यह प्रधान था कि हिन्दू (कुछ कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण के साथ), मुसलमानों और अन्य धार्मिक अल्प संख्यकों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र होंगे (सरकार 1991)। उग्रवादी हिन्दू राष्ट्रवाद और मुस्लिम लीग के अनुयायी जिनका मानना था कि मुसलमानों का एक अलग राष्ट्र होना चाहिए और हिन्दू वर्चस्व वाले भारत में उनका कोई स्थान नहीं होगा, ने इस प्रकार की विचारधारा को हवा दी। इस विचारधारा को फैलाने के लिए जोरदार प्रचार किया गया और राजनैतिक स्तर पर कार्यवाई की गई। सामाजिक-आर्थिक कारणों से भी इस दिशा में प्रगति हुई। उत्तरी भारत के अधिकांश हिस्सों में मुसलमान भूमिपति और अमीर किसान नव निर्मित राष्ट्र में नए अवसरों का सपना देख रहे थे। लाखों मुसलमान किसानों ने एक ऐसे घर का सपना देखा जहां न उन्हें कोई सताएगा और वे हिन्दू भूमिपतियों के चंगुल से मुक्त हो पाएंगे और इस प्रकार 1947 में आजादी के साथ भारत का विभाजन हुआ और इस विभाजन के दौरान मार-काटमची और हत्याएं हुईं तथा लाखों लोगों के खून बहे। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। यह बड़ी बिडम्बना रही कि 25 साल के बाद अपने आन्तरिक अन्तर्विरोधों के कारण पाकिस्तान का भी विभाजन हो गया और बांगला देश नामक नए राष्ट्र का निर्माण हुआ।

13.3.3 आजाद भारत

आजाद भारत के पहले दशकों में अपेक्षाकृत साम्प्रदायिक तनाव लगभग नहीं रहा परंतु 1970 के दशक से हिन्दू मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक तनाव बढ़ने लगा और कहीं-कहीं तो हिन्दुओं और सिक्खों के बीच भी साम्प्रदायिक तनाव पैदा हुआ।

आर्थिक संकट ने भी इस आग को हवा दी। बढ़ती बेरोजगारी ने दोनों समुदायों के रूख को एक दूसरे के प्रति ज्यादा कठोर बनाया। यहां एक महत्वपूर्ण बात गौर करने की यह है कि साम्प्रदायिक संगठनों ने अपने राजनैतिक हितों के लिए उनकी भावनाओं का उपयोग किया और अपने सिद्धांत को वैध ठहराने के लिए धार्मिक रूढ़िवादी विचारधारा को आधार बनाया।

अयोध्या में राम जन्मभूमि से जन्मे विवाद, बाबरी मस्जिद को तोड़ा जाना और इससे पूरे देश में जन्मे साम्प्रदायिक उन्माद और हिंसा को इसी संदर्भ में समझा जाना चाहिए। 1992 और 1993 में घटी इन घटनाओं की पाकिस्तान और बांगला देश में हिंसात्मक प्रतिक्रिया हुई। सभी जगह धर्म के नाम पर हिंसा का सहारा लिया गया। इन सब घटनाओं को देखने से पता चलता है कि इस उपमहाद्वीप में धर्म, सम्प्रदायवाद और धार्मिक रूढ़िवाद के बीच गहरा रिश्ता है। इनमें से किसी भी स्थिति का लाभ उठाया जा सकता है। निराशा का यह दौर लम्बे समय तक कायम रहा परंतु धार्मिक रूढ़िवादी भारतीय जनता पार्टी के कई राज्यों में पराजित होने और सत्ता छीन जाने के बाद निराशा के बादल कुछ हद तक छटने लगे।

13.4 भारत में धार्मिक रूढ़िवाद और महिलाएं

महिला आंदोलनों द्वारा काफी समय ये यह बात कही जा रही थी कि इस पितृसत्तात्मक विश्व में सभी धार्मिक प्रतिष्ठान पुरुष के हाथ में है। अतः इन सभी धार्मिक प्रतिष्ठानों का महिला विरोधी होना लाजिमी है। यह बात सभी धर्मों पर लागू होती है।

13.4.1 हिंदु परंपरा एवं व्यवहार में महिलाएं

हिन्दू परम्परा में मनु का यह कथन कुख्यात है कि निम्न जाति के लोग, पशु और महिलाएं एक श्रेणी में आते हैं और ये सब पीटने से ही सही रास्ते पर रहते हैं। इस संदर्भ में तुलसीदास की यह पंक्ति लिखी जा सकती है।

शुद्र गंवार ढोल पशु नारी

सब हैं ताड़न के अधिकारी

परम्परागत हिन्दू कानूनों में महिलाओं का सम्पत्ति पर समान अधिकार नहीं है और यहां तक कि परम्परागत रूप से बच्चे पर पुरुष का ही अधिकार है। चुंकि हिन्दू धर्म का कोई धर्म ग्रंथ नहीं है इसलिए इस बात की पुष्टि के लिए अलग वेदों, पौराणिक ग्रंथों, गीता और लोक प्रचलित मतों का सहारा लिया जाता है। यहां तक कि आज भी यह विवाद उठ खड़ा हुआ है कि महिलाओं को वेद पढ़ने का अधिकार है या नहीं। चार में से तीन शंकराचार्यों ने कहा कि महिलाओं को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। व्यावहारिक रूप में इस प्रकार के धार्मिक रूढ़िवादी विवादों का विशेष महत्व नहीं है क्योंकि वेद संस्कृत में लिखे हुए हैं जिसे आज महिलाएं क्या बहुत से पुरुष भी नहीं पढ़ सकते हैं। इस प्रकार के विवादों से ज्यादा खतरनाक सती प्रथा को फिर से प्रतिष्ठित और बढ़ाने का प्रयास है।

यदि कोई महिला अपने पति की मृत्यु पर उसकी चिता में जलकर आत्महत्या कर लेती है तो उसे सती का नाम दे दिया जाता है। 18वीं और 19वीं शताब्दियों में सामाजिक सुधारकों ने इसे दूर करने का संघर्षपूर्ण प्रयत्न किया और महिलाओं की स्थिति सुधारने की भरपूर कोशिश की। यह विवाद का विषय हो सकता है कि क्या महिलाएं अपनी मर्जी से अपने पति के साथ चिता में जल जाती थीं। अधिकांश मामलों में महिलाओं को जबरदस्ती जलाया जाता था। मृत पति के परिवार के सदस्यों द्वारा विधवा को इतना प्रताड़ित किया जाता था और उसे इस कदर डरा दिया जाता था कि वह मजबूरन अपने पति के साथ जलने को तैयार हो जाती थी। इसका एक ही कारण था कि पुरुष समाज परिवार की सम्पत्ति में महिलाओं को हिस्सा नहीं देना चाहता था।

80 के दशक में कुख्यात देवराला सती कांड से यह मुद्दा फिर से उभरा। राजस्थान और देश के कई हिस्सों में समाज में लोगों के बीच इस बात को लेकर मतभेद पैदा हो गया कि

यह घटना सही है या गलत। धार्मिक रूढ़िवादी ताकतें इस घटना को देवीय करार देने का प्रयास कर रही थी और महिलाएं तथा सुधारवादी इसका पग-पग पर विरोध कर रहे थे। भारत में धर्म निरपेक्ष माहौल में धर्म निरपेक्ष ताकतों की जीत हुई परंतु अयोध्या कांड से जुड़े दक्षिणपंथी दलों के लोगों ने 1987 में सती विरोधी कानून के खिलाफ महिलाओं का एक जुलूस निकाला।

जब सूरत में 1992 में 13 मुसलमान महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया तो हिन्दू अधिकार की बात करने वाले दलों की चुप्पी से साम्प्रदायिक ताकतों से उनका संबंध और स्पष्ट हो गया। गुजरात में उस समय भारतीय जनता पार्टी का शासन था। संभवत: इस चुप्पी का मतलब प्रशंसा ही था कि हिन्दूओं ने अपने अपमान का बदला लिया।

13.4.2 अन्य धार्मिक रूढ़िवादी अभिव्यक्ति

भारत में साम्प्रदायिक शक्तियों ने महिलाओं पर समय-समय पर इस प्रकार के अत्याचार किए हैं और उनके खिलाफ कार्यवाई की है। भारत में शरीयत कानून को ही मुसलमानों का व्यक्तिगत कानून मान लिया गया है जिसमें सम्पत्ति, विवाह, तलाक, रख-रखाव और वसीयत के मामले में महिलाओं के साथ भेदभाव बरता जाता है। इस कानून के अनुसार मुस्लिम महिलाएं मस्जिद में नमाज पढ़ने नहीं जा सकती हैं। अभी हाल में ही एक शिया महिला ने उत्तर प्रदेश में इस कानून का उल्लंघन किया और उसे साम्प्रदायवादियों और धार्मिक रूढ़िवादियों की प्रताड़ना सहनी पड़ी। इस्लाम के धर्म ग्रंथ में कहीं भी महिलाओं को मस्जिद में नमाज अदा करने पर प्रतिबंध लगाने की बात नहीं कहीं गई। इस प्रतिबंध का आधार मात्र ऐतिहासिक और परम्परागत रीति रिवाज है। 80 के दशक में जिस समय सिक्ख अलगाववाद और उग्रवाद अपनी चरम सीमा पर था उस समय तथाकथित सिक्ख व्यक्तिगत कानून के तहत महिलाओं के लिए कायदे कानून बनाए गए जिस में महिलाओं के जनतांत्रिक अधिकार छीन लिए गए।

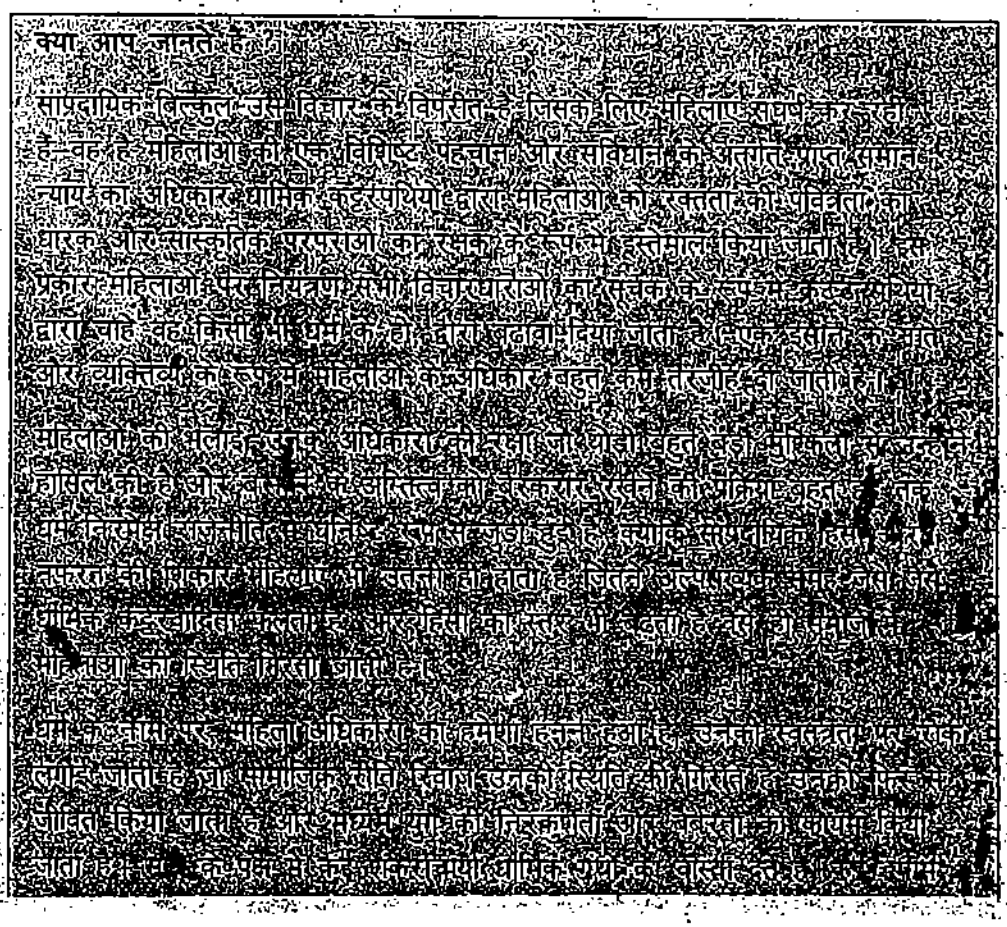

महिलाओं के अन्तरंग अधिकारों का सांस्कृतिक नाम पर उन्हीं के कुछ लोग विवाह, तलाक और इसाई महिलाओं के सम्पत्ति अधिकारों के विरुद्ध सिख कट्टरपंथी सिखों व्यक्तिगत कानून लागू करना चाहते हैं ताकि सिख महिलाओं को सम्पत्ति उत्तराधिकार से वंचित रखा जा सके। कट्टरपंथी सभी प्रकार के धर्मादेश जारी करते रहते हैं। कई शहरों में मुस्लिम औरतों के सिनेमा जाने की भी मनाही है। शाहिक कमेटी ने सभी सिक्ख लड़कियों का एक विशिष्ट ढंग से बाल बांधने और स्कर्ट या साड़ी न पहनने का हुक्म सुनाया। हिजबे इस्लामी ने कश्मीरी महिलाओं को बुर्का (सिर से पैर तक नकाब) पहनने का आदेश दिया जो कि इन महिलाओं ने कभी नहीं पहना था। हिंदू औरतों को तरह-तरह के लेबल लगाने से लुप्त हो चुके कर्मकाण्ड करने पर उकसाया गया ताकि हिंदू पहचान बनी रह सके।

स्रोत : आई.डी.डब्ल्यू.एम.डी.एस. जे.डब्ल्यू.पी.सी.पी.डब्ल्यू.एस.वाई.डब्ल्यू.सीए एन.एफ.आई.डब्ल्यू. ज्योत्स्ना चेटर्जी द्वारा सम्पादित 'पोलिटिक्स, रिलिजियस फ्रिडम एंड जेंडर जस्टिस' में भाग 5 नं० 2 अप्रैल-जून, 1999 पृ० 10

भारत जैसे बहु सांस्कृतिक और धर्म निरपेक्ष समाज में धार्मिक रूढ़िवादी शक्तियों ने महिलाओं की स्वतंत्रता का बार-बार विरोध किया। शाहबानो या तस्लिमा नसरीन के मामले में हुई प्रतिक्रिया इसका ज्वलंत उदाहरण है। इन्दौरवासी बुर्जुग महिला शाहबानो ने मुसलमान व्यक्तिगत कानून के उस प्रावधान को चुनौती दी जिसमें पति द्वारा तलाक दिए जाने पर पत्नी के जीवन यापन के लिए हर्जाना देने का प्रावधान नहीं है। आमतौर पर इस्लामिक व्यक्तिगत कानून के तहत इस पर विचार किया जाता परंतु शाहबानो ने एक धर्म निरपेक्ष न्यायालय में इस इस्लामिक कानून को चुनौती दी और यह कहा कि एक नागरिक के रूप में उसके अधिकारों का उल्लंघन हुआ है। न्यायालय ने उसके पक्ष में फैसला सुनाया और उसके बाद हंगामा शुरू हो गया। एक तरफ जहां महिला संगठनों ने इस फैसले का स्वागत किया वहीं दूसरी ओर शाहबानो के समुदाय के लोगों ने उस पर मुकदमा वापस लेने का दबाव डाला। अन्ततः उसे मजबूरन ऐसा करना पड़ा। अल्पसंख्यकों की नाराजगी से बचने के लिए सरकार ने संसद में एक विधेयक पेश किया कि अब से मुसलमान महिलाएं अपने समुदाय के व्यक्तिगत कानून से परिचालित होंगी और उनके मामले को धर्म निरपेक्ष न्यायालय में नहीं ले जाया जा सकेगा। इस समय तक (1980 के दशक के मध्य तक) एक दो अपवादों को छोड़कर महिला समूह सार्वभौम नागरिक अधिकार के प्रश्न पर काफी संवेदनशील हो गए थे। भारतीय जनता पार्टी ने पूरे देश में एक कानून लागू करने की बात की। जब इस मांग में साम्प्रदायिक और धार्मिक रूढ़िवादिता की बू आने लगी तब महिला समुदाय ने अपने पैर पीछे खींच लिए। सबसे कष्टप्रद बात यह थी कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के नाम पर महिलाओं के अधिकारों को कतरने वाला एक विधेयक संसद में पारित कर दिया गया।

अयोध्या में मस्जिद के टूटने तथा बांगलादेश में हुए साम्प्रदायिक दंगों के बाद बांगलादेश की लेखिका तस्लिमा नसरीन ने 'लज्जा' नामक उपन्यास लिखा। इसमें बांगलादेश में अल्पसंख्यक हिन्दू समुदाय पर हुए हमलों का परदाफाश किया गया था। इस्लामिक धार्मिक प्रतिष्ठान तस्लिमा के जान के दुश्मन बन गए। बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत में 'लज्जा' का समर्थन करने वालों में से महिला संगठन या कोई प्रगतिशील बुद्धिजीवी नहीं थे बल्कि हिन्दू साम्प्रदायिक संगठनों ने इसका उत्साहपूर्वक समर्थन किया जो यह दिखाना चाहते थे कि एक इस्लामिक देश में हिन्दुओं का अस्तित्व खतरे में है। इसकी सहायता से वे भारत में धार्मिक रूढ़िवादी और साम्प्रदायिक भावनाओं का उपयोग करना चाहते थे।

13.5 विश्व में धार्मिक रूढ़िवाद और महिलाएं

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी हाल के वर्षों में धार्मिक रूढ़िवाद एक प्रमुख राजनैतिक प्रवृत्ति के रूप में उभरा है। कई मामलों में यह 'अस्मिता' राजनीति और उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद गैर पश्चिमी विचारधाराओं को अपनाने की राजनीति के साथ घुलमिल गया है। उत्तर अफ्रीका और पश्चिमी तथा मध्य एशिया के कई देशों में 'इस्लामीकरण' और परम्परा के निर्वाह के नाम पर धार्मिक रूढ़िवादी परम्पराओं का पालन किया गया है और इसमें महिलाओं के साथ भेदभाव भी बरता गया है। कई मामलों में इस बहाने महिलाओं से उनके जनतांत्रिक अधिकार और शिक्षा तथा रोजगार के अधिकार से वंचित कर दिया गया है। अभी हाल में ही अफगानिस्तान के अधिकांश हिस्सों पर कब्जा जमाने के बाद तालिबानों द्वारा महिलाओं की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाना इसी प्रकार के प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। इसके पहले इरान में हुई इस्लामिक क्रांति के बाद महिलाओं को बुरका पहनने के लिए मजबूर किया गया। हालांकि उन्हें अलग से शिक्षा की सुविधा दी जाती थी। कई देशों में सरकारी तौर पर व्यक्तिगत कानूनों की व्याख्या की गई है और महिलाओं पर प्रतिबंध लगाए गए हैं। हमारा पड़ोसी देश पाकिस्तान इसका ज्वलंत उदाहरण है।

अलग-अलग देशों में और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न महिला संगठन और जनतांत्रिक अधिकारों के कार्यकर्ता इन प्रवृत्तियों का विरोध करते रहे हैं। इनमें से कुछ का आधार धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक विचारधाराएं हैं जबकि कुछ ने धर्म ग्रंथों की नारीवादी व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। इस दिशा में पाकिस्तान का वुमेन्स ऐक्शन फोरम (डब्ल्यू ए एफ) ने महत्वपूर्ण काम किया है जिसमें इस्लामी ग्रंथों का उदाहरण देकर पुरुषवादी समाज द्वारा आरोपित प्रत्येक महिला विरोधी आदेशों को चुनौती दी है। कई प्रकार से इन महिलाओं द्वारा किया गया कार्य ईसाई नारीवादी सिद्धांतकारों के कार्य से मेल खाता है जो धार्मिक परम्परा में ईसाई महिलाओं को स्थान दिलाने के लिए बाइबिल की नारीवादी व्याख्या करने का प्रयास कर रही हैं।

जरा सोचिए-2

1) आपके विचार में कट्टरवादिता के विश्व भर में बढ़ने के क्या कारण हो सकते हैं ?

2) रूढ़िवादी और कट्टरवादी प्रवृत्तियों के बढ़ने के फलस्वरूप क्या आप समझते हैं कि महिलाओं को कानूनी सरक्षण देने की जरूरत है जोकि पारंपरिक प्रथाओं से ज्यादा अहमियत रखती हो ?

3) किस प्रकार महिलाओं को रूढ़िवादी प्रोजेक्ट के लिए गतिशील या प्रेरित किया जाता है उदाहरण सहित समझाइए।

13.6 सारांश

पिछले कुछ वर्षों से विश्व भर में कट्टरवादिता बढ़ी है। बढ़ते हुए आधुनिकीकरण और बृहत बदलावों के चलते सभी समुदायों में अपनी परंपरा और पहचान को बचा कर रखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस सारी प्रक्रिया में महिलाएं परंपरा को संग्रहित करने के चक्कर में बेवजह पिसी जा रही हैं।

अपनी पिछली चर्चाओं को हमने देखा कि किस तरह धर्म, राजनीति और सामुदायिक पहचानों की जटिल अन्त: क्रिया ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमें महिलाओं से उनके मूल अधिकार भी होने जा रहे है। इन प्रवृतियों को रोकने की कोशिशे भी हमेशा बरकरार रही हैं पर वह बहुत कम और यदा कदा ही हैं।

13.7 शब्दावली

कट्टरवादिता : पुराने माने जाने वाले मूल, पुरातन सिद्धांत और उनका कट्टरता से पालन करने पर जोर दिया जाना।

मुहावरा : एक विशिष्ट तरीके द्वारा व्यक्ति या समुदाय का अलग प्रकार की भाषा, संकेतों से विचार अभिव्यक्त करना।

अल्पसंख्यक : एक छोटी संख्या, अल्पसंख्यक समुदाय वह है जो अन्य समुदायों के मुकाबले संख्या में छोटा है जिसके फलस्वरूप बड़ी संख्या वाले समुदाय उसे अपने प्रभुत्व में रखने की प्रवृति रखते हैं।

धर्म-निरपेक्ष : ऐसी चीजें जो धार्मिक या आत्मिक नहीं है। राजनीति क्षेत्र में इसका अर्थ है राज्य का सभी से एक प्रकार की दूरी बनाए रखना और अन्य
धर्मों के प्रति तटस्थ खैया अपनाता है।

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गैबेरियाला डैटरिच, *वुमेन्स मुवमेंट इन इंडिया*, कांसेप्टुअल ऐंड रेलिजस रिफलेक्शन्स, बैंगलोर 1988

जयवर्धना, कुमारी (1986) फेमिनाईजेशन एंड नेशनेलिजम इन दि थर्ड वर्ल्ड : जेड बुक्स।

जयसिंह, इंदिरा (संपा) (1996) जस्टिस फोर वूमेन : पर्सनल लांस एंड ला रिफार्म, मापूसा, गोवा : दि अदर इंडिया प्रेस।

इकाई 14 परंपरागत कानून और इसका विरोध : कानून की अवमानना

रूपरेखा

14.0 लक्ष्य और उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 न्याय न मिलना
14.3 विधवा दाह की देवराला दुर्घटना
  14.3.1 रूप कंवर को जलाया जाना
  14.3.2 प्रशासक और पुलिस
  14.3.3 सती स्थल
  14.3.4 महोत्सव – सती का महिमा गान
14.4 बहस
  14.4.1 समुदाय बनाम राज्य
  14.4.2 परम्परा और आधुनिकता
14.5 सती या विधवा आत्मदाह पर प्रतिबंध
  14.5.1 परम्परा और महिला
  14.5.2 भारतीय महिला
  14.5.3 विधवा को जलाने का तर्क
14.6 सती संबंधी विश्वास, प्रथाएं और संस्थाएं
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में परम्परागत कानून और इसके कार्यान्वयन पर विचार करेंगे। इस क्रम में हम सती प्रथा पर बातचीत करेंगे। इस प्रकार की प्रथाएं मनुष्य के जीवन में व्यक्तिगत अधिकारों पर प्रहार करती हैं। इस इकाई में हम इस पक्ष पर भी विचार करेंगे कि किस प्रकार परम्परागत कानून और रीति रिवाज व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। महिलाओं के मामले में तो यह खासकर और भी प्रचंड हो जाता है। इस इकाई में हम सती प्रथा पर विचार कर रहे हैं जिसमें महिलाओं को जिंदा जला दिया जाता है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- हाल में हुई सती कांडों और विभिन्न [illegible] पर विचार कर सकेंगे,
- सती प्रथा की अंतर्निहित धारणा की व्याख्या कर सकेंगे,
- सती प्रथा के वैचारिक और संस्थागत आधारों का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- [illegible] से समाज में महिलाओं की दुर्दशा और दुर्गति का आलोचनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम सती प्रथा पर विचार करने जा रहे हैं। इसमें सामुदायिक कानून, परम्परा, प्रथाएं इतनी कठोर होती हैं कि वे मनुष्य से जीने का अधिकार ही छीन लेती हैं। इसमें आधारभूत मानव
अधिकार पर भी आघात होता है। जो लोग सती प्रथा की वकालत करते हैं वे यह तर्क देते हैं कि महिलाएं स्वेच्छा से सती होती हैं। इस तर्क की आलोचनात्मक जांच पड़ताल की जानी चाहिए। यहीं से हम अपनी बात शुरू करेंगे। रूप कंवर के जलने की दुर्घटना पर विचार करने के साथ-साथ हम उन तर्कों को ही जांचने का प्रयत्न करेंगे जो इस अमानवीय तर्क को सही ठहराने का प्रयत्न करते हैं। परम्परा और राज्य बनाम सामुदायिक पहचान के बीच लगातार टकराव होता रहता है। इसमें महिलाओं का ही शोषण होता है। इकाई के अगले भाग में हम इसी पक्ष पर विचार करेंगे।

इस पक्ष पर विचार करने के लिए हम इतिहास में जाएंगे और यह पता करने की कोशिश करेंगे कि सामुदायिक प्रथाओं और कानूनी राज्य निर्देशों के बीच क्या अन्तर्विरोध रहा है। इनके संदर्भ में हम महिलाओं के मुद्दों पर विचार करेंगे। पितृसत्तात्मक समाज या पुरुष वर्चस्व वाले इस समाज की धारणा ने सती प्रथा को महिलाओं से जोड़ा है तथा औपनिवेशिक भारत और स्वतंत्र भारत के लगभग सभी समाजों में इस अमानवीय कृत्य को न्यायोचित ठहराया गया है। अन्त में हम उन सभी संस्थाओं की भूमिका पर विचार करेंगे जो विधवा, आत्मदाह या सती प्रथा को न्यायोचित ठहराने के लिए सक्रिय रूप से काम करते हैं।

14.2 न्याय न मिलना

1987 में राजस्थान के देवराला नामक स्थान में रूप कंवर नाम की विधवा को उसके पति के साथ जिन्दा जला दिया गया। अभी उसकी शादी हुए मात्र सात महीने हुए थे।

क्या आप जानते हैं कि विधवा को जलाना या आत्मदाह कानूनन अपराध है। सती प्रथा का प्रचार और महिमा मंडन भी कानून की दृष्टि में अपराध है। क्या कारण है कि इनके कानूनों और प्रावधानों के बावजूद महिलाओं से जुड़ी प्रथाएं समाज में चलती रहती हैं ?

भारत आनेवाले विदेशी अक्सर यह सवाल पूछते हैं कि –"भारतीय महिलाएं परम्परागत लिबास क्यों पहनती हैं जबकि पुरुष पश्चिमी परिधान पहनते हैं ?'' यह प्रश्न हम भारतीयों के मन में नहीं उठता है क्योंकि हम रोज भारतीय महिलाओं को परम्परागत पोशाकों में और पुरुषों को पैंट शर्ट में देखने के आदी हो चुके हैं। क्या आपको कभी इस अन्तर का एहसास हुआ है। इसी क्रम में हम अपने से यह सवाल पूछ सकते हैं कि कुछ प्रथाएं क्यों जिंदा रहती हैं। सती जैसी प्रथा बार-बार अपना सर क्यों उठाती है ? सती प्रथा की अन्तिम घटना अभी हाल में ही 1997 में घटित हुई है। कानूनन अपराध होने के बावजूद ऐसी घटना हमारे समाज में घटित होती रहती है। इस प्रकार की कुप्रथाओं को समाज के कुछ वर्गों का कैसे समर्थन मिलता है ?

इस इकाई में सती प्रथा पर विचार किया जाएगा। ऐसा लगता है कि इस प्रथा को समुदाय के कुछ लोगों का समर्थन प्राप्त है। परम्परा के नाम पर दुनिया में अभी भी कई ऐसी प्रथाएं चल रही हैं जो घातक, अमानवीय और अशोभनीय है। उदाहरण के लिए अफ्रीका के कुछ हिस्सों में महिला परिच्छेदन महिलाओं के लिए एक यातनापूर्ण और घातक प्रथा है। प्राणघातक और यातनापूर्ण होने के बावजूद यह प्रथा चल रही है। महिलाएं इस प्रकार की

प्रथाओं के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकतीं। इन तथाकथित परम्परागत प्रथाओं को विभिन्न मिथकों से जोड़ दिया जाता है। इसकी विभिन्न व्याख्याओं, विचारधाराओं में महिमा मंडन किया जाता है और पुरुष तथा महिलाओं की असमानता को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। कई महिलाएं व समुदाय इन प्रथाओं में आस्था रखने लगते हैं। 1987 की सती दुर्घटना के बाद न केवल महिलाओं के अधिकारों बल्कि समुदाय की पहचान, राज्य की भूमिका बनाम कानून और समुदाय जैसे प्रश्नों पर बहस शुरू हो गई है।

आइए, विधवा, आत्मदाह या तथाकथित सती प्रथा के पीछे शक्ति और राजनीति को पहचानें।

14.3 विधवा दाह की देवराला दुर्घटना

देवराला दुर्घटना के पहले भी महिलाएं सती हुई थीं परंतु इसके पक्ष और विपक्ष में इतनी तीव्र प्रतिक्रिया पहले नहीं हुई थी। ऐसा अनुमान है कि प्रत्येक वर्ष एक महिला को पति की चिता में जलना पड़ता है। देवराला दुर्घटना के चार महीने पहले ही पुलिस ने बनवारी नामक एक महिला को सती होने से रोका था तो फिर पुलिस रूप कंवर को क्यों नहीं रोक पाई। आइए, देखें कि वहां हुआ क्या था ?

14.3.1 रूप कंवर को जलाया जाना

अभी रूप कंवर के शादी हुए 7 महीने हुए थे कि उसके पति की मृत्यु हो गई। उसका पति मानसिक रूप से बीमार था। उसके पति की मृत्यु के बाद यह निर्णय लिया गया कि रूप कंवर सती होगी और इसके लिए इन्तजाम किए गए। सतीं हमेशा से एक महिमा मंडन का विषय रहा है इसलिए उस लड़की के परिवार वालों के ...ड़कर बाकी सारे लोगों को उसकी सूचना दी गई। आसपास के हजारों लोग इस घटना को देखने आए। शादी के लिबास में रूप कंवर को चिता में बिठा दिया गया और लकड़ी के लटठों और नारियल से उसे ढक दिया गया। रूप कंवर के अल्पायु देवर ने चिता में आग लगाई। सैकड़ों लोगों ने उसके ऊपर घी डाला ताकि वह पूरी तरह जल कर खत्म हो जाए।

इस खबर को सुनते ही अखबार के लोग वहं पहुंच गए। सती के आयोजकों ने उनका विरोध किया और उनके साथ हाथापाई भी की। अखबार वालों नें इस खबर से पूरी दुनिया को अवगत कराया। पड़ोसियों ने बताया कि रूप कंवर ने भागने की बहुत कोशिश की उसे नशीली दवा दी गई थी। उसे खींचकर जबरदस्ती चिता पर बिठाया गया। दूसरी ओर उसके ससुराल वालों का कहना था कि उनके लाख समझाने पर भी वह सती होने की जिद करती रही और वह अपने स्वेच्छा से सती हुई है। एक अहम सवाल यह है कि उस समय पुलिस और प्रशासन कहां थे ? एक गैर कानूनी कार्य खुले डंके की चोट पर किया जा रहा था। राज्य का कोई भी अधिकारी वहां उसे रोकने के लिए उपस्थित नहीं था।

14.3.2 प्रशासक और पुलिस

स्थानीय प्रशासकों को इस सती योजना का पता था। कहते हैं कि उन्होंने एक जीप भी भेजी थी जो रास्ते में उलट गई और देवराला न पहुंच सकी (देखें : राधा कुमार 1993) 3 दिन के बाद प्रशासन की आंख खुली और उन्होंने सती स्थल का मुआयना किया। सरकार इन सारे मामलों से उदासीन रही और उसने इस मुद्दे में कोई रुचि नहीं दिखाई। इस दुर्घटना की निन्दा करने की बात तो दूर सरकार ने इस घटना पर कोई वक्तव्य जारी नहीं किया। जब भी महिलाओं का मुद्दा सामने आता है सरकार चुप हो जाती है।

वह समुदाय के विचारों का खंडन नहीं करती बल्कि उनका हाथ मजबूत करती है। शाहबानो का मुकदमा इसका ज्वलंत उदाहरण है। सरकार ने किसी को गिरफ्तार नहीं किया। हालांकि इस बात के अनेक प्रमाण मौजूद थे कि रूपकंवर खुद सती नहीं हुई थी। डॉक्टर ने उसे नशीली दवा खिलाई थी और उसकी मृत्यु संदेहास्पद स्थिति में हुई थी।

14.3.3 सत्ती स्थल

इस दुर्घटना के बाद कई सरकारी अधिकारी और राजनीतिज्ञों ने सती स्थल का दौरा किया जो अब तक लोकप्रिय तीर्थ स्थल बन चुका था। आनेवाले तीर्थ यात्रियों की बढ़ती संख्या के कारण यह एक व्यापार का केंद्र बन गया। स्थानीय व्यापारियों ने तुरंत दुकाने लगाई और रूप कंवर की बनाई गई तस्वीरें बेचने लगे जिसमें रूप कंवर को अपने पति का सर गोद में रखकर खुशी-खुशी जलते दिखाया गया था। उसके चेहरे पर मुस्कान थी। यह चित्र बाद में निर्मित किया गया था। इसके अलावा वहां भक्ति संगीत के ऑडियो कैसेट भी बिकने लगें। उसके ससुर गांव के एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्होंने सती धर्म रक्षा समिति की स्थापना की और इस स्थल की देखेरेख करने और दान की व्यवस्था करने के लिए एक ट्रस्ट बनाया। हालांकि इस स्थल से प्राप्त दान का ठीक-ठीक ब्योरा नहीं प्राप्त किया जा सका पर यह अनुमान लगाया गया कि इस ट्रस्ट ने एक सप्ताह के भीतर 50 लाख रुपए इकट्ठे किए। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक लड़की को चिता में जलाकर खूब पैसा बनाया गया। नारीवादियों और समाज सुधारकों द्वारा लगातार मांग करने पर भी उस धन पर कब्जा नहीं किया गया वही (175)। इतना ही नहीं 10 दिन के बाद इस दुर्घटना को महिमा मंडित कर गौरवान्वित किया गया और जुलूस निकाला गया। कई बड़े राजनीतिज्ञ और प्रशासक इस जुलूस में शामिल हुए। ।

14.3.4 महोत्सव-सती का महिमा मंडन

रूप कंवर के सती होने के बाद जयपुर में सती धर्म रक्षक समिति की स्थापना की गई। बड़े अधिकारी, कामकाजी और भूमिधर वर्ग इस संगठन के सदस्य बने। वे प्रभावशाली लोग थे। देवराला के ट्रस्ट के साथ मिलकर उन लोगों ने चुनरी महोत्सव करने का निर्णय लिया। परम्परागत रूप से इस क्षेत्र में मृत महिला की ओढ़नी को अनुष्ठान के साथ जलाया जाता है परंतु यह समारोह इतने व्यापक स्तर पर कभी नहीं मनाया गया था। वस्तुत: इसके आयोजक अपनी एकता और परम्परा की शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे।

जयपुर में महिला कार्यकर्ताओं ने इस समारोह पर प्रतिबंध लगाने के लिए उच्च न्यायालय में याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को इसे रोकने का आदेश दिया। राज्य सरकार ने वहां वाहनों के जाने पर तो रोक लगा दी पर लोगों के जुलूस को जाने दिया। रास्ते में 500 पुलिसकर्मी सादे लिबास में खड़े थे ताकि लोगों की भावना को ठेस न पहुंचे। यह महोत्सव सम्पन्न हुआ। यह शोक और संवेदना का अवसर न था बल्कि इसमें शौर्य, शक्ति का प्रदर्शन किया गया और इसे विजय उत्सव के रूप में मनाया गया। पुरुष परम्परागत वेशभूषा में सजे थे और उत्साह में नारे लगा रहे थे। धीरे-धीरे सारा माहौल राजनीतिक अखाड़े में बदल गया। तलवार से लैस नौजवानों ने सती स्थल को घेर लिया। वे भक्ति के गीत नहीं गा रहे थे बल्कि राजनैतिक नारे के ढर्रे पर ही नारे लगा रहे थे। आइए, जरा इन नारों पर एक नज़र डालें।

1) "सती हो तो कैसा हो रूप कंवर जैसा हो" नेताओं के लिए भी इसी प्रकार के नारे लगाए जाते हैं।

2) इसके अलावा विजय स्तुति भी की गई। जैसे "एक दो तीन चार सती माता की जय जय कार"

3) हिन्दू धर्म की तर्ज पर भी नारे लगाए गए जैसे: "देश धर्म का नाता है सती हमारी माता है"। यह इस नारे पर आधारित है 'देश धर्म का नाता है गाय हमारी माता है'। (राधा कुमार,1993 : 175)

राधा कुमार ने इस दृश्य का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है, बताया है कि राजपूतों ने इसमें अपनी शक्ति और शौर्य का प्रदर्शन किया था। सती को समुदाय की परम्परा मानकर उन्होंने इसकी रक्षा करने की शपथ खाई और अपना शौर्य प्रदर्शन किया। उनका मानना था कि सती के खिलाफ किया जा रहा आंदोलन वस्तुतः राजपुतों के खिलाफ किया जाने वाला अभियान था और यह मानवाधिकार या महिलाओं के अधिकार के प्रश्न से नहीं जुड़ा हुआ था।

सवाल यह उठता है कि राजपूत समुदाय को ही इस अवैध कार्य करने से क्यों रोका गया। सती के मामले से जुड़े मुद्दों की छानबीन करने से इसकी तह में हम जा सकते हैं। जैसा कि हम बता चुके हैं कि इस मुद्दे से आधुनिकता बनाम परम्परा, अध्यात्म बनाम धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक राज्य का मुद्दा सामने आया।

14.4 बहस

सती के पक्ष और विपक्ष में बहस होने लगी। कुछ लोगों ने सती प्रथा को परम्परा के नाम पर सही ठहराया और कुछ लोगों ने मानवाधिकार के नाम पर इसका विरोध किया। आइए, इन मुद्दों पर अलग-अलग विचार करने का प्रयास करें।

14.4.1 समुदाय बनाम राज्य

इतिहास के पाठ में आपने ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अध्ययन किया है। आप जानते हैं कि उस समय कई सामाजिक सुधार किए गए थे। इन सामाजिक सुधारों को लेकर काफी बहस हुई थी। एक मत यह था कि किसी भी समुदाय की परम्पराओं में राज्य द्वारा हस्तक्षेप करना उचित नहीं है और दूसरी ओर लोगों का यह मानना था कि व्यक्तिगत स्तर पर तथा सामुदायिक स्तर पर इन कुरीतियों तथा अशोभनीय प्रथाओं को दूर करना अति आवश्यक है। भारत में कई प्रकार की संस्कृतियां और समाज मौजूद थे। जब भी इनमें किसी समाज की महिलाओं का मुद्दा सामने आता था, समाज की अस्मिता या धार्मिक अस्मिता पर खतरा बताकर उसका विरोध करते थे। इस प्रकिया में महिलाओं की आवाज दबा दी जाती है। महिलाओं के एकमत न होने से स्थिति और भी बिगड़ जाती है। सती के खिलाफ किए गए आंदोलनों में भी यही हुआ। यहां यह उल्लेखनीय है कि समुदाय के संदर्भ में समुदाय के सभी सदस्यों को सम्मिलित नहीं किया गया है वरन केवल प्रवक्ताओं को लिया गया है जो अनाधिकृत रूप से समुदाय की ओर से बोलते हैं। नीतिगत और बुद्धिजीवी स्तर पर सती के पक्ष में सबसे प्रमुख तर्क यह था कि राजपूतों के बीच सती एक आदर्श है और वह वहां की परम्परा है। इसलिए इसे मान्यता मिलनी चाहिए। इसे मान्यता न देने से राजपूतों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा (वही, 197)। राज्य भी बहुत पीछे न रहा और उसने भी परम्परा की दुहाई दी क्योंकि उसे राजपूत मतों की चिंता थी (वही)। राजपूत प्रभावशाली लोग हैं और उनके पास एक मजबूत वोट बैंक है। अतः सरकार उन्हें नराज नहीं करना चाहती। इसके अलावा यह भी कहा गया कि राज्य हिन्दुओं के खिलाफ काम करती है और अल्पसंख्यकों को खुश करने का प्रयत्न करती है। उदाहरण के तौर पर शाहबानो का मुकदमा सामने रखा गया, जहां एक धार्मिक समुदाय को अपने परम्परा का निर्वाह करने की छूट दी गई। सवाल यह था कि अगर उन्हें छूट दी गई तो हिन्दू बहुसंख्यकों को क्यों नहीं?

राधाकुमार के अनुसार ऐसा माना जाने लगा कि धर्म निरपेक्षता का मतलब परम्परा के नाम पर विभिन्न समुदाय को समान प्रतिनिधित्व देना है। यह धर्म निरपेक्षता नहीं बल्कि धर्मान्धता है और धर्म के नाम पर महिलाओं का शोषण करना है।

"1987-88 में नारीवादियों के सामने प्रतिनिधित्व राजनीति और राज्य का प्रश्न नए रूप में सामने आया। पूरी दुनिया में धार्मिक रूढ़िवाद ने न केवल महिलाओं के खिलाफ शोषण को वैध ठहराया बल्कि उन्हें उनके ही शोषण के लिए मंच पर जातिवाद (राजपूत) और धार्मिक (हिन्दू) मंच पर लामबंद किया। उन्होंने कहा कि वे ही हिन्दू महिला का सही प्रतिनिधित्व करती हैं और नारीवादी महिलाएं हिन्दू महिलाओं की सही प्रतिनिधि नहीं है। इसलिए महिलाओं के पक्ष में बोलने वाले ये लोग महिलाओं के हितैषी नहीं हैं और वे उनका प्रतिनिधत्व नहीं करते'' (वही: 179)। सती प्रथा के खिलाफ आंदोलन कर रही नारीवादियों को आधुनिक और शहरी कहकर नकार दिया गया और कहा गया कि भौतिकता की दुनिया में रमी ये स्त्रियां भारतीय नहीं हैं।

इसी संदर्भ में दूसरे मुद्दे भी सामने आए। आधुनिकता बनाम परम्परा का भी एक मुद्दा सामनें आया। इस पर हम अगले उपभाग में विचार करेंगे लेकिन इसके पहले आइए नीचे दिए गए विवरण पर नजर डालें जिसमें अफ्रीका की महिलाओं से संबंधित परम्परागत प्रथा की चर्चा की गई है।

क्या आप जानते हैं ?-1

ओलोला (परिच्छेदक) शताब्दियों से नाइजेरिया में माता-पिता अपनी बेटियों के जनानांग का परिच्छेदन करवाते हैं या काट देते हैं ताकि उन्हें स्वच्छंद संभोग से रोका जा सके। इस प्राचीन परम्परा के कारण लड़कियों को काफी शारीरिक कष्ट होता है। कई लड़कियां तो सदमे के दौर से गुजरती हैं तो कई के शरीर से काफी खून निकलता है। कुछ लड़कियों को संक्रमण का भी शिकार होना पड़ता है। इससे एड्स का भी खतरा बनता है। उन्हें भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक यातना से गुजरना पड़ता है। इन सबके बावजूद महिला परिच्छेदन पर कभी विचार नहीं किया जाता और न ही इस प्रथा को कभी चुनौती दी जाती है। बाहर के स्वास्थ्य संगठन इसमें हाथ डालने से कतराते हैं क्योंकि उनपर नाइजेरिया की संस्कृति और परम्परा पर हस्तक्षेप करने का आरोप लगाया जा सकता है।

इसके बावजूद इस प्रथा को दूर करने के लिए कई परियोजनाएं चल रही हैं। परम्परागत दाइयों और बच्चा जनने वाली औरतों की मदद से चली आ रही इस परम्परा को समाप्त करने की कोशिश की जा रही है। इन लोगों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है ताकि वे इस प्रथा की बुराइयों के बारे में लोगों को बता सकें। जब महिलाओं को यह बताया गया कि परिच्छेदन से कोई लाभ नहीं होता तो उन्हें बहुत गुस्सा आया। अंततः उनका क्रोध नियंत्रित हो गया और वे स्वयं इस प्रथा के विरुद्ध प्रचार करने लगीं।

इस परियोजना से यह पता चलता है कि रूढ़िवादी सांस्कृतिक प्रथा और परम्पराओं को चुनौती के रूप में स्वीकार कर दूर किया जा सकता है। हाथ पर हाथ धरकर बैठने और उन्हें दूर से देखते रहने पर बात नहीं बनती।

14.4.2 परम्परा और आधुनिकता

उपर्युक्त उदाहरण के समान और भी कई उदाहरण मिल जाएंगे, जहां परम्परा के नाम पर पुराने रीति रिवाजों और रूढ़ियों को जारी रखने की वकालत की जाती है। परम्परा के

निर्वाह का बोझ महिलाओं को ही उठाना पड़ता है और अक्सर इसमें उनके मानवाधिकारों और सम्मान का हनन होता है। जनतांत्रिक ढांचे और बहुसांख्यिक परिवेश में, जहां प्रत्येक समुदाय की अलग पहचान होती है, परम्परा और आधुनिकता का विवाद चलता रहता है और इसका दुष्परिणाम परम्परा के बोझ तले दबे महिलाओं को झेलना पड़ता है। परम्परा के ही नाम पर रूप कंवर को सती बनाने के नाम पर जला कर मार डाला गया।

विभिन्न महिला संगठनों और कार्यकर्ताओं ने सती प्रथा के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। राजपूत समुदाय ने इस आंदोलन का यह कहकर विरोध किया कि शहर में रहने वाले ये कार्यकर्ता उनकी परम्परा में हस्तक्षेप कर रहे हैं। वे अपनी परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं और महिलाएं अपना धर्म निभा रही हैं। सती धर्म रक्षा समिति और रानी सती सर्व संघ ट्रस्ट ने राजपूत की शौर्य परम्परा की बात उठाई जहां हिन्दू परम्परा में पुरुष युद्ध भूमि में शाहीद होते थे और उनकी पत्नियां अपनी रक्षा के लिए घर में आत्महत्या कर लेती थीं (जौहर और सती) (वही: 176)। यहां एक बात नहीं समझ में आती है कि आज उस तरह की युद्ध भूमि का कोई संदर्भ नहीं है और पुरुष हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए युद्ध नहीं लड़ते तो महिलाओं के सती होने का क्या औचित्य है। सती का विरोध करने वाले लोगों ने महिलाओं के जलाए जाने का विरोध किया। अब इस परम्परा की कोई प्रासंगिकता नहीं रह गई है। अब इस कुरीति का प्रचार करना अपराध है। विधवा महिला को जलाकर मार डालना एक दंडनीय अपराध है फिर भी परम्परा के नाम पर इसके समर्थक इसे जिन्दा रखना चाहते हैं।

हमेशा परम्परा के नाम पर महिलाओं की ही बलि चढ़ाई जाती है। रोजमर्रा के जीवन में भी आप देखते होंगे कि परम्परा के निर्वाह करने का दायित्व महिलाओं पर ही होता है।

अनुभव से सीखिए – 1

अपने आसपास की महिलाओं से बातचीत कीजिए और उनके समाज में मौजूद रीति रिवाजों और अनुष्ठानों के महत्व के बारे में उनके विचार जानिए। उदाहरण के लिए उनसे आप करवाचौथ के बारे में बात कर सकते हैं और इस संबंध में आप उनके विचार जान सकते हैं।

अब हम इस बात पर विचार करने जा रहे हैं कि सती पर हुए विवाद में किस प्रकार परम्परा और आधुनिकता की बात सामने आई। यह विवाद औपनिवेशिक युग से ही चला आ रहा है। हम यह जानते हैं कि सुधार आंदोलनों ने महिलाओं के मुद्दे को उठाया और उन संस्थाओं और प्रथाओं का विरोध किया जिनके द्वारा महिलाओं को दबाया जाता है। औपनिवेशिक काल में सती का मुद्दा सामने आया था। आइए, इस पर संक्षेप में विचार करें और इसके अन्तर्विरोध को देखने का प्रयत्न करें। उस समय सती प्रथा के उन्मूलन का कड़ा प्रतिरोध हुआ था (आधार पाठ्यक्रम में शामिल इतिहास संबंधी इकाई देखिए)।

जरा सोचिए – 2

1) कुछ ऐसे रीति रिवाजों का उल्लेख कीजिए जिसमें महिलाओं के आत्म बलिदान और त्याग को आधार बनाया गया है।

2) क्या महिलाएं आत्म बलिदान करना चाहती हैं अथवा उनके मन में यह बात डाल दी जाती है कि त्याग और बलिदान महिलाओं का आदर्श है?

3) क्या आप मानते हैं कि विधवा आत्मदाह की प्रथा केवल उच्च जाति के लोगों के बीच ही मौजूद है निम्न जातियों के बीच नहीं। आपका ऐसा सोचने का क्या आधार है?

14.5 सती या विधवा आत्मदाह पर प्रतिबंध

ब्रिटिश सरकार ने 1829 में सती प्रथा को समाप्त कर दिया था 'सती प्रथा के उन्मूलन पर लम्बी बहस चली और उसमें 8,134 महिलाओं के सती होने की घटनाओं का उल्लेख किया गया। यह आत्मदाह केवल उच्च जाति हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं था। इस बहस के परिणामस्वरूप सती विरोधी कानून बनाया गया' (मणि 1989:88)। सती से सम्बद्ध बहस में महिलाओं के प्रश्न पर विचार किया गया। इतिहास के सूक्ष्म विश्लेषण से यह पता चलता है कि सती के नाम पर विचारधाराओं की टक्कर हुई। एक ओर 'भारतीय अस्मिता' का प्रश्न उभरकर सामने आया। पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता की बात सामने आई। पूरब के अध्यात्म और पश्चिम के भौतिकवाद को बहस का मुद्दा बनाया गया और यह भी बात सामने आई कि भारतीय परम्परा को जीवित रखा जाना चाहिए और महिलाओं को इस परम्परा का पालन करना चाहिए।

लता मणि ने अपने लेख 'कंटेनसियस ट्रेडिशन' (विवादास्पद परम्पराएं) में लिखा है कि महिलाओं को परम्परा का प्रतीक बना दिया जाता है और परम्पराओं पर विचार करते समय मुख्य रूप से समाज में महिलाओं के अधिकार और हैसियत की बात की जाती है। इस प्रकार के अन्तर्संबंध के बावजूद या इसके कारण कई मामलों में ये बहसें मुख्यत: महिलाओं के बारे में नहीं होतीं बल्कि सांस्कृतिक परम्पराओं पर ही बल दिया जाता है (मणि 1889:91)।

भारतीय संस्कृति और परम्परा को जीवित रखने और पश्चिम खासकर भौतिकवादी पश्चिम से अपनी अस्मिता को अलग करने की जरूरत पर बल दिया जाता है। इसके साथ ही साथ तथाकथित 'सामाजिक कुरीतियों' के उन्मूलन की भी बात की जाती है। कई लेखों में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि गौरवमयी भारतीय परम्परा के पतन के इतिहास के बारे में कई लेख लिखे गए हैं। सती, बाल विवाह, शिक्षा का अभाव, महिलाओं का पिछड़ापन आदि ऐसे कारण हैं जिसमें भारतीय राज्यों का पतन हुआ और इस ह्रासोन्मुख समाज पर विदेशियों को अपना सत्ता जमाने में खास दिक्कतों का सामना नहीं करना पड़ा।

'भारतीयता' की बात करने वाले बुद्धिजीवी, राष्ट्रवादी समाज सुधारक और अन्य लोग परम्परा और खासकर लुप्त परम्परा पर बल देते हैं। यहां अहम सवाल यह है कि भारतीय परम्परा को छोड़े बिना महिलाओं की स्थिति किस प्रकार सुधारी जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय परम्परा का सारा बोझ महिलाओं के कंधे पर है। आइए, परम्परा के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति पर विचार किया जाए।

14.5.1 परम्परा और महिला

जैसा कि हमने पहले भी जिक्र किया है, एक प्रमुख प्रश्न यह है कि आधुनिक, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक दृष्टि से प्रगति करने के साथ-साथ हम भारतीय पहचान और इसकी आन्तरिक अध्यात्मिकता को कैसे जीवित रख सकते हैं। इस क्रम में कई प्रकार के विरोध सामने आए। जिसका जिक्र पार्थ चटर्जी ने किया है: "राष्ट्रवाद पर विचार करते समय भौतिकवाद और अध्यात्मवाद को एक दूसरे से मिलाने की कोशिश की गई। इसके अलावा बाह्य और अन्तर्गत का द्विविभाजन उभरकर सामने आया। भौतिक जीवन बाहरी दिखावा है..... अध्यात्म आन्तरिक क्षेत्र है। रोजमर्रा के जीवन में इस बाह्य और आन्तरिक अवधारणा का प्रतिफलन घर और बाहर के रूप में हुआ है" (चटर्जी, 1989:238)।

बाहर की दुनिया पुरुषों की दुनिया है जबकि घर महिलाओं का कार्य क्षेत्र है। बाहर की दुनिया भौतिकवादी दुनिया है जिसका क्षेत्र घर से बाहर है। यहां पश्चिम के औपनिवेशकों

का सामना करना है। "यह दमन और अत्याचार का स्थान है। जहां औपनिवेशकों ने अपनी संस्कृति अपनी वेश भूषा लाद दी है। किंतु हमें आंतरिक संसार का संरक्षण करना था, महिलाओं को विशेष रूप से इस परंपरा के संरक्षण का उत्तरदायित्व सौंपा गया जिसमें पारंपरिक वेशभूषा भी सम्मिलित थी। यही वह स्थान है, जहां राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी जाएगी। इसके लिए हमें पश्चिम से आधुनिक विज्ञान और भौतिक दुनिया का ज्ञान प्राप्त करना होगा। हमें सम्राज्यवादियों से लड़ने के लिए उनके अस्त्रों और शक्तियों का उपयोग करना होगा और अन्ततः उन्हें देश से बाहर निकालना होगा। परंतु ..... सबसे महत्वपूर्ण बात अपनी राष्ट्रीय संस्कृति की आन्तरिकता की सुरक्षा, संरक्षा और मजबूती है।

14.5.2 भारतीय महिला

पश्चिम भौतिक संस्कृति का सामना करने के लिए भारतीय महिला की मूर्ति निर्मित की गई। इस प्रयास में 'भारत नारी' का पुनर्निर्माण किया गया। पुरुष सत्तात्मक या पितृसत्तात्मक समाज ने महिलाओं के बारे में मध्यवर्गीय धारणाओं को आधार बनाकर महिला की एक मूर्ति बनाई जिसने तथाकथित परम्परा का निर्वाह किया। कथित इनमें कुछ अपवाद एवं विविधताएं अवश्य थी किंतु कुल मिलाकर परंपरा के इस पक्ष के संरक्षण का प्रयास किया गया। पूरे भारत में और खासकर बंगाल में प्रकाशित मध्यवर्गीय साहित्य में महिलाओं की एक त्यागमई छवि निर्मित की गई। बुदेव मुखोपध्याय ने 'पारिवारिक प्रबंध' में लिखा है:

> "अंग्रेजों के जीवन पद्धति की नकल और बाहरी चकाचौंध में हमारी आंखे अंधी हो गई हैं और हमारे घर नष्ट हो रहे हैं। पुरुष अंग्रेजी सीखकर साहब बन जाते हैं। महिलाएं अंग्रेजी तो नहीं सीख पातीं पर वे उनकी अनुगामिनी बनना चाहती हैं। अब महिलाएं खाना नहीं बनातीं, झाड़ू नहीं देतीं, बिस्तर नहीं सहेजती.....सब कुछ नौकरों और दाइयों से करवाया जाता है। महिलाएं केवल किताबें पढ़ती हैं, ताश खेलती हैं। इसका परिणाम क्या हुआ है ? इससे पूरा घर अस्त व्यवस्त हो गया है, लोगों को ठीक से खाना नहीं मिलता, लोगों का स्वास्थ्य खराब हो गया है।

उनका यह भी मानना है कि महिलाओं को प्रशिक्षित करना जरूरी है ताकि वे इस संकट से उबर सकें (चटर्जी से उद्धृत, 1989:241)। यह कैसे हो सकता है? महिलाओं के लिए इतने ज्यादा नियम और कायदे कानून बना दिए गए हैं कि इससे बाहर निकलना उनके लिए मुश्किल है। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि उनमें त्याग, तप, बलिदान, क्षमा आदि मानवीय गुण भरपूर मात्रा में उपलब्ध हों। यहां तक कि भारतीय नारी के परिधान भी पहले से ही निर्धारित होते हैं। महिलाएं साड़ी के साथ साया और ब्लाउज भी पहनती हैं। निम्न जाति की महिलाएं अक्सर ये परिधान नहीं पहनती हैं। वे केवल साड़ी ही पहनती हैं। इन महिलाओं के सामने भारतीय नारी के आदर्श पालन का जिम्मा होता है। पुरुष घर से बाहर निकलते हैं और भौतिक दुनिया में कार्यरत होते हैं तथा आधुनिक जीवन की रीति रिवाजों को ग्रहण भी करते हैं परंतु भारतीय महिलाओं के ऊपर अपने परम्परा निर्वाह का जिम्मा थोप दिया जाता है। इसलिए जब विदेशी भारत आते हैं तो उन्हें पुरुषों और महिलाओं के परिधानों में एक बहुत अलगाव नजर आता है। अधिकांश पुरुष तो पश्चिमी तर्ज पर पैंट और शर्ट पहनते हैं जबकि अधिकांश भारतीय महिलाएं भारतीय परिधान ही पहनती हैं। क्या इसका कारण यह है कि पुरुषों के लिए बाहरी और भौतिक जीवन तथा महिलाओं के लिए परम्परा, घर परिवार, घर की चारदीवारी तय कर दी गई है। "मनुष्य अपने लिए और अपने समाज के लिए एक ऐसे आदर्श बना लेता है जो उन्हें श्रेष्ट साबित

कर सके। इसी क्रम में सभ्यता और संस्कृति का निर्माण होता है। मनुष्य स्वयं में तथा अपनी सभ्यता में कुछ ईश्वरीय गुणों का सृजन करना चाहता है जो पाशविक व्यवहार के विपरीत हों। परंतु इन प्रतीकों की अराधना को पुरुषों की तुलना में अधिक विकसित करती हैं और पंसद करती हैं। पुरुष तो आदर्श बनकर मुक्त हो जाता है। इस आदर्श का निर्माण महिलाओं को ही करना होता है'' (वहीं: 242)। वे आगे कहते हैं कि "आर्य व्यवस्था में पत्नी देवी है और यूरोपीय व्यवस्था में वह सहभागी और साथी है'' (वहीं: 243)।

14.5.3 विधवा को जलाने का तर्क

यदि पत्नी देवी है तो विधवा को जलाया जाना कहां तक न्यायसंगत है।

किसी भी प्रथा की न्यायसंगतता ढूंढने के लिए धार्मिक ग्रंथ या चली आ रही प्रथा का सहारा लिया जाता है। तथाकथित हिन्दू धर्म ग्रंथ पूरी हिन्दू जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती। हिन्दू धर्म का ईसाई या इस्लाम धर्म के समान कोई धर्म ग्रंथ नहीं है। हिन्दू धर्म वस्तुत: कई परम्पराओं से मिलजुल कर बना है और जिनकी प्रवृत्ति एक जैसी नहीं है।

> क्या आप जानते हैं ?–2
>
> **सती उन्मूलन के खिलाफ हिन्दुओं की याचिका (19 दिसम्बर 1829)**
>
> हम आपसे कुछ अनुरोध करना चाहते हैं। हमने सुना है कि कलकत्ता में रहने वाले कुछ हिन्दुओं ने सारे हिन्दुओं की भावनाओं और विचारों को प्रतिनिधित्व करने का दावा किया है। उन्होंने सती प्रथा को समाप्त करने की याचिका दी है। हमें यह भी मालूम हुआ है कि विधानसभा में यह प्रस्ताव पारित होने वाला है। हम महामहिम से अनुरोध करना चाहते हैं कि यह हिन्दुओं के धर्म और रीति रिवाजों में सीधा हस्तक्षेप है। इस हस्तक्षेप को हिन्दू आसानी से बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे।
>
> अनन्त काल से अन्य धर्मों के समान हिन्दू धर्म की स्थापना में अनेक परम्पराएं और विचारों का योगदान रहा है। पुरातन काल से चली आ रही इन परम्पराओं को हिन्दू महिलाएं अपनी खुशी से स्वीकार करती हैं। वे अपने पति की आत्मा की शांति के लिए बलिदान देती हैं। इस बलिदान और आत्मदाह की प्रथा को ही सती कहा जाता है जो न केवल भारतीय महिलाओं का पवित्र कर्तव्य है बल्कि यह उनके अभिमान की बात है। यह धर्म के प्रति उनके आस्था का प्रतीक है। हम आपसे सविनय अनुरोध करते हैं कि इस प्रकार का हस्तक्षेप न्यायसंगत नहीं है.....''
> (राधा कुमार कृत, 1993 'टेकेन फ्रॉम हिस्ट्री ऑफ डुविंग')

परम्परा पर प्रश्न करना उचित नहीं माना जाता है। ऐसा करना स्वयं समुदाय की अस्मिता पर प्रश्न चिह्न लगाना होता है। इसी दुविधा के कारण महिलाओं को तथाकथित धर्म और समुदाय के सम्मान और पहचान का पक्ष लेना पड़ता है। रूप कंवर के मामले में भी यही हुआ। जब कुछ महिला संगठनों ने इसका विरोध किया तो कुछ संगठनों ने सती के समर्थन में इस प्रकार के आंदोलन का विरोध किया।

अपने अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट है कि औपनिवेशिक काल में सती पर हुई बहस में भारतीय महिलाओं की अस्मिता और परम्परा की प्रमुख भूमिका रही है। [illegible] के खतरे और दुष्प्रभाव का खतरा दिखाकर तथाकथित परम्परागत मूल्यों के संरक्षण की बात की गई। रूप कंवर सती पर हुए विवाद में भी इस तर्क की अनुगूंज सुनाई दी। इस प्रकार धर्म निरपेक्ष और सामुदायिक कानून के बीच का अन्तर्विरोध उभरकर सामने आया। परम्परा

और सामुदायिक धर्म के नाम पर महिलाओं के खिलाफ अत्याचार किया जाता रहा है। इस पूरी बहस में महिलाओं के वास्तविक प्रश्न को भुला दिया गया। महिलाओं के त्याग और बलिदान में विश्वास रखने वाली पुरुष सत्तात्मक संस्थाओं ने आपस में मिलकर विधवा दहन के प्रचार-प्रसार की रणनीति बनाई। कोई भी महिला अपनी इच्छा से खुशी-खुशी आग में नहीं जले। इसलिए यह कहा जाता है कि 'सत्त' गुण वाली स्त्री ही सती हो सकती है। उसे रोकना उसकी इच्छा का अपमान करना होगा। 'सत्त' की शक्ति से विभूषित स्त्री में आत्मदाह की शक्ति आ जाती है। उसे आग में जलना भयावह नहीं लगता। इसी 'सत्त' के नाम पर महिलाओं को सार्वजनिक रूप से जला दिया जाता है।

इस प्रकार एक विधवा को सार्वजनिक रूप से जलाकर उसे देवी का दर्जा दे दिया जाता है और उसकी पूजा की जाती है। इस बलिदान के पीछे सामुदायिक पहचान की राजनीति होती है। इससे पैसा भी कमाया जाता है। सती स्थान को देवी स्थल बनाकर लोगों को ठगा जाता है और खूब पैसा कमाया जाता है।

14.6 सती संबंधी विश्वास, प्रथाएं और संस्थाएं

अब तक आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि विभिन्न तत्व, व्यवहार संस्थाओं और विचारधाराओं के समर्थन से सती प्रथा को न्यायसंगत ठहराने की कोशिश की जाती रही है। परम्परा के नाम पर महिलाओं के अधिकारों का हनन किया जाता रहा है। सती प्रथा से संबंधित विश्वास और विचारधारा का संगठित पुनरुत्पादन किया गया और यह एक संगठित समूह ने किया, जिसमें संस्थाएं , लोग मंदिर, न्यास, व्यापारी तथा सामुदायिक नेता सम्मिलित थे जिन्होंने राज्य के प्रशासनिक तंत्र का अपनी चालाकी से समर्थन प्राप्त किया। संघारी और वैद्य लिखते हैं कि "विचारधाराओं और विश्वासों के उत्पादन और पुनरुत्पादन तथा कुछ लोगों के हितों के लिए विधवादाह को एक त्योहार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ताकि इसे बाद में भुनाया जा सके। विधवादाह को इस प्रकार आयोजित किया जाता है कि वह लोगों के दिमाग में अंकित हो जाए और इसे इस रूप में प्रचारित किया जाता है कि यह क्षेत्रीय 'इतिहास' का एक हिस्सा बन जाए। इन संस्थाओं की सहायता के बिना विधवादाह को व्यवस्थित रूप में लोगों के दिमाग में नहीं बिठाया जा सकता" (संघारी और वैद्य, 1996:241)

जरा सोचिए – 2

1) ऐसी घटनाओं और रीति रिवाजों का उल्लेख कीजिए जिनमें परम्परा के निर्वाह का दायित्व महिलाओं पर होता है।

2) सती प्रथा और कानूनी रोक के बावजूद रूप कंवर को जलाने से रोकने के लिए आपकी राय में पुलिस ने कोई कदम क्यों नहीं उठाया?

3) क्या किसी समुदाय को परम्परा और रीति रिवाज को जारी रखना चाहिए? सोदाहरण अपना मत दीजिए।

14.7 सारांश

इस इकाई में हमने एक समुदाय की भावनात्मक परम्परा और रीति रिवाजों तथा महिलाओं पर पड़ने वाले इनके प्रभावों का संबंध स्थापित करने की कोशिश की है। सती प्रथा का उदाहरण सामने रखकर हमने इन पक्षों और जटिल प्रथाओं का परीक्षण किया है। सती या

विधवादाह मानवाधिकार किसी का हनन है, व्यक्ति के जीने के अधिकार का उल्लघन है। परतु परम्परा और विचारधारा के आधार पर विधवाओं को सार्वजनिक रूप से जलाना संभव हो पाता है। इसमें पूरे समुदाय की सक्रिय भागीदारी होती है और कई संस्थाएं इसके समर्थन में उठ खड़ी होती हैं। रूप कंवर के मामले में पुलिस, राज्य, व्यापारी वर्ग धर्म और सती को देवी के रूप में पूजा बलिदान के प्रतीक के रूप में करने की प्रथा लोगों की चेतना में अंकित करने में योगदान दिया।

इन प्रथाओं को नजदीक से देखने पर पता चलता है कि इसमें बहुत से लोगों और समुदाय का हित जुड़ा होता है। इसमें राजपूत और बनिया समुदाय, राज्य तथा धार्मिक संस्थाओं का हित जुड़ा हुआ था। ऐसे सभी कार्यों में महिलाओं की ही बलि चढ़ाई जाती है।

"कानून की आंखों के सामने यह अपराध खुले रूप में किया गया। मौजूदा कानून का उल्लंघन किया गया जिससे सामुदायिक अपराधों से निपटने में मौजूदा कानूनों की अक्षमता का पता चलता है। धर्म और पितृसत्तात्मक विचारधाराओं के गठबंधन से ये अपराध किए जाते हैं। इस संदर्भ में मौजूदा कानून को लागू करने की दृढ़ इच्छा शक्ति का भी अभाव दिखता है" (संघारी और वैद्य 1996)।

14.8 शब्दावली

अन्तर्विरोध : दो सिद्धांतों के बीच विरोध होने के कारण वे एक दूसरे का विरोध करते हैं।

एकरूप : एक ही प्रकृति के अलग-अलग नहीं।

विचारधारा : कुछ प्रथाओं पर आधारित सोच या विश्वास जो चेतन या अचेतन रूप में लोगों को प्रभावित करते हैं।

वैध : किसी प्रथा या विश्वास को कानूनी जामा पहनाना या इसे इस रूप में प्रस्तुत करना ताकि लोग उसे स्वीकार कर लें।

परम्परा : किसी समुदाय की अतीत काल से चली आ रही मान्यताएं या सांस्कृतिक रीति रिवाज।

14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कुमार, राधा 1993 *हिस्ट्री ऑफ डुविंग*, काली फॉर वुमैन, नई दिल्ली।

यावारडेना, के ऐंड *मालाठी डे एलविस* (संपादन) 1996। *इम्बोडिड वायलेंस: काउंसेलिंग सेक्सुवालिटी इन साउथ एशिया*। काली फॉर वुमैन। नई दिल्ली।

इकाई 15 धर्म और व्यक्तिगत कानून : एकरूपता बनाम अनेकरूपता, शाह बानो तथा मेरी रॉय का मुकदमा

रूपरेखा

15.0 लक्ष्य और उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 विधि निर्माण : परिवर्तन की ओर
  15.2.1 व्यक्तिगत कानून
  15.2.2 व्यक्तिगत कानून में परिवर्तन का विरोध
  15.2.3 धर्म और सार्वजनिक-निजी क्षेत्र
15.3 विवाह व्यवस्था
  15.3.1 मुसलमानों में विवाह
  15.3.2 ईसाइयों में विवाह
15.4 उत्तराधिकार
  15.4.1 मुसलमान महिलाएं और उत्तराधिकार
  15.4.2 ईसाई महिलाओं में उत्तराधिकार
15.5 जीवन-यापन
  15.5.1 मुसलमान महिलाओं का जीवन-यापन
  15.5.2 ईसाई महिलाओं का जीवन-यापन
15.6 व्यक्तिगत कानूनों का मुद्दा
15.7 शाह बानो मुकदमा
  15.7.1 शाहबानो मुकदमे में निर्णय
  15.7.2 समुदाय की प्रतिक्रिया
15.8 मेरी रॉय का मुकदमा
  15.8.1 केरल में ईसाई और व्यक्तिगत कानून
  15.8.2 मुकदमा
15.9 धर्म और व्यक्तिगत कानून : एकता और अनेकता
  15.9.1 एकरूप नागरिक संहिता
15.10 सारांश
15.11 शब्दावली
15.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.0 लक्ष्य और उद्देश्य

इस इकाई में हम विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों अर्थात विभिन्न धार्मिक समुदायों के अलग-अलग पारिवारिक कानूनों के बारे में चर्चा करेंगे। इन कानूनों के विश्लेषण के माध्यम से हम इस मुद्दे पर प्रकाश डालेंगे कि महिलाएं कैसे विविध कानूनों की समस्याओं के कारण संघर्ष करती है। कुछ अर्थों में नारी की स्थिति सार्वभौमिक है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों विशेषकर महिलाओं से संबंधित जानकारी हासिल कर सकेंगे,

- विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों का समालोचनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे,
- महिलाओं की स्थिति के संबंध में इन कानूनों की महत्ता को समझ सकेंगे, और
- मुकदमों के अध्ययन से महिला संबंधी प्रश्नों को विस्तार से समझ सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई में व्यक्तिगत कानून के संबंध में शाह बानो और मेरी रॉय के मामलों (मुकदमों) पर चर्चा की जाएगी। अलग-अलग समुदायों पर अलग अलग समुदाय कानून लागू होते हैं। ये कानून पुरानी परम्पराओं, प्रथाओं और मान्यताओं पर आधारित है। सभी परम्परागत प्रथाएं और धारणाएं पुरुष और महिला के साथ एक जैसा व्यवहार नहीं करते हैं। जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि अनेक धार्मिक परम्पराएं महिलाओं को नगण्य समझती हैं, और जो धर्म के उदारवादी हैं, उनकी व्याख्या इस प्रकार से की जाती है जिससे व्यवहार में महिला के पुरुष के समान स्थिति प्राप्त नहीं होती है। इसे उत्तराधिकार, तलाक देने, अभिभावक बनने आदि अधिकार में देखा जा सकता है।

समुदाय की भावनाओं को भड़काकर और उन्माद फैलाकर व्यक्तिगत कानूनों में परिवर्तन का सख्त विरोध किया जाता है इससे विभिन्न समुदायों में भिन्नता के मुद्दे को उठाया जाता है; जिससे धर्म के आधार पर महिलाओं को अलग न किया जा सके।

व्यक्तिगत कानूनों में परिवर्तन के लिए किए गए कुछ शुरुआती प्रयासों के अध्ययन से हम अपनी चर्चा शुरू करेंगे। अगले भाग में हम व्यक्तिगत कानूनों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे। हम विभिन्न समुदायों में विवाह से संबंधित कानूनों का परीक्षण करेंगे। इसके बाद हम उत्तराधिकार और दाय से संबंधित कानूनों की चर्चा करेंगे, जिसके बाद जीवन यापन पर चर्चा की जाएगी।

आपको इन कानूनों की जानकारी देने के बाद हम शाह बानो के मुकदे और इससे उत्पन्न विवाद की चर्चा करेंगे। इससे अगले भाग में हम मेरी रॉय के मुकदमे पर चर्चा करेंगे।

इन दो मुकदमों पर चर्चा करने के बाद व्यक्तिगत कानूनों और एकरूप नागरिक संहिता समालोचनात्मक विश्लेषण करना हमारे लिए आवश्यक हो जाता है।

15.2 विधि निर्माण : परिवर्तन की ओर

मांग विशेषकर लम्बे समय से शोषित महिलाओं की मांग को पूरा करने के लिए विधि निर्माण एक रास्ता है। परिवर्तन के बावजूद हम देखते हैं कि व्यक्तिगत कानून स्त्री पुरुषों के प्रति अनेक प्रकार से भेदभाव रखता था।

महिलाओं को अक्सर परिवार के नजरिए से देखा जाता है और उसकी पूरी जिन्दगी और उसका पूरा व्यक्तित्व इसी से परिभाषित और परिचालित होता है। इसलिए इसी परिप्रेक्ष्य में 80 के दशक के आरंभ में परिवार में महिलाओं के संबंधों को व्यक्तिगत कानूनों के अनुसार विश्लेषित करने का प्रयास किया गया। व्यक्तिगत कानून और कुछ नहीं वरन विभिन्न धार्मिक समुदायों के विभिन्न पारिवारिक कानून है।

15.2.1 व्यक्तिगत कानून

अंग्रेजों ने प्रत्येक समुदाय को उसके कानून द्वारा चलाने की नीति अपनाई अर्थात उन्होंने हिन्दू कानून, मुसलमान कानून, ईसाई कानून और फारसी कानून लागू किए। इस नीति के

पीछे अनेक कारण हो सकते हैं। इसमें से एक है - हर समुदाय को अलग तथा विभाजित रखना। लेकिन इसके पीछे उन्होंने यह तर्क दिया कि अंग्रेज समुदायों के व्यक्तिगत जीवन और धार्मिक परम्पराओं में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं।

19वीं सदी के शुरू में, व्यक्तिगत कानूनों में कुछ सीमान्त परिवर्तन किए गए, जिससे सुधारों को बल मिला। बाल-विवाह, सती हिन्दू विधवा विवाह, सम्पत्ति में हिन्दू महिला का अधिकार जैसे मुद्दों पर परिवर्तन किए गए। मुसलमानों के व्यक्तिग कानून में भी परिवर्तन करने की मांग की गई। इसमें मुस्लिम महिलाओं की तलाक देने का अधिकार शामिल है।

व्यक्तिगत जीवन में और परम्पराओं में हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत एक अलग प्रकार की व्याख्या थी, जिसका एक कारण यह था कि देश की विभिन्न भागों में धार्मिक समुदायों की भिन्न-भिन्न परम्पराएं और रीति-रिवाज थे। इसे लिपिबद्ध करने और एकरूप व्यक्तिगत कानून बनाने की मांग की गई। मुस्लिम व्यक्तिगत कानून में शरियत अधिनियम 1937 द्वारा आंशिक रूप से इसमें संशोधन किया गया। हिन्दू संहिता विधेयक का काफी विरोध किया गया।

15.2.2 व्यक्तिगत कानून में परिवर्तन का विरोध

सबसे पहले 30 के दशक में नारीवादियों द्वारा संशोधित, एकरूप और सर्वमान्य कानून बनाने की मांग की गई। श्री बी.एन.राव की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने 1944 में एक प्रारूप संहिता प्रस्तुत किया। इस विधेय के अंतर्गत विवाह की उम्र बढ़ाई गई, महिलाओं को तलाक, जीवन यापन और उत्तराधिकार का अधिकार दिया गया तथा दहेज को स्त्री धन के रूप में माना गया। इस विधेयक का अनेक वर्गों में विरोध किया गया लेकिन सुधारवादियों और नारीवादियों ने इसका स्वागत किया। काफी समय तक इस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। लेकिन 1955-56 में इसके अनेक खंडों को शांतिपूर्वक पारित करा दिया गया।

ऊपर जैसी प्रतिक्रियाएं अभी भी सुनने को मिलती हैं, जैसा कि हम शाह बानो और मेरी रॉय के मुकदमें में देख सकते हैं। हम इन दोनों पर आगे चर्चा कर रहे हैं। व्यक्तिगत जीवन और परम्पराओं को पवित्र और साम्प्रादायिक कानूनो से अलग माना जाता है। और इसमें किए गए प्रत्येक परिवर्तन को लोगों की भावनाओं और समुदाय की पहचान के विरुद्ध माना गया। धार्मिक परंपरा पर किसी तरह की टीका टिप्पणी को इस समुदाय और उसकी धार्मिक परंपरा के साथ विश्वासघात के रूप में देखा गया।

15.2.3 धर्म और सार्वजनिक-निजी क्षेत्र

जुल्म और भेदभाव की जड़ें समाज की सामाजिक धार्मिक प्रणाली में अंतर्निहित है। इस पहलू पर हम इकाई 3, 1 और डब्ल्यू ई डी -1 की इकाई 11 एवं 12 में चर्चा कर चुके हैं। यह कहना व्यर्थ है कि परंपरागत प्रथाएं और धार्मिक मान्यताएं समानतावाद से बहुत दूर है। धर्म/परंपरा को समुदाय की पहचान का अंतिम गढ़ माना जाता है जिसे आधुनिकता और अन्य संस्कृतियों की आधिपत्य के आक्रमण से बचाने आवश्यकता है। आधुनिकता और परंपरा के इस विभाजन में महिलाओं को परंपरा के खजाने के रूप में देखा जाता रहा है। इसलिए परंपरा की तरह महिलाओं का सामुदायिक पहचान और परंपरा की सीमा में रहना आवश्यक है।

महिलाओं के खिलाफ भेदभाव किए जाने की जड़ें समाज के आधारभूत ढांचे में निहित है जो समाज को दो हिस्सों – निजी हिस्सा और सार्वजनिक हिस्सा में विभाजित करते है। निजी हिस्से और सार्वजनिक हिस्से में समाज के इस विभाजन को सार्वजनिक मान्यता और वैधता

भी प्राप्त है। इसलिए परिवार से जुड़े सभी मामले 'निजी' माने जाते हैं और इनका परिचालन व्यक्तिगत कानूनों द्वारा होता है। भारत में अधिकतर पारिवारिक कानून, धर्म और समुदाय पर आधारित होते हैं। प्रत्येक समुदाय के अपने अलग-अलग कानून होते हैं। परंतु इन सभी कानूनों में एक असमानता होती है कि वे पुरुष और महिलाओं की असमानता पर आधारित समाज पर ही बल देते हैं। इन सभी व्यक्तिगत कानूनों में (खासी परम्परागत कानूनों को छोड़कर) पुरुष परिवार का मुखिया होता है। वह बच्चों का स्वाभाविक अभिभावक होता है और उत्तराधिकार की श्रृंखला पुरुषों से पुरुषों को ही प्राप्त होती है और महिलाओं को इस कानून के अन्तर्गत पुरुष के बराबर समान अधिकार या सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होता है।

परिवार में मौजूद असमानता के कारण अक्सर तनाव भी पैदा होता है। इस तनाव को ताल मेल के अभाव के रूप में देखा जाता है। विवाह संस्था और परिवार के ढांचे के कारण भी भारतीय महिलाओं को काफी कुछ सहना पड़ता है जिसका प्रभाव उनकी सामाजिक हैसियत पर भी पड़ता है।

व्यक्तिगत कानून के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए आइए हम शाह बानो और मेरी रॉय के केस के बारे में जानकारी प्राप्त करें। महिलाओं को दिए जानेवाले या न दिए जाने वाले वैधानिक अधिकारों को समझने के लिए महिलाओं के लिए बने कानूनी प्रावधानों पर विचार करने के लिए हमें तीन क्षेत्रों पर विचार करना होगा। ये हैं विवाह, उत्तराधिकार और जीवन-यापन।

15.3 विवाह व्यवस्था

1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम के पारित होने से पहले हिन्दुओं में पुरुष कई पत्नियां रख सकता था परंतु स्त्री केवल एक ही शादी कर सकती थी। अब बहु-विवाह कानूनी रूप से मान्य नहीं है।

हालांकि दो विवाह करना कानूनी जुर्म है परंतु हिन्दुओं में अभी भी बहु-विवाह की प्रथा मौजूद है। उदाहरण के लिए मणिपुर में सरकारी नौकर एक से ज्यादा विवाह करते हैं जो कि सरकारी कर्मचारी आचार संहिता के अनुसार मना है। अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के बावजूद मणिपुर की महिलाएं अपने सामाजिक और वैधानिक अधिकार के लिए प्रयत्नशील नहीं हो पातीं। इसी प्रकार गोवा जिले में कुछ विशेष परिस्थितियों में हिन्दुओं में बहु-विवाह की अनुमति दी जाती है:

i) 25 वर्ष की उम्र तक यदि पूर्व पत्नी को कोई बच्चा न हो;

ii) 30 वर्ष की उम्र तक यदि पूर्व पत्नी से कोई लड़का न हो;

या 30 वर्ष से कम उम्र की पूर्व पत्नी को 10 वर्षों से कोई दूसरी संतान न हुई हो।

iii) लड़का न होने की स्थिति में तथा पत्नी से तलाक होने की स्थिति में।

परंतु पहले दो मामलों में पूर्व पत्नी की सहमति आवश्यक है।

इसी प्रकार मुसलमान कानून भी बहु पत्नीत्व का समर्थन करता है। तुर्की, ईराक, ईरान सिरिया, इन्डोनेशिया आदि कई मुसलमान देशों ने बहु पत्नीत्व प्रथा के दुरूपयोग को रोकने के लिए कई सुधार किए हैं। परंतु भारत में कोई कानूनी सुधार नहीं किया गया और मुसलमानों के व्यक्तिगत कानूनों में कोई सुधार नहीं लाया गया है। जिसके कारण मुसलमान महिलाओं पर होने वाले अत्याचार दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं।

15.3.1 मुसलमानों में विवाह

मुसलमान कानून में विवाह एक क़रार है। विवाह का उद्देश्य बच्चे पैदा करना और उनका पालन-पोषण करना है। जब तक विवाह की शर्तों और औपचारिकताओं का पालन होता है तब तक विवाह वैध माना जाता है। इस वैध विवाह के तहत महिलाओं को खर्चे और जीवन-यापन का अधिकार प्राप्त है। पति और पत्नी दोनों को उत्तराधिकार के परस्पर आदान-प्रदान का अधिकार प्राप्त है। सुन्नियों में अवैध विवाह को बातिल (अवैध) या फासिद (अनियमित) में विभाजित किया जाता है। बातिल विवाह में दोनों पक्षों के बीच किसी भी प्रकार के अधिकार या जिम्मेदारी का उल्लेख नहीं होता है। बच्चे अवैध माने जाते हैं। अनियमित विवाह का कोई कानूनी आधार नहीं होता और केवल मुंह से बोलकर ही यह शादी तोड़ी जा सकती है। इस प्रकार के विवाह में बच्चे वैध माने जाते हैं परंतु अनियमित विवाह में पति और पत्नी के बीच उत्तराधिकार के अधिकार का बंटवारा नहीं होता। परंतु वैध, अवैध और अनियमित विवाहों का अन्तर करना बहुत मुश्किल है और इसमें कानून का दुरूपयोग करना बहुत आसान है।

15.3.2 ईसाईयों में विवाह

हिन्दू और मुस्लिम समाज के समान ही ईसाइयों में भी विवाह एक सुव्यवस्थित संस्था है। वैध बच्चे प्राप्त करने के लिए विवाह व्यवस्था ही एकमात्र स्वीकार्य व्यवस्था है।

हालांकि बाइबिल में तलाक पर प्रतिबंध लगाया गया है परंतु ईसाइयों में तलाक की प्रथा को असमान्य नहीं माना जाता। ईसाई कानून में आपसी समझौते के द्वारा तलाक का कोई प्रावधान नहीं है।

15.4 उत्तराधिकार

संपत्ति में महिलाओं का अधिकार क्षेत्रीय आधार तथा उन पर लागू होने वाले व्यक्तिगत कानूनों के अनुसार बदलता रहता है। क्षेत्रीय परिवर्तनों के साथ साथ महिला उत्तराधिकार हमेशा समान नहीं रहता धर्म के आधार पर भी उसमें भिन्नता पाई जाती है।

जहां तक उत्तराधिकार का संबंध है भारत में महिलाओं को दोयम दर्जा प्राप्त है। हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1937, हिन्दू सम्पत्ति व्ययन अधिनियम 1916, हिन्दू विरासत (निर्योग्यता निराकरण) अधिनियम 1928, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1925 और कोचीन ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम 1902 जैसे अधिनियमों द्वारा विभिन्न धर्मों में महिलाओं की असमान स्थिति को दूर करने का प्रयास किया गया है।

15.4.1 मुसलमान महिलाएं और उत्तराधिकार

मुसलमान उत्तराधिकार कानून भारत की देशी व्यवस्थाओं से बिलकुल अलग है। केवल स्त्री होने के कारण इसमें किसी महिला को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित नहीं किया गया है। पुरुषों के समान महिलाओं को भी सम्पत्ति हासिल करने का अधिकार है। इसके अलावा उनके जीवन-यापन या उसके बदले सम्पत्ति रखने का अधिकार भी उन्हें प्राप्त है। महिलाओं का भी पुरुषों के समान सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार होता है। यहां स्त्री धन या महिलाओं की सम्पदा जैसी कोई अवधारणा नहीं है। मुसलमान महिलाओं को सम्पत्तिगत अधिकार तो प्राप्त हैं परंतु अपने भाइयों के बराबर अधिकार प्राप्त नहीं है। यहां लड़कों को लड़कियों की तुलना में दुगनी सम्पत्ति मिलती है। इस प्रकार पुरुष को दो हिस्सा और महिला को एक हिस्सा प्राप्त होता है। इसलिए बेटी को केवल स्त्री होने के कारण सम्पत्ति से बंचित

नहीं किया जाता। उसका अपनी सम्पत्ति पर पूरा अधिकार होता है। यही नियम विधवा या मां पर भी लागू होता है।

भा[illegible] वाले अधिकांश मुसलमान सुन्नी कानून के हनफी सिद्धांत को मानते हैं। वे मृत [illegible] को रक्त संबंधियों के तीन समूह में बांटते हैं:

1) [illegible] दार या कुरान समर्थित अधिकार)– किसी सम्पत्ति के 12 हिस्से [illegible] न्न व्यक्तियों को इसमें से निश्चित हिस्सा दिया जाता है। परंतु इस प्रकार के हिस्से स्थाई रूप से तय नहीं किए जाते क्योंकि प्रत्येक उत्तराधिकारी अन्य भागीदारों के कारण प्रभावित हो सकता है।

2) असब (वंशज या बची हुई सम्पत्ति के हकदार)– कुछ ऐसे हिस्सेदार होते हैं, जो अपना विनिर्दिष्ट हिस्सा लेने से मना कर देते हैं ऐसी सम्पत्ति को भी बराबर-बराबर हिस्सों में बांट दिया जाता है।

3) बाकी हिस्से अवशेष कहे जाते हैं उन्हें चिरकालिक (क्रोनिक) अवशेष भी कहते हैं और ये तीसरी श्रेणी में आते हैं।

प्रमुख हिस्सेदारों का सम्पत्ति पर अधिकार होता है। इसके बाद बची हुई सम्पदा को वंशजों में बांट दिया जाता है। यदि उस सम्पदा का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता तो उसे वंश में विभाजित कर दिया जाता है। यदि कोई हिस्सेदार या वंशज नहीं होता तो इस सम्पदा पर संबंधियों का अधिकार होता है।

शिया अधिकार कानून में उत्तराधिकारियों को दो भागों में विभक्त किया गया है:

1) समरक्तता अर्थात खून के रिश्ते से उत्तराधिकारी

2) विवाह से प्राप्त उत्तराधिकारी अर्थात पति और पत्नी

सुन्नी कानून के समान शिया कानून में भी दूर के संबंधियों को उत्तराधिकार बनाने का प्रावधान नहीं है।

15.4.2 ईसाई महिलाओं में उत्तराधिकार

ईसाई उत्तराधिकार कानून भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 से परिचालित होता है जिसमें दो योजनाएं शामिल की गई है। एक योजना भारतीय ईसाइयों, यहूदियों और पारसियों के उत्तराधिकार से जुड़ी हुई है।

पहली योजना के तहत विधवा और वंशजों को सम्पत्ति का एक तिहाई हिस्सा मिलता है और लड़कों तथा लड़कियों का भी बिना भेदभाव के बराबर का अधिकार होता है। इस कानून में संशोधन कर वंशज न होने की स्थिति में विधवा को सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी बनाया गया। परंतु इसमें शर्त यह थी कि इस सम्पत्ति का मूल्य 5000 रुपये से ज्यादा न हो। परंतु यह प्रावधान कुछ लोगों पर लागू नहीं होता था। इसके अलावा केरल के ईसाई और बाहर रहने वाले लोग दूसरे नियम से परिचालित होते थे। त्रावणकोर और कोचीन ईसाई उत्तराधिकार कानून हिन्दू उत्तराधिकार कानून की पूर्वधारणा पर आधारित थे जिसमें महिलाओं के साथ भेदभाव बरता गया था। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की पूर्व धारणा के अनुसार एक विधवा या मां को उसकी शादी या मृत्यु होने तक अचल सम्पत्ति पर अधिकार होता है। बेटी का अधिकार 'स्त्री धन' तक सीमित था। जहां उसे सीधे उत्तराधिकार प्राप्त भी था वहां उसे कम हिस्सा दिए जाने का प्रावधान था।

परंतु इस अधिनियम में कहीं नहीं लिखा हुआ था कि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की वसीयत नहीं लिख सकता है। इस प्रकार मुसलमान विधवाओं को सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त है। परंतु हिन्दू विधवाओं और इस कानून से परिचालित अन्य धर्म की विधवाओं को जीवन-यापन प्राप्ति का अधिकार नहीं है। हिन्दू विधवा की सम्पत्ति पर उसकी पति के अच्छानुसार जिसका अधिकार होता है उसका यह जिम्मा होता है कि वह विधवा महिला का जीवन-यापन करे। इसलिए इस कानून पर कुछ प्रतिबंध लगाने की जरूरत है जैसा कि मुसलमान कानून में लगाया गया है ताकि विधवा को दर-दर की ठोकर न खानी पड़े।

गोवा के ईसाई लोग अभी भी पुर्तगीज नागरिक संहिता से परिचालित होते हैं जिसमें स्त्री पुरुष भेद तो नहीं किया गया है परंतु विधवाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। प्रथम योजना का संबंध भारतीय ईसाइयों, यहूदियों और विशेष विवाह अधिनियम (1955) के तहत विवाहित के उत्तराधिकार के अधिकार है।

अन्य योजनाओं का संबंध पारसियों के उत्तराधिकार से है। हिन्दू कानून के समान ही पारसियों में भी पुरुष और महिलाओं के बीच सम्पत्ति के बंटवारे का अलग नियम है और पुरुष उत्तराधिकार को महिला उत्तराधिकार की अपेक्षा दोगुना हिस्सा मिलता है। मुसलमान कानून के समान ही पारसी लड़कियों को लड़कों के मुकाबले आधा हिस्सा मिलता है परंतु उत्तराधिकार से वंचित किए जाने से किसी प्रकार की सुरक्षा उन्हें प्राप्त नहीं है जैसी सुरक्षा मुसलमान कानून में दी गई है।

15.5 जीवन-यापन

विवाह, तलाक और उत्तराधिकार के समान जीवन-यापन से जुड़े मुद्दे भी व्यक्तिगत कानूनों द्वारा परिचालित होते हैं। विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों में महिलाओं के जीवन-यापन के अधिकार अलग-अलग हैं।

फौजदारी कानून की धारा 125 में पत्नी, बच्चे और माता-पिता के जीवन-यापन न करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाई करने का प्रावधान है। विशेष परिस्थितियों में निम्नलिखित व्यक्ति जीवन-यापन का दावा कर सकते हैं:

1) पत्नी– अपनी रोजी-रोटी न चला सकने वाली पत्नी जीवन-यापन का दावा कर सकती है। यहां 'पत्नी' का मतलब ऐसी महिला से है जिसे तलाक दिया जा चुका हो या जिसने अपने पति से तलाक ले लिया हो और पुनः विवाह न किया हो।

2) संतान– अवैध या वैध अवयस्क संतान (लड़का या लड़की) जो अपना जीवन यापन करने में समर्थ नहीं है, इस प्रकार के जीवन-यापन के अधिकारी हैं।

3) मां– यदि मां अपना जीवन-यापन नहीं कर सकती है तो वह अपने पुत्र से **जीवन-यापन की मांग कर सकती है।**

फौजदारी कानून की धारा 125 (1) के अनुसार पति, पिता, पुत्र या पुत्री (जैसी भी स्थिति हो) क्रमशः पत्नी, संतान, माता या पिता के जीवन-यापन के लिए जिम्मेदार होते हैं। 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम के अनुसार पति या पत्नी कोई भी तलाक लेने या अलग हो जाने के बाद दूसरे से निर्वाह धन की मांग कर सकते/सकती हैं।

15.5.1 मुसलमान महिलाओं का जीवन-यापन

मुसलमान कानून में पुरुष अपनी पत्नी, बच्चे, माता-पिता और सौतेले संबंधियों सहित अन्य संबंधियों के जीवन-यापन के लिए जिम्मेदार है।

मुसलमान कानून के अनुसार यदि पति अपनी पत्नी का जीवन-यापन नहीं करता है या इससे इनकार करता है, तो पत्नी अपनी पति पर जीवन-यापन का दावा कर सकती है। धारा 125-128 के तहत वह अदालत में जा सकती है परंतु ये सारे प्रावधान विवाह के कायम रहने तक ही लागू होते हैं। तलाकशुदा पत्नी को केवल 'इद्दात' अवधि तक ही जीवन-यापन प्राप्त करने का अधिकार है। यह अवधि या तो तीन महीने होती है या गर्भवती महिला के मामले में बच्चे के जन्म होने तक या पुनर्विवाह से पूर्व के समय तक।

तलाकशुदा मुसलमान महिलाओं के जीवन-यापन का परिचालन तीन कानूनों के द्वारा होता है:

1) मुसलमान व्यक्तिगत कानून

2) फौजदारी कानून की धारा 125

3) मुसलमान महिला (तलाक से संरक्षण का अधिकार) अधिनियम 1986

एक तलाकशुदा महिला अपने पति से केवल 'इद्दात' अवधि में ही जीवन-यापन की मांग कर सकती है। तलाक के बाद 'इद्दात' अवधि तीन महीने (तीन रजःस्राव अवधि) या गर्भवती महिला की स्थिति में बच्चे के जन्म तक की होती है।

फौज़दारी कानून की धारा 125 के तहत पत्नी या तलाकशुदा पत्नी के जीवन-यापन का जिम्मा पति का है। सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय में यह फैसला सुनाया था कि तलाकशुदा मुसलमान महिलाओं को भी जीवन-यापन प्राप्त करने का अधिकार है। यदि उसने अपने व्यक्तिगत कानून के अनुसार निर्वाह धन लिया हो तो भी तलाकशुदा पत्नी के निर्वाह की जिम्मेदारी उसके पति के कंधों पर होती है। मुहम्मद अहमद खां बनाम शाह बानो मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इस फैसले को पुनः दुहराते हुए कहा था कि धारा 125 के तहत जीवन-यापन भत्ता प्राप्त करना पत्नियों का सांविधिक अधिकार है और यदि व्यक्तिगत कानून से इसकी टकराहट होती है तो उसमें प्रमुखता धारा 125 को ही दी जाएगी। हालांकि आदालत ने यह भी माना था कि यदि कोई महिला अपना जीवन-यापन नहीं कर सकती है तो उसका पति उसे निर्वाह भत्ता दे या न दे इस संबंध में धारा 125 और मुसलमान व्यक्तिगत कानून में कोई टकराव नहीं है।

शाह बानो मुकदमे के फैसले के परिणामस्वरूप मुसलमान महिला (तलाक संरक्षण अधिकार) अधिनियम 1986 बनाया गया। इस अधिनियम के अनुसार पत्नी और पति दोनों ही फौजदारी कानून की 125 से लेकर 128 तक की धारा से परिचालित होने के लिए स्वीकृति दे तभी इद्दात अवधि के बाद मुसलमान पत्नी अपने पति से निर्वाह धन की मांग कर सकती है। अन्यथा इद्दात अवधि के बाद पति तलाकशुदा पत्नी के निर्वाह के लिए जिम्मेदार नहीं होगा।

15.5.2 ईसाई महिलाओं का जीवन-यापन

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि हिन्दू कानून में काफी सुधार किया गया है। परंतु मुसलमान और ईसाई विवाह कानून में कोई सुधार नहीं किया गया है। मुसलमान और पारसी महिलाओं को सम्पत्ति संबंधी कुछ अधिकार हैं परंतु भाइयों के बराबर उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं है। अपने-अपने कानूनों के तहत बेटे को बेटी से दोगुना हिस्सा मिलता है। अब से पहले सीरिया की ईसाई महिला त्रावणकोर और कोचीन उत्तराधिकार अधिनियम से परिचालित होती थीं परंतु अब वे भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1956 से परिचालित होती हैं। जिसके तहत उन्हें सम्पत्ति पर बराबर का अधिकार प्राप्त हुआ है।

ईसाई कानून में "पत्नी को तलाक के बाद पति की आय के 25 से 30 % अंश पर अधिकार होता है। तलाक के पहले के तीन वर्षों की आय के आधार पर पति की औसत आय निर्धारित की जाती है।"

जरा सोचिए—1

1) अपराधिक कानून संहिता के अन्तर्गत कौन से प्रावधान पति द्वारा छोड़ी हुई महिलाओं को सम्बोधित करते हैं।

2) विभिन्न धर्मों के अंतर्गत उत्तराधिकार कानून किस प्रकार महिलाओं से भेदभाव करते हैं। उदाहरण के साथ व्याख्या कीजिए।

15.6 व्यक्तिगत कानूनों का मुद्दा

व्यक्तिगत कानूनों के तीन मुख्य कानूनों की हम चर्चा कर चुके हैं। हम यह देख सकते हैं कि विभिन्न धार्मिक समुदायों के व्यक्तिगत कानूनों में समानता नहीं है और वे महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण हैं जो कि आमतौर पर सभी समाजों में पाया जाता है। जैसा कि हम ब्रता चुके हैं कि जब भी व्यक्तिगत कानूनों में कुछ परिवर्तन लाने की सोच भी आती है तो यह महिलाओं का मुद्दा से ज्यादा रूप बनकर उभरता है और महिलाओं को दरकिनार करके सवाल समुदाय एवं धर्म का बना दिया जाता है। नीचे दिए गए दो उदाहरणों में हम इसको पूरी तरह से समझ सकते हैं।

वास्तव में व्यक्तिगत कानूनों का मुद्दा हमेशा से विवादास्पद रहा है और विशेषकर शाह बानों के मामले में। आइए बिस्तार से इस विवाद को समझें।

15.7 शाह बानो मुकदमा

जीवन-यापन के प्रश्न पर मुहम्मद अहमद खां बनाम शाह बानो के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से विवाद खड़ा हो गया। यह फैसला न केवल विवादास्पद था बल्कि इसने एक नया इतिहास रच दिया था। प्रमुख न्यायाधीश वाई.वी चन्द्रचूण की अध्यक्षता में 5 खंडपीठ वाले न्यायाधीशों ने 3 अप्रैल 1985 को एक फैसला सुनाया जिसे मुसलमानों के धर्म के मूलभूत आधारों पर आघात माना गया।

शाह बानो की शादी 1932 में मुहम्मद अहमद खां से हुई थी जब वह मात्र 16 साल की थी। विवाह के 43 वर्ष बाद शाह बानो को अपने ससुराल से निकाल दिया गया। दो वर्षों तक उसे जीवन-यापन के लिए 200 रुपए प्रति महीने दिए गए। जब यह छोटी सी राशि भी बन्द कर दी गई तो उसने 1978 में इन्दौर में फौजदारी कानून की (criminal procedure code) धारा 125 के तहत अपने जीवन-यापन के लिए 500 प्रति महीने देने के लिए याचिका दायर की। अहमद खां एक वकील था और उसके पास इन्दौर में न केवल 5 घर थे बल्कि उसकी प्रति माह आय 5,000 रुपए थी। 1978 में जब याचिका अदालत के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत की गई तभी अहमद खां ने शाह बानो को तलाक दे दिया और उसने यह तर्क दिया कि शाह बानो को तलाक दिए जाने के बाद अब उसपर जीवन-यापन के लिए पैसे देने की जरूरत नहीं है क्योंकि अब वह उसकी पत्नी नहीं है। उसने बताया कि वह पिछले दो सालों से 200 रुपए प्रति महीने जीवन-यापन के लिए देता रहा है। इसके अलावे मेहर के रूप में इदात अवधि में उसने 3000 रुपए जमा कर दिए थे। यह सब उसने इस्लमा द्वारा बनाए कानून के अनुसार किया था।

अगस्त 1979 में न्यायिक मजिस्ट्रेट ने शाह बानो को जीवन-यापन के लिए 125 रुपए प्रति माह देने का आदेश दिया। यह आदेश फौजदारी कानून की धारा 125 (1) के आधार पर दिया गया जिसमें तलाकशुदा पत्नी को भी 'पत्नी' का दर्जा दिया गया है। शाह बानो ने मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने उसका भत्ता बढ़ाकर 179.20 रुपए प्रतिमाह कर दिया। इस निर्णय के खिलाफ पति ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की कि उसे इस छोटी सी राशि के भुगतान से भी मुक्त किया जाए क्योंकि शरियत ही उसका कानून है और मुसलमान व्यक्तिगत कानून में यह बताया गया है कि पुरुष को अपनी तलाकशुदा पत्नी के जीवन-यापन की जिम्मेदारी इदात अवधि तक ही उठानी है।

मुख्य न्यायाधीश चन्द्रचूण ने कहा कि व्यक्तिगत कानून और फौजदारी कानून की धारा 125 में टकराव होने की स्थिति में किसी भी धर्म के मामले में धारा 125 लागू होगी। इस धारा के तहत पत्नी, बच्चे और बुजुर्ग माता-पिता के जीवन-यापन का प्रावधान है। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि इदात अवधि के बाद भी मुसलमान महिलाओं को अपने पतियों से जीवन-यापन का खर्च हासिल करने का अधिकार है। अन्य समुदाय की महिलाओं के समान उन्हें भी यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए। न्यायाधीश चन्द्रचूण ने तलाकशुदा पत्नी के जीवन-यापन के पक्ष में फैसला सुनाते हुए यह कहा कि उक्त धारा 125 और व्यक्तिगत कानून में कोई टकराव नहीं है।

15.7.1 शाह बानो के मुकद्दमे में निर्णय

"फैसले को इस प्रकार संक्षेप में देखा जा सकता है : सबसे पहले इसने धारा 125 एवं मुस्लिम व्यक्तिगत कानून दोनों के अन्तर्गत शाह बानो के जीवन-यापन निर्वाह के अधिकार को बरकरार रखा। दूसरे, इसने इस बात पर जोर दिया कि आई.पी.सी. की धारा 125 धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों को पार कर जाता है जहां एक विधवा के जीवन निर्वाह के अधिकार का सवाल आता है चाहे दम्पति किसी भी धार्मिक समुदाय के हैं। तीसरे इसने इस बात की आलोचना की कि किस प्रकार परम्पराओं के परदे में नारी समाज के साथ अन्याय एवं शोषण का बर्ताव किया जाता रहा है। और इसमें दोनों ही धर्मों के उदाहरण लिए गए। अंत में इस फैसले ने सरकार को एक समान आचार संहिता के निर्माण की सलाह भी दी।" (कुमार 1993; 162) ।

इस फैसले में जिस अनुच्छेद ने मुस्लिम समुदाय में गलतफहमी पैदा की वह था धारा 125 को व्यक्तिगत कानून के ऊपर ले जाना। अत: आवश्यक है कि शरियत के कानून को व्याख्या की जाए। इस फैसले ने यह वक्तव्य दिया :

" इस प्रकार का विश्वास व्याप्त होता जा रहा है कि मुस्लिम व्यक्तिगत कानून का सुधार सिर्फ मुस्लिम समुदाय ही कर सकता है। अत: एक समान आचार संहिता बनाने की आवश्यकता है जो कि राष्ट्रीय एकता को विभिन्न भागों में बंटे हुए वफादारियों को हटाकर मजबूत बनाएगा।"

राधा कुमार कहता है "इसको इस प्रकार देखा जा सकता है कि जज यह कह रहे हैं कि मुस्लिम व्यक्तिगत कानून खराब है, लेकिन मुसलमान इसी कानून को पसंद करते हैं और किसी न किसी (इस मामले में राज्य) को ही उन पर न्याय को जबरदस्ती थोपना लागू करना होगा। इसका अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि न्याय को उन पर सिर्फ न्याय के लिए नहीं बल्कि राष्ट्रीय एकता को बचाए रखने के लिए भी जबरदस्ती लादना होगा जिससे इस बात की भी जरूरत है कि मुसलमानों को अपने धर्म इस्लाम की तरफ वफादारी को नकारना होगा और अपने व्यक्तिगत कानून को भी त्यागना होगा।"

15.7.2 समुदाय की प्रतिक्रिया

इस फैसले की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कई नारी अधिकारवादी और उदारवादी व्यक्तियों ने धर्म निरपेक्ष आपराधिक कानून के मामले में धर्म को लाने की आलोचना की। मुस्लिम धार्मिक नेताओं के लिए यह उनके समुदाय पर हमला था। उल्मा ने फतवा जारी किया कि यह इस्लाम की हिदायतों के खिलाफ है। फतवा का भारी प्रचार किया गया और थोड़े ही महीनों में स्थिति बहुत ही साम्प्रदायिक हो गई। यह वैसे भी वह दौर था जब साम्प्रदायिक मुद्दे जोर पकड़े हुए थे। 1984 के दंगों ने सिक्ख समुदाय को हिला कर रख दिया था। उसी वर्ष विश्व हिंदू परिषद ने बाबरी मस्जिद को आजाद कराकर वहां पर राम जन्मभूमि मंदिर बनाने के लिए पद यात्रा (मार्च) का आयोजन किया। हिंदू कट्टरपंथियों को संगठित होने से सकते में आए मुस्लिम समुदाय ने भी अपने को संगठित करना शुरू कर दिया। बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी एक ऐसी संस्था थी। श्री शहाबुद्दीन जनता पार्टी के सदस्य तथा एक्शन कमेटी के नेता उभरकर सामने आए और उन्हें खूब प्रसिद्धि भी मिली। चुनावों में उन्होंने अपने प्रतिरोधी कांग्रेस आई के मुस्लिम प्रत्याशी को हरा दिया। जब कांग्रेस को लगा कि मुस्लिम समुदाय नजरों में उनकी साख और पूछ कम होती जा रही है तो उन्होंने मुस्लिम समुदाय को खुश करने का विचार बनाया। यह उन्होंने एक घोषणा करके किया वह इस फैसले पर पुनर्विचार संगोष्ठी की योजना बना रहे हैं और इस पर एक बिल भी निकाला जाएगा।

25 फरवरी 1986 को मुस्लिम महिला (तलाक संरक्षण अधिकार) 1986 पारित किया गया। बनाया। इसमें इदात अवधि के बाद तलाकशुदा मुसलमान महिलाओं के जीवन-यापन की बात की गई। इसमें बताया गया कि तलाकशुदा मुसलमान महिलाओं के जीवन-यापन का जिम्मा उसके माता-पिता और उसके संबंधियों का है उसके पति का नहीं। यदि माता-पिता उस तलाकशुदा मुसलमान महिला के जीवन-यापन का खर्च उठाने में असमर्थ हैं तो वह मुस्लिम वक्फ बोर्ड के समक्ष अर्जी पेश कर सकती है। वक्फ बोर्ड की स्थापना धार्मिक मामलों को निपटाने तथा दान देने के लिए तथा परोपकार की दृष्टि से की गई है।

यह अधिनियम राजनैतिक प्रतिबद्धता के अभाव का परिणाम था। इसके अलावा यह मानवाधिकार की अवमानना थी क्योंकि इसमें महिलाओं और बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन किया गया था। मुसलमान महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के बजाए इस अधिनियम से उन्हें उनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया, जो कुरान के नियमों का उल्लंघन है। यह विधेयक भारतीय संविधान की प्रस्तावना का भी उल्लंघन करता है जिसमें भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य कहा गया है। इसके अलावा अनुच्छेद 51 (1) में भी यह कहा गया है कि जाति, धर्म, जाति और लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक से किसी प्रकार से भेदभाव नहीं किया जाएगा। यह विधेयक इस अनुच्छेद का भी उल्लंघन करता है और इसमें समाज के एक समुदाय की महिलाओं के खिलाफ भेदभाव बरता गया है। इसमें धारा 44 का भी उल्लंघन है जिसमें कहा गया है कि राज्य को एक नागरिक संहिता का पालन करना चाहिए।

15.8 मेरी रॉय का मामला

इस अनुभाग में हम देखेंगे कि मेरी रॉय ने किस प्रकार से बहुत पुराने कानून को बदलने की मांग की।

सिरियाई ईसाई अभी तक त्रावणकोर और कोचीन उत्तराधिकार अधिनियम से संचालित होते

थे, जिसके द्वारा उन्हें लगभग कोई सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती थी। एकीकरण से पहले 1902 में त्रावणकोर और कोचीन के राजवाड़ों ने त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम और कोचीन उत्तराधिकार अधिनियम पारित किया।

15.8.1 केरल में ईसाई और व्यक्तिगत कानून

त्रावणकोर रजवाड़े के भारतीय ईसाई केरल राज्य के नागरिक बन गए। उत्तराधिकार और विरास्त के मामलों में भारतीय ईसाई त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम 1916 द्वारा संचालित होते थे। त्रावणकोर के भारतीय ईसाईयों में निम्नलिखित समूह शामिल हैं:

क) सीरियाई ईसाई

ख) उत्तरी त्रावणकोर (कोट्टयम) के लैटिन ईसाई

ग) दक्षिणी त्रावणकोर ईसाई जो धर्मांतरित थे और मीताक्षरा कानून मानने वाले विभिन्न जतियों के धर्मांतरित लोगों के वंशज।

घ) केन्द्रीय त्रावणकोर के लैटिन ईसाई

ड़) अरसार

च) भरतहार

छ) ईसाई जाति

ज) केन्द्रीय त्रावणकोर के प्रोटेस्टेंट ईसाई

झ) मरूमक्कथयम ईसाई (स्रोत ईसाई समिति 5(1912)

इन अलग-अलग समूहों के अलग-अलग रीति-रिवाज थे और इनके उत्तराधिकार के नियम भी अलग थे। परम्परागत कानून के अनुसार महिलाओं को पुरुषों के समान उत्तराधिकार प्राप्त नहीं था। सीरियाई ईसाइयों के परम्परागत कानून के अनुसार यदि पिता ने अपने बेटी को स्त्री धन या दहेज दे दिया है तो यह माना जाता है कि उसे अपना हिस्सा प्राप्त हो गया है। विधवाओं को जीवन-यापन का अधिकार प्राप्त होता है और उन्हें पति की सम्पत्ति में से कोई निश्चित हिस्सा नहीं दिया जाता। इसका निर्णय संबंधी करते हैं और विधवा स्त्री उनके अनुकम्पा पर जीती है।

इन परिस्थितियों के कारण त्रावणकोर में ईसाइयों के रीति रिवाज तौर तरीकों और उत्तराधिकार आदि पर विचार करने के लिए ईसाई समिति की स्थापना की गई। इस समिति ने 1865 के भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम (1925 के अधिनियम का आधार) को मानने से इनकार कर दिया जिसके तहत मृत व्यक्ति के बेटों और बेटियों को सम्पत्ति में हिस्सा देने का प्रावधान किया गया था।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की अस्वीकृति के निम्नलिखित कारण बताए गए हैं :

1) सीरियाई ईसाई और दक्षिण त्रावणकोर के ईसाई मुख्यत: किसान हैं, जिनमें अधिकांश किसानों के पास बहुत थोड़ी-सी जमीन हैं।

2) बेटों और बेटियों में बराबर का हिस्सा बांट देने से खेत के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे।

3) महिलाओं और बेटियों को समान अधिकार दे दिया गया तो विवाह के बाद वे अपनी ससुराल से इस छोटे से खेत के टुकड़े पर खेती नहीं कर पाएंगी।

4) 1865 के भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम को त्रावणकोर के ईसाइयों के पारिवारिक जीवन के उपयुक्त नहीं पाया गया। इस अधिनियम का ईसाइयों ने जमकर विरोध किया।

इसके परिणामस्वरूप समिति ने यह सुझाव दिया कि विधवा को अपने पुत्र के हिस्से के बराबर या अपने मृत पति की सम्पत्ति के 1/4 हिस्से पर जो भी कम है अधिकार है। लड़की का भी अपने भाई के एक तिहाई 1/3 हिस्से पर अधिकार होगा परंतु यदि लड़की को स्त्री धन दे दिया गया है तो उसका सम्पत्ति पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं होगा। यदि स्त्री धन का वादा किया गया हो और उसे दिया न गया हो तो फिर उसका सम्पत्ति पर अधिकार होगा। निम्नलिखित समुदायों पर ये प्रावधान लागू नहीं होते: जहां की इच्छापत्रहीन पुरुष-स्त्री उत्तराधिकारियों को परंपरानुसार संपत्ति के बराबर हिस्से दिए जाते थे।

1) केंद्रीय त्रावणकोर के लैटिन ईसाई और लैटिन राइट के रोमन कैथोलिक ईसाई

2) करूंगपल्ली, क्यूलॉन, चेरिकिल, त्रिवेन्द्रम, नइयाटिंकारा और अन्य ताल्लुकों में रहने वाले प्रोटैस्टेंट ईसाई।

इस समिति ने विधवाओं के अधिकारों के पक्ष में कुछ सुझाव दिए परंतु इन सुझावों को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया। समिति ने इच्छा पत्र हीन सम्पत्ति में विधवाओं को हिस्सा दिए जाने और लड़कियों को सम्पत्ति दिए जाने का सुझाव दिया था परंतु त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम में इसे शामिल नहीं किया गया। इसके परिणामस्वरूप विधवा केवल को जीवन पर्यन्त जीवन-यापन का भत्ता दिए जाने का प्रावधान शामिल किया गया। इसकी अधिकतम राशि 5000 रुपए या लड़के के हिस्से का एक-चौथाई तय किया गया। इसमें जो भी कम हो वही दिए जाने का प्रावधान है। विधवा की मृत्यु या पुनर्विवाह के बाद यह प्रावधान समाप्त हो जाता है। यदि उसे स्त्री धन प्राप्त हो गया होता है या सम्पत्ति में से हिस्सा दिए जाने की बात होती है तो यह राशि भी उसे नहीं दी जाती है।

त्रावणकोर के पूर्ववर्ती राज्य में ईसाई समुदाय पर उत्तराधिकार का यही कानून लागू होता है। आजादी के बाद ये रजवाड़े समाप्त हो गए और भारत संघ के अन्तर्गत केरल राज्य में शामिल किए गए। इसके बाद महाराजा कानून राज्य कानून अधिनियम 1951 भाग बी के द्वारा समाप्त हो गए। इस प्रकार 1951 अप्रैल में सम्पत्ति के उत्तराधिकार अधिनियम 1925 भारतीय ईसाई समुदाय के व्यक्तियों की संपत्ति के इच्छापत्र हीन उत्तराधिकार के मामले में केरल में लागू हो गया। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम " में यह प्रावधान है कि "एक पत्नी का अपने पति की एक-तिहाई हिस्से पर अधिकार होगा। बची हुई दो-तिहाई सम्पत्ति लड़के और लड़कियों में समान रूप से विभाजित की जाएगी।

इन प्रावधानों के बावजूद 1951 से 1986 तक ईसाई महिलाओं के सम्पत्ति संबंधी अधिकार त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम से परिचालित होते रहे हैं। यहां तक कि केरल और मद्रास के उच्च न्यायालय ने त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम को जारी किए जाने के पक्ष में फैसले सुनाए और ईसाई व्यक्तिगत कानून इसका आधार बना।

त्रावणकोर अधिनियम के भेदभावपूर्ण प्रावधान को मेरी राय बनाम राज्य के मुकदमे में चुनौती दी गई। मेरी राय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत अदालत में एक याचिका दायर की जिसमें अनुच्छेद 14 के समानता संबंधी प्रावधानों के उल्लंघन को चुनौती दी गई।

15.8.2 मुकदमा

कोट्टयम में रहने वाली मेरी रॉय ने त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम के तहत इच्छा पत्रहीन उत्तराधिकार वैधता को पहली बार चुनौती दी जिसमें ईसाई महिलाओं से भेदभाव बरता गया था।

मेरी राय तलाकशुदा औरत थी। वह कोट्टयम में रहती थीं और किस्टी स्कूल की प्रिंसिपल थीं। उन्होंने अपने पिता की इच्छापत्रहीन सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए याचिका दायर की, परंतु त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार अधिनियम का सहारा लेकर उन्हें न्याय से वंचित कर दिया गया। अल्पसंख्यकों के व्यक्तिगत कानून में हस्तक्षेप न करने के बहाने राज्य ने भी इस फैसले का समर्थन किया। श्रीमती मेरी राय और दूसरों ने मिलकर संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस कानून की वैधता को चुनौती दी। मेरी राय के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला सुनाया कि ईसाई समुदाय में भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम ही लागू होगा। इस फैसले के परिणामस्वरूप केरल राज्य में भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम लागू हो गया। मेरी राय के मुकदमे के फैसले का बहुत बड़ा महत्व है। इसके बाद पूर्ववर्ती त्रावणकोर और कोचीन राज्यों में ईसाई महिलाओं को उत्तराधिकार प्राप्त हो गया।

बोध प्रश्न – 2

1) पारम्परिक प्रथाओं द्वारा किस प्रकार एक समुदाय अपनी पहचान प्रदर्शित करता है ? व्याख्या करें।

2) क्या आप मानते हैं कि धार्मिक आधार पर महिलाएं अपने धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों द्वारा अलग-अलग है जबकि उनकी स्थिति एवं परिस्थिति समान है ?

3) क्या आप समझते हैं कि कुछ हद तक एक समान आचार संहिता होनी चाहिए ? अगर हां, तो क्यों ?

15.9 धर्म और व्यक्तिगत कानून : एकता और अनेकता

पिछली चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तिगत कानून स्त्री-पुरुष समानता कोसों दूर है। महिलाएं न केवल पुरुषों के बराबर नहीं है बल्कि आपस में भी वह कई तरह से बंटी हुई हैं। अगर मुस्लिम कानून में बहु विवाह इसका सबसे बड़ा उदाहरण है, हिंदु कोड में संपति तथा उत्तराधिक कानून, पारसी और ईसाई कांड में तलाक इसके उदाहरण हैं। यथार्थ रूप में यह पाया गया है कि बहुविवाह मुसलमानों के विपरीत हिंदुओं में ज्यादा प्रचलित हैं।

15.9.1 एकरूप नागरिक संहिता

स्त्री-पुरुष के लिए एकरूप न्याय प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत कानूनों में सुधार लाने की कोशिश ज़ारी है लेकिन वे आंशिक मात्र है और अभी तक विभिन्न समुदायों में महिलाओं के संदर्भ में भारी भेदभाव कायम है। इसके लिए एक वृहत सुधार की आवश्यकता है। और अगर अंतरिम विधान सभा की चर्चाओं पर गौर किया जाए तो पता चलेगा कि समान आचार संहिता की जरूरत मजबूती से महसूस की गई थी। ऐसे व्यक्तिगत कानूनों का जारी रहना जो पुरुष और महिलाओं के बीच भेदभाव बरते हैं मौलिक अधिकारों का हनन है।

समान आचार संहिता का तार्किक झगड़ा इन्साफ़ के लिए जारी रहेगा चाहे वह तलाक का मामला हो या सती का या बहुविवाह का।

क्या आप जानते हैं

समान आचार संहिता पर वी.आर.कृष्णा अइयर

जो हमें चाहिए वह ना तो हिन्दू कानून है ना ही मुस्लिम न अन्य ऐसे जो किसी धार्मिक व्यवस्था पर आधारित हो। हमें तो चाहिए एक ऐसी न्याय व्यवस्था जो भारतीय संस्कार की सुगन्ध एवं सुरुचि के परिवेश में रहकर प्रगतिशील न्यायप्रिय समूह का प्रतिनिधित्व करती हो। भारतीय साम्प्रदायिक हिंदु और मुसलमान दोनों समान आचार संहिता के इर्द-गिर्द जुड़ी हुई विरोधी तथा समर्थक तत्वों को बढ़ावा देने के साथ अपनी अपनी सफलताओं की कसमें खाते हैं। बहुत सारा समान आचार संहिता का हिस्सा है वैधानिक निकाय से जुड़ा है। न ही हिंदु इतने धर्म निरपेक्ष और जेंडर समान है। मुसलमानों के मुकाबले हिंदुओं में ज्यादा द्विविही है, ज्यादा अत्याचारी है और हिन्दू व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं के साथ ज्यादा पक्षपात होते है– दहेज, सती और बराबर के संपति अधिकार से वंचित रखना – यह सब बातें हमें नहीं भूलनी चाहिए। अगर वस्तुनिष्ठता से देखा जाए तो समान आचार संहिता का विचार एक स्थिर व कठोर समानता से या सभी भारतीयों के लिए समानता की जरूरत से नहीं जुड़ा है बल्कि पारिवारिक नियम और धर्म के विरक्त सप्रदायिक गठबंधन को कमजोर बनाने की जरूरत से जुड़ा है जिसके भारतीय राजनीति में विस्फोटित होने की गहरी सम्भावना है।

स्रोत : हिंदु 22 और 23 अगस्त 1995

15.10 सारांश

ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक और व्यक्तिगत क्षेत्र में हस्तक्षेप न करने की नीति जो ब्रिटिश साम्राज्य से शुरू हुए वह अभी भी कायम है। महिला कार्यकर्ताओं का कहना है कि निजीक्षेत्र के बारे में स्थिति इतनी गंभीर नहीं है। यह महिलाओं के लिए दमन की भी जगह बनाती है। इसलिए इसे न्याय की शास्त्र की सुरक्षा के अंदर आना चाहिए। जिस प्रकार निजी क्षेत्र आलोचनात्मक परीक्षण जरूरी है, उसी प्रकार महिलाओं को अपने समुदाय व धार्मिक पहचानों से उपर उठकर स्त्री-पुरुष न्याय के लिए सामने आने की भी ज़रूरत है।

दुर्भाग्य से व्यक्तिग कानूनों में सुधार बहुत ही नगण्य और धीमा रहा हैं जिसे हमेशा व्यक्ति के स्तर पर लड़ा गया। एक व्यापक समान आचार संहिता पर बहस जारी है, जिसकी जरूरत के बारे में संविधान के अधिनियम 44 में चर्चा की गई है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत और मौजूदा वोट बैंक की स्थिति के चलते कोई भी सरकार व्यक्तिगत कानूनों के साथ छेड़छाड़ नहीं करना चाहती ताकि उन्हें लोगों के गुस्से का सामना न करना पड़े और अपने वोटों से हाथ न धोना पड़े।

व्यक्तिगत कानून में परिवर्तन अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा अपने ऊपर हमले के रूप में देखना ठीक नहीं है जैसा कि समुदाय के स्व-स्थापित नेता दावा करते हैं। एक ऐसा विश्वास जड़ पकड़ता जा रहा है (जैसा कि उच्च न्यायाधीश वाई.बी. चन्द्रचूड़ ने मोहम्मद अहमद खान बनाम शाह बानो मामले में देखा है) कि अपने व्यक्तिगत कानून के सुधारों में मुसलमानों को खुद से पहल करनी होंगी और इसी प्रकार के विश्वास के चलते, जिसें कुछ हद तक हिंदु राष्ट्रीयतावादी तत्वों द्वारा हवा दी गई कि अल्पसंख्यकों को इसी राह को पकड़ना होगा।

हिंदु विवाह अधिनियम 1955, उत्तराधिकारी अधिनियम 1956 अल्पसंख्यक संरक्षण अधिनियम 1956 कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो परंपरागत हिंदू कानून तथा इसके समुदाय में सुधार के सबूत हैं लेकिन इन सुधारों ने समान न्याय और व्यापक चेतना जैसी परीक्षाओं में अभी तक सफलता हासिल नहीं की है।

लेकिन महिलाएं अभी भी भेदभावपूर्ण कानूनों से पीड़ित हैं, जबकि महिला संस्थाओं द्वारा समान आचार संहिता की मांग बराबर की जा रही है।

15.11 शब्दावली

निर्वाह-धन : कानूनी तौर पर अलग होने के बाद पत्नी/पति को मिलने वाला धन

द्विविवाह : ऐसा विवाह जिसमें व्यक्ति का कानूनी रूप से स्वीकृत एक से ज्यादा पति/पत्नी हो।

निर्वसीयती : जब कोई व्यक्ति बिना वैध वसीयत से मर जाए।

बहुविवाह : विवाह जिसमें व्यक्ति का एक से अधिक जीवन साथी हो।

उत्तराधिकार: संपत्ति को हासिल होना, विरासत में संपति का प्राप्त होना

वसीयत : कानूनी रूप से वैद्य वसीयत

अमान्य : कानूनी रूप से बाध्य अथवा मान्य नहीं।

15.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

फलेबिया, एग्नेस (1915) स्टेट जेंडर एंड दि रियोटोरिक आफ लॉअ रिफॉर्म : मुम्बई एस एन डी टी वूमेनस यूनिवर्सिटी।

मुकोपाध्याय , स्वप्ना (संपा) (1918) इन दि नेम आफ जस्टिस : वूमने एंड लॉ इन सोसाइटी नई दिल्ली : मनोहर।

संदर्भ

चेटर्जी, पार्था (1981) दि नेशनलिस्ट रेजूलेशन आफ दि वूमेनस कोसचनए कुमकुमर संगारी और एस. वैद (संपा) में रिकासटिंग वूमेन : एसेसज इन कोलोनीयल हिस्ट्री, नई दिल्ली काली फोर वूमेन।

फ्लेविया, एग्नेस (1995) स्टेड जेंडर एंड दि रियोटोरिक आफ लॉअ रिर्फोम मुम्बई : स.न.डी.टी. वूमेनस यूनिवर्सिटी।

ग्रेबीला, डेट्रिच (1988) वूमेनस मूवमेंट इन इंडिया, कन्सेपचूअल एंड रिलीजस रिफलेक्शंस बैंगलोर।

जयसिंह, इंदिरा (सांपा) (1966) जस्टिस फार वमेून : पर्सनल लॉअस, वमेूनस राईटस एंड लाअ रिफार्म, मांपूसा गोवा : दि अदर इंडिया प्रेस।

जयर्वधना, कुमारी (1986) फेमिनिज्म एंड नेशनलिज्म इन दि थर्ड वर्ल्ड लंडन : जेड बुक्स।

जयवर्धना के. और मालथी डी. एल्विस (संपा) (1996) इम्वाडिड व्राइलेस : कमनुएलासिंग सेक्सुएलिटी इन साउथ एशिया : नई दिल्ली काली फार वूमेन।

मणी, लता (1989) कन्टिनुइस ट्रेडिशन्स : दि डिबेट आन सती इन कोलोनियल इंडिया, कुमकुम संगारी और एस वैद (संपा) में रिकासटिंग वूमेन : एससेस आन कोलोनियल हिस्ट्री नई दिल्ली : काली फॉर वूमेन।

मुकोपाध्याय, स्वप्ना (संपा) (1998) इन दि नेम आफ जस्टिस : वूमेन एंड लॉअ इन सोसाइटी नई दिल्ली, मनोहर।

ओबराय, पेट्रीशा (संपा) (1996) सोशल रिफार्फस, सेक्सुएलिटी एंड दि स्टेट, नई दिल्ली : सेज।